देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642
May 2025
Vol.-21, Issue-5(1)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Issue Editor :
Dr. Meera Choursiya

Editor :
Dr. Naresh Kumar Sihag

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 21 **ISSUE-5(1)** **(मई 2025)** **ISSN : 2395-7115**

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

विशेषांक सम्पादिका :

डॉ. मीरा चौरसिया

चमन लाल महाविद्यालय, लंढौरा,

हरिद्वार (उत्तराखंड)

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. पायल लिल्हारे
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
त्रिवन्तपुरम, केरल

डॉ. शिवकरण निमल
राजस्थान

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
वाराणसी

डॉ. मानसिंह दहिया
हरियाणा

डॉ. नीलम आर्या
उत्तर प्रदेश

डॉ. रवि सुण्डयाल
जम्मू कश्मीर

प्रो. नरेन्द्र सोनी
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. रोहतास
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

डॉ. इस्पाक अली
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

प्रो. रेखा रानी
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

डॉ. परमानन्द त्रिपाठी
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

अनुक्रमाणिका – मई 2025 विशेषांक

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. मीरा चौरसिया	09–09
2.	भारत में विवाह और पारिवारिक जीवन	डॉ. सत्यनारायण एच.के.	10–15
3.	हिन्दी साहित्य में युवक युवती विमर्श पर आधारित मोहन राकेश के नाटक	सिमरन कोठारी	16–22
4.	कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यासों में नारी सशक्तिकरण और पुरूष सहयोग	डॉ. हुस्ना खानम. एम	23–26
5.	पतित-पावन युवती संत कान्होपात्रा	प्रा. श्री गौतम केदार ब्रह्मे	27–31
6.	प्रेम और रोमांस	प्रियंका गौड़	33–35
7.	अरेंज मैरिज बनाम प्रेम विवाह	सविता	36–41
8.	लैंगिक असमानता और समानता : युवक-युवती के लिए समाज के अलग-अलग मानदंड और हिंदी साहित्य में इसका परिप्रेक्ष्य	दीप्ती जे पनिकर	42–45
9.	प्रेमचंद के उपन्यासों में युवक-युवती की छवि	शिवलाल अहिरवार	46–51
10.	प्रेम में त्याग और समर्पण	गांवित कल्पेशभाई रायुभाई, डॉ. पुखराज जांगिद	52–55
11.	भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति	डॉ. सविता यादव	56–62
12.	लैंगिक समानता और असमानता : 'युद्ध और शांति' के विशिष्ट संदर्भ में	आद्याशा पाढ़ी	63–66
13.	पुरूष (शिव) और स्त्री (शक्ति) एक दूसरे के पूरक	डॉ. विक्रम कुमार	67–70
14.	संस्कृति और नैतिक मूल्यों का टकराव	सोहेल	71–74
15.	समाज में लैंगिक असमानता को दूर करने में शिक्षा की भूमिका	नीलम पाटीदार	75–78
16.	साहेबपुरार बरषुण : युवक-युवती के अंतर्मन की अनूठी प्रेम-कहानी	डॉ. सिराजुल हक	79–83
17.	**Steps Towards Self-Respect and Independence : A Literary and Societal Discourse on Young Men and Women**	**Renuka Bharti, Anshuman Kushwaha**	**84-88**

18.	रामायण में वर्णित वैवाहिक संस्कार एवं सामाजिक चित्रण	डॉ. सिकन्दर कुमार वर्मा	89–95
19.	Leveraging ICT for Awareness and Prevention of Drug Addiction Among Studentsx	Binod Kumar Ray, Dr. Manik Mohan Shukla	96-107
20.	हरिशंकर पाण्डेय खंडकाव्य 'उर्मिला' में नारी चेतना और त्याग का चित्रण	सुरेश एच मेडा	108–117
21.	हिंदी अनुवाद कुछ समस्याएं : कोरियाई साहित्य के विशेष संदर्भ में	प्रभात रंजन	118–123
22.	ज्ञान प्रकाश विवेक के उपन्यासों में पारिवारिक विघटन	सुमन लता	124–130
23.	काला पहाड़ के परिप्रेक्ष्य में हिंदू–मुस्लिम एकता	सुषमा	131–134
24.	अन्धविश्वासी एवं अन्धविश्वास रहित सेवापूर्व अध्यापकों के नैतिक मूल्यों का अध्ययन	डॉ. महेश कुमार शर्मा	135–139
25.	साहित्य में युवक–युवती विमर्श	नवीन कुमार	140–143
26.	हिंदी साहित्य में युवक–युवती विमर्श	डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट	144–147
27.	મહિલા સશક્તિકરણ પર પુસ્તકાલયની ભૂમિકા	રાઠોડ મધુબેન માનસિંહભાઈ, ડૉ. દિપ્તી.એન.સોની,	148–159
28.	युवाओं का सामाजिक परिवर्तन में योगदान	डॉ. पूनम भूषण	160–164
29.	UNDERSTANDING MODERN ROMANTIC RELATIONSHIP	Dr. Jyoti Meena	165-173
30.	Echoes of Empathy : Finding Common Ground in Indian and Western Environmental Wisdom	Dr. Gauranga Das	174-179
31.	राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान महिलाओं का संघर्ष एवं उनकी जेल यातनाएँ (1919–1947)	मोती लाल, डॉ. प्रार्थना सिंह	180–185
32.	कृष्णा सोबती के उपन्यासों में प्रेम का स्वरूप	डॉ. मीरा चौरसिया	186–192
33.	भारतीय उपन्यासों में युग चेतना और सामाजिक परिवर्तन	रजनी प्रभा, डॉ. राकेश रंजन	193–196
34.	ECO-ANXIETY AND LITERARY LANDSCAPES : TRACING ENVIRONMENTAL CONSCIOUSNESS IN 21ST CENTURY BRITISH FICTION	Dr. Priya Sudhakar Manapure	197-203
35.	खेल नीति और भारतीय युवाओं का भविष्य	Chandra Shekhar Bharti	204-210

संपादकीय.....

प्रिय पाठकों,

साहित्य समाज का दर्पण होता है, और किसी भी समाज का भविष्य उसकी युवा पीढ़ी में निहित होता है। ऐसे में, जब हम 'साहित्य में युवक–युवती विशेषांक' जैसे शीर्षक के साथ आपके समक्ष उपस्थित हैं, तो इसका अर्थ मात्र कुछ रचनाओं का संकलन नहीं, बल्कि एक नई साहित्यिक चेतना के उदय का उद्घोष है। यह विशेषांक युवा मन की उमंगों, उनकी जिज्ञासाओं, उनके संघर्षों और उनके सपनों को स्वर देने का एक विनम्र प्रयास है। यह उस पीढ़ी की आवाज है जो आज के तेजी से बदलते परिदृश्य में अपनी जगह तलाश रही है, और साहित्य को एक माध्यम के रूप में इस्तेमाल कर रही है।

आज के समय में युवा लेखकों और उनके विचारों को एक मंच देना केवल आवश्यक ही नहीं, बल्कि अपरिहार्य हो गया है। पुरानी पीढ़ी के अनुभवों और दृष्टिकोण का अपना महत्व है, लेकिन युवा पीढ़ी का साहित्य हमें उन पहलुओं से परिचित कराता है जो अक्सर हमारी निगाहों से ओझल रहते हैं। युवा लेखक डिजिटल युग की चुनौतियों, सामाजिक रूढ़ियों पर सवाल उठाने, नए रिश्तों की जटिलताओं, पर्यावरणीय चिंताओं और मानसिक स्वास्थ्य जैसे मुद्दों पर बेबाकी से लिखते हैं। उनका लेखन अक्सर अधिक प्रायोगिक होता है, नियमों की परवाह न करते हुए नए शिल्प और शैलियों को गढ़ता है। यह साहित्य समाज को एक नया दृष्टिकोण प्रदान करता है, जहां पुरानी वर्जनाएं टूटती हैं और नए विचार आकार लेते हैं। यह हमें बताता है कि युवा पीढ़ी केवल उपभोक्ता नहीं, बल्कि सृजनकर्ता भी है, और उनके भीतर समाज को बदलने की असीम ऊर्जा है।

युवा साहित्यकार केवल वर्तमान में ही नहीं जीते, बल्कि वे अपनी जड़ों से भी जुड़े रहते हैं। उनके लेखन में अक्सर परंपरा और आधुनिकता का एक अद्भुत संगम देखने को मिलता है। वे पौराणिक कथाओं, लोक गाथाओं और ऐतिहासिक घटनाओं को एक आधुनिक लेंस से देखते हैं, उन्हें आज के संदर्भ में प्रासंगिक बनाते हैं। वे पारंपरिक साहित्यिक शैलियों जैसे कविता, कहानी और नाटक को भी नई तकनीक और विषयों के साथ जोड़ते हैं। उदाहरण के लिए, वे कविताओं में सोशल मीडिया की भाषा का उपयोग कर सकते हैं, या कहानियों में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के प्रभावों पर चर्चा कर सकते हैं। यह संगम न केवल साहित्य को समृद्ध करता है, बल्कि पीढ़ियों के बीच एक सेतु का भी काम करता है। यह दिखाता है कि हमारी सांस्कृतिक विरासत आज भी जीवित है और युवा पीढ़ी उसे नए तरीकों से पुनर्जीवित कर रही है।

युवा साहित्यकारों के सामने कई चुनौतियां भी हैं। प्रकाशन के अवसर, स्थापित लेखकों की तुलना में कम मिलना, अपनी पहचान बनाना, और वित्तीय स्थिरता बनाए रखना कुछ प्रमुख मुद्दे हैं। सोशल मीडिया

पर ध्यान भटकाने वाले तत्व और गुणवत्ता बनाम मात्रा की बहस भी एक चुनौती है। युवा साहित्यकार अब भौगोलिक सीमाओं से परे वैश्विक दर्शकों तक पहुंच सकते हैं। सोशल मीडिया उन्हें पाठकों के साथ सीधा संवाद स्थापित करने का मौका देता है, जिससे एक जीवंत साहित्यिक समुदाय का निर्माण हो रहा है। ये संभावनाएं युवा साहित्य को एक नई दिशा और गति प्रदान कर रही हैं।

यह 'साहित्य में युवक–युवती विशेषांक' इसी दृष्टिकोण से तैयार किया गया है कि यह युवा प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करे और उन्हें एक मजबूत मंच प्रदान करे। हमारा उद्देश्य उन युवा आवाजों को सुनना है जो अक्सर शोरगुल में दब जाती हैं। हम मानते हैं कि हर युवा में एक कहानी, एक कविता, एक विचार छिपा है जो दुनिया के साथ साझा किया जाना चाहिए। इस विशेषांक के माध्यम से, हम न केवल युवा लेखकों की रचनाओं को पाठकों तक पहुंचाएंगे, बल्कि उन्हें साहित्यिक संवाद में शामिल होने के लिए भी प्रेरित करेंगे। यह विशेषांक युवा लेखकों के लिए एक प्रेरणा स्रोत बनेगा, उन्हें यह महसूस कराएगा कि उनकी आवाज महत्वपूर्ण है और उनके विचारों का स्वागत है। हम आशा करते हैं कि यह पहल युवा साहित्य को एक नई दिशा देगी और भविष्य के महान साहित्यकारों को जन्म देगी।यह विशेषांक केवल पन्नों का संग्रह नहीं, बल्कि युवा शक्ति, युवा विचारों और युवा सपनों का उत्सव है। हम आशा करते हैं कि आप इसे पढ़ेंगे, सराहेंगे और इसके माध्यम से युवा साहित्य की बढ़ती शक्ति को महसूस करेंगे।

आशा नहीं पूर्ण विश्वास है कि आपको यह विशेषांक जरूर पसंद आएगा। मैं विशेष आभार अंतरराष्ट्रीय बोहल शोध मंजूषा पत्रिका का आभार करती हूं जिसके अपार स्नेह व सहयोग से यह कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो पाया है।

–डॉ. मीरा चौरसिया
विशेषांक संपादिका,
चमन लाल महाविद्यालय, लंढौरा,
हरिद्वार (उत्तराखंड)

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 10-15

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत में विवाह और पारिवारिक जीवन

डॉ. सत्यनारायण एच.के.

सहायक हिन्दी आचार्य, मद्रास संस्कृत महाविद्यालय, मैलापुर, चेन्नै (तमिलनाडु)

भारतीय समाज में विवाह और पारिवारिक जीवन का बहुत महत्व है। इसका महत्व सदियों की परंपरा, संस्कृति एवं मूल्यों में अन्तर्निहित है। भारत में विवाह की अवधारणा केवल दो व्यक्तियों का मिलन नहीं है, अपितु एक बंधन है जिसमें परिवार, सामाजिक दायित्व तथा सांस्कृतिक रीति–रिवाज शामिल हैं। पारिवारिक जीवन माता–पिता और बच्चों के बीच के जैविक संबंधों से परे है। इसमें भावनात्मक, सामाजिक और आर्थिक संबंधों का एक अन्तःसम्बन्ध है। भारत में विवाह और पारिवारिक जीवन के महत्व, उनकी अद्यतन प्रकृति, चुनौतियां और समकालीन समाज में बदलती गतिशीलता का अध्ययन आज की आवश्यकताओं में एक है।

विवाह की अवधारणा :–

भारत में विवाह को पारंपरिक रूप से एक पवित्र संस्था के रूप में देखा जाता है जिसे एक आजीवन बंधन माना जा सकता है। यह बंधन वैयक्तिक इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं से परे होता है। धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक मानदंडों में निहित, विवाह न केवल दो लोगों का मिलन है, बल्कि दो परिवारों का एकीकरण भी है। यह विचार प्राचीन ग्रंथों और रीति–रिवाजों से प्रभावित है, जिसमें विवाह को समाज के प्रति एक कर्तव्य और किसी के परिवार की वंशावली को जारी रखने का प्रयास माना जाता है।

भारतीय समाज में विवाह को सामान्यतः निश्चित किया जाता है, जिसमें परिवार उपयुक्त साथी को खोजने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जोड़े की अनुकूलता, साथ ही उनके परिवारों की सामाजिक स्थिति, शिक्षा और आर्थिक स्थिति को महत्वपूर्ण कारक मानते हैं। शहरी क्षेत्रों में प्रेम विवाह तेजी से बढकर सामान्य रूप ले रहा है। ग्रामीण भारत में व्यवस्थित विवाह एक प्रमुख प्रथा बनी हुई है। इन विवाहों को आमतौर पर एक व्यक्तिगत प्रतिबद्धता से अधिक एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में देखा जाता है जो सामाजिक बंधनों को मजबूत करता है और सांस्कृतिक दायित्वों को पूरा करता है।

विवाह का महत्व :–

विवाह एक सामाजिक, कानूनी और धार्मिक रूप से मान्यता प्राप्त समझौता होता है, जिसमें दो व्यक्ति अपने जीवन को एक साथ बिताने का संकल्प लेते हैं। यह न केवल दो व्यक्तियों का मिलन होता है, बल्कि दो परिवारों का भी मिलन होता है। विवाह का उद्देश्य न केवल सामाजिक और शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करना होता है, बल्कि यह भावनात्मक, मानसिक और आर्थिक सुरक्षा भी प्रदान करता है।

विवाह के द्वारा, एक व्यक्ति को साथी मिलता है, जो जीवन के उतार–चढ़ाव में उसका संबल बनता है।

इसके अलावा, विवाह से समाज में स्थिरता और सामूहिकता का भी अनुभव होता है। बच्चों का पालन–पोषण भी एक संरचित और स्थिर वातावरण में करना सम्भव होता है।

पारिवारिक जीवन का महत्व :–

भारत में पारिवारिक जीवन एक पारंपरिक आदर्श के इर्द–गिर्द संरचित है, जहाँ विस्तृत परिवार केंद्रीय भूमिका में खडा रहता है। इस विस्तृत परिवार प्रणाली में न केवल एकल परिवार बल्कि दादा–दादी, चाचा–चाची और चचेरे भाई–बहन भी शामिल हैं। परंपरागत रूप से, परिवार समाजीकरण की प्राथमिक इकाई रहा है, जहाँ मूल्य, परंपराएँ और मानदंड युवा पीढ़ी को दिए जाते हैं।

भारतीय परिवार प्रणाली में, बड़ों के प्रति सम्मान, छोटे सदस्यों के प्रति जिम्मेदारी और परिवार के प्रति कर्तव्य की भावना पर बहुत जोर दिया जाता है। पितृसत्तात्मक संरचना ऐतिहासिक रूप से हावी रही है, जिसमें परिवार का पुरुष मुखिया बड़े फैसले लेता है। हालाँकि, हाल के दशकों में, यह संरचना धीरे–धीरे विकसित हुई है, खासकर शहरी क्षेत्रों में, जहाँ महिलाएँ परिवार के भीतर और कार्यबल दोनों में अधिक प्रमुख भूमिकाएँ निभा रही हैं।

भारत में पारिवारिक जीवन में विभिन्न अनुष्ठान, उत्सव और त्यौहार भी शामिल हैं, जो परिवार के सदस्यों और समुदाय को एक साथ लाते हैं। विवाह, जन्म और धार्मिक त्यौहार जैसे कार्यक्रम एकता और अपनेपन की भावना को बढ़ावा देते हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रम पारिवारिक संबंधों, सामाजिक मूल्यों व पहचान की भावना को मजबूत करने के अवसर भी प्रदान करते हैं।

भारत में विवाह और पारिवारिक जीवन के सामने आने वाली चुनौतियाँ :–

यद्यपि विवाह और पारिवारिक जीवन भारतीय समाज के स्तंभ बने हुए हैं, उन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिनमें से कई हाल के वर्षों में और भी अधिक स्पष्ट हो गई हैं। उनमें कुछ प्रमुख चुनौतियां हैं :–

१. **सामाजिक मानदंडों में बदलाव :** सामाजिक मूल्यों में बदलाव के कारण विवाह और पारिवारिक जीवन से अपेक्षाएँ बदल गई हैं। पारंपरिक मानदंड जो त्याग, आज्ञाकारिता और अनुरूपता पर जोर देते थे, धीरे–धीरे व्यक्तिगत स्वतंत्रता, व्यक्तिगत पसंद और समानता के आदर्शों द्वारा प्रतिस्थापित किए जा रहे हैं। शिक्षा का उदय (विशेष रूप से महिलाओं के बीच) और इंटरनेट तक पहुँच ने लोगों को वैश्विक दृष्टिकोणों से अवगत कराया है जो विवाह और पारिवारिक जीवन पर उनके विचारों को प्रभावित करता है। आज के युवा लोग सामाजिक अपेक्षाओं की तुलना में भावनात्मक अनुकूलता और व्यक्तिगत आकांक्षाओं को प्राथमिकता देने की अधिक संभावना रखते हैं।

२. **आर्थिक दबाव :** भारत में आर्थिक बदलाव, बढ़ते मध्यम वर्ग और शहरीकरण के उदय के साथ, पारिवारिक संरचनाओं में महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। एकल परिवारों की बढ़ती संख्या और दोनों भागीदारों के काम करने के कारण, परिवार अब केवल आर्थिक अस्तित्व के लिए एक सहायक इकाई के रूप में कार्य नहीं करता, बजाय परिवारों को पेशेवर प्रतिबद्धताओं, वित्तीय स्वतंत्रता और व्यक्तिगत जीवन को संतुलित करने की चुनौतियों का प्रबंधन करना पड़ता है। इसके कारण रिश्तों पर अतिरिक्त तनाव पडता है और पारिवारिक बंधनों को पोषित करने के लिए समय की कमी महसूस होती है।

३. **विवाह के भीतर तनाव :** विवाह से बदलती अपेक्षाओं के साथ पारंपरिक और आधुनिक भूमिकाओं के बीच यदा–कदा संघर्ष होता रहता है। आज कई विवाह वित्तीय स्वतंत्रता, लैंगिक समानता और निर्णय लेने जैसे मुद्दों से जूझ रहे हैं। अधिक समतावादी साझेदारी की ओर बदलाव के फलस्वरूप जिम्मेदारियों को लेकर असहमति जन्म लिया है। कुछ जोड़ों को पेशेवर आकांक्षाओं के साथ घरेलू कर्तव्यों को संतुलित करना चुनौतीपूर्ण लगता है। इसके अलावा, तलाक की दरों में वृद्धि, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में, यह दर्शाती है कि वैवाहिक संतुष्टि अब ऐसे माहौल में गारंटी नहीं है जहाँ व्यक्ति अपने रिश्तों से सिर्फ सामाजिक स्थिरता से ज्यादा अपेक्षा रखता है।

४. **लैंगिक भूमिकाएँ और सशक्तिकरण :** जबकि भारत ने लैंगिक समानता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण प्रगति की है, देश के कई हिस्सों में पारंपरिक लैंगिक भूमिकाएँ अभी भी कायम हैं। पेशेवर करियर अपनाने के बावजूद महिलाओं से अक्सर घर–गृहस्थी और बच्चों की परवरिश को प्राथमिकता देने की अपेक्षा की जाती है। ग्रामीण और अर्ध–शहरी क्षेत्रों में, महिलाओं को अभी भी शिक्षा, रोजगार और परिवार के भीतर निर्णय लेने में महत्वपूर्ण बाधाओं का सामना करना पड़ता है। शहरी भारत में, एक अधिक प्रगतिशील दृष्टिकोण उभर रहा है जिसमें महिलाएँ घर के अंदर और बाहर दोनों जगह अधिक न्यायसंगत भूमिकाएँ चाहती हैं।

५. **विवाह और पारिवारिक जीवन का विकास :** पिछले कुछ दशकों में भारत में विवाह और पारिवारिक जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। वैश्वीकरण, तकनीकी प्रगति और बदलते सामाजिक मूल्यों के आगमन ने पारंपरिक संरचनाओं के विकास में योगदान दिया है। शहरी क्षेत्रों में एकल परिवार अत्यन्त सामान्य बन गया है जिसमें कई मामलों में दोनों साथी वित्तीय जिम्मेदारियों और घरेलू कर्तव्यों को साझा करते हैं। कार्यबल में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी ने पारिवारिक गतिशीलता को बदल दिया है, और भागीदारों के बीच आपसी सम्मान और साझा जिम्मेदारियों के महत्व पर जोर दिया जा रहा है। भारत में युवा पीढ़ी पारंपरिक मानदंडों पर तेजी से सवाल उठा रही है। जबकि अरेंज मैरिज अभी भी हावी है, प्रेम विवाह अब पहले की तरह दुर्लभ नहीं रह गए हैं, खासकर शहरों में। पश्चिमी देशों की तुलना में तलाक की दरें अभी भी कम हैं, लेकिन धीरे–धीरे बढ़ रही हैं, क्योंकि व्यक्ति ऐसे विवाह की तलाश कर रहे हैं जो सामाजिक दबाव के बजाय भावनात्मक जरूरतों और आपसी सम्मान को पूरा करें।

६. इसके अलावा, डिजिटल युग ने विवाह और परिवारों के लिए नई चुनौतियाँ और अवसर लाए हैं। सोशल मीडिया, ऑनलाइन डेटिंग और वैवाहिक वेबसाइटों ने लोगों के मिलने और रिश्ते बनाने के तरीके को बदल दिया है। यद्यपि इससे व्यक्तियों को संगत साथी खोजने की अधिक स्वतंत्रता मिली है लेकिन पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों की क्षति और सामाजिक संबंधों में बदलाव की बढ़ती गति के बारे में चिंताएँ भी उत्पन्न करती जा रही हैं।

भारत में संयुक्त परिवार :–

भारत में, 'संयुक्त परिवार' की अवधारणा सदियों से सामाजिक ताने–बाने का अभिन्न अंग रही है। संयुक्त परिवार का विचार मात्र जैविक संबंधों से आगे बढ़कर भावनात्मक, सांस्कृतिक और सामाजिक संबंधों की जाल से जुडा हुआ है। संयुक्त परिवार के अन्तर्गत विभिन्न पीढ़ियाँ, रिश्तेदार और परिवार के सदस्य एक साथ घनिष्ठ संबंधों में रहते हैं। संयुक्त परिवार को भारतीय संस्कृति की आधारशिला माना जाता है जो आपसी सहयोग, साझा जिम्मेदारियों और अपनेपन की मजबूत भावना का प्रतीक है।

संयुक्त परिवार की अवधारणा :-

संयुक्त परिवार, एक ऐसे परिवार की संरचना को संदर्भित करता है जहाँ कई पीढ़ियाँ – माता–पिता, बच्चे, दादा–दादी, चाची–चाचा, चचेरे भाई–बहन – एक ही छत के नीचे या एक दूसरे के बहुत करीब रहते हैं। ऐसी प्रणाली में, व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बजाय सामूहिक कल्याण पर जोर दिया जाता है। निर्णय एक साथ लिए जाते हैं, और परिवार के सभी सदस्यों द्वारा जिम्मेदारियाँ साझा की जाती हैं।

एक संयुक्त परिवार में, प्रत्येक सदस्य एक विशिष्ट भूमिका निभाता है, और एक दूसरे के प्रति कर्तव्य की पारस्परिक भावना होती है। बड़ों का सम्मान किया जाता है, जबकि छोटे सदस्यों से उनके अनुभवों से सीखने की अपेक्षा की जाती है। यह सामूहिक जिम्मेदारी अपनेपन की भावना को बढ़ावा देती है और यह सुनिश्चित करती है कि कोई भी सदस्य अलग–थलग महसूस न करे तथा जरूरत के समय एक मजबूत सहायता प्रणाली बनाए।

संयुक्त परिवार का महत्व और मूल्य :-

१. **भावनात्मक समर्थन :** एक संयुक्त परिवार को अक्सर एक भावनात्मक लंगर के रूप में देखा जाता है, जो आराम, सुरक्षा और सहयोग देता है। पारंपरिक भारतीय व्यवस्था में, परिवार के बुजुर्ग सदस्य ज्ञान और मार्गदर्शन देते हैं, जबकि युवा सदस्य अपनी ऊर्जा और नए दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। ऐसे परिवारों में बनने वाले मजबूत भावनात्मक बंधन साझा जिम्मेदारी की भावना के साथ जीवन की चुनौतियों का सामना करने में मदद करते हैं।

२. **सांस्कृतिक निरंतरता :** संयुक्त परिवार प्रणाली सांस्कृतिक मूल्यों और परंपराओं को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। त्यौहार, अनुष्ठान और रीति–रिवाज सामूहिक रूप से मनाए जाते हैं, जो पहचान और निरंतरता की भावना को मजबूत करते हैं। बच्चे ऐसे माहौल में बड़े होते हैं जहाँ सांस्कृतिक प्रथाएँ, धार्मिक अनुष्ठान और पारिवारिक कहानियाँ पीढ़ियों से चली आ रही हैं, जो भारत की समृद्ध विरासत के संरक्षण को सुनिश्चित करती हैं।

३. **साझा जिम्मेदारियाँ :** संयुक्त परिवार में, घरेलू और वित्तीय जिम्मेदारियाँ अक्सर साझा की जाती हैं, जिससे व्यक्तिगत सदस्यों पर बोझ हल्का हो सकता है। बुजुर्ग अक्सर युवाओं की देखभाल करने वाले की भूमिका निभाते हैं, जबकि युवा पीढ़ी शारीरिक श्रम या मौद्रिक योगदान में सहायता करती है। यह सहकारी भावना परिवार को जीवन की जटिलताओं को अधिक प्रभावी ढंग से संभालने में सक्षम बनाती है।

४. **सामाजिक संबंधों को मजबूत बनाना :** संयुक्त परिवार एक सामाजिक इकाई भी है जो समुदाय की एक मजबूत भावना को बढ़ावा देती है। न केवल परिवार के भीतर अपितु विस्तृत परिवार के सदस्यों के साथ परस्पर संबंध से एक सहायता–जाल निर्मित होती है, जो घर से बाहर भी फैली हुई होती है। यह बंधन सामाजिक सुरक्षा और आपसी देखभाल की भावना पैदा करने में सहायक होता है, यह सुनिश्चित करता है कि परिवार के सदस्यों को मुश्किल समय में खुद की देखभाल करने के लिए नहीं छोड़ा जाता है।

संयुक्त परिवार के लाभ :-

१. **वित्तीय सुरक्षा :** संयुक्त परिवार का एक मुख्य लाभ संसाधनों का एकत्रीकरण है। कई कमाने वाले सदस्य घर की आय में योगदान करते हैं जिससे वित्तीय सुरक्षा बनती है। सामूहिक आय यह सुनिश्चित करती है कि

परिवार उच्च जीवन स्तर बनाए रख सके और व्यक्ति अकेले वित्तीय जिम्मेदारियों को वहन करने के दबाव के बिना अपने व्यक्तिगत और व्यावसायिक विकास में निवेश कर सकें।

२. **बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल :** संयुक्त परिवार में बच्चों और बुजुर्ग सदस्यों दोनों की देखभाल एक पोषण भरे माहौल में की जाती है। बच्चों को परिवार के कई सदस्यों से मार्गदर्शन, ध्यान और प्यार मिलता है, जबकि बुजुर्ग सदस्यों को उनके बुढ़ापे में सहारा दिया जाता है। इससे परिवार के भीतर आपसी सम्मान और कर्तव्य की भावना पैदा होती है।

३. **मजबूत सामाजिक सहायता प्रणाली :** संयुक्त परिवार एक विश्वसनीय सामाजिक सहायता प्रणाली प्रदान करता है, जहाँ प्रत्येक सदस्य न केवल अपने स्वयं के कल्याण के लिए बल्कि दूसरों के कल्याण के लिए भी जिम्मेदार होता है। यह सुनिश्चित करता है कि वित्तीय, भावनात्मक या शारीरिक संकट के दौरान कोई भी अकेला न रहे।

४. **अकेलेपन में कमी :** संयुक्त परिवार में, अलगाव की संभावना कम होती है, क्योंकि सदस्य प्रतिदिन बातचीत करते हैं और साझा गतिविधियों में संलग्न रहते हैं। एकल परिवारों के विपरीत जहाँ व्यक्ति अलग–थलग महसूस कर सकते हैं, संयुक्त परिवार निरंतर संगति और एकजुटता की भावना प्रदान करता है।

समकालीन भारत में संयुक्त परिवारों के सामने आने वाली चुनौतियाँ :–

अनेक लाभों के बावजूद, विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण संयुक्त परिवार की अवधारणा पर लगातार दबाव बढ़ रहा है।

१. **शहरीकरण और प्रवास :** रोजगार या शिक्षा के लिए तेजी से बढ़ते शहरीकरण और प्रवास ने पारंपरिक संयुक्त परिवार प्रणालियों के विखंडन को जन्म दिया है। बेहतर करियर के अवसरों की तलाश में शहरों में जानेवाली युवापीढ़ी अक्सर अपने विस्तारित परिवारों से दूर एकल परिवारों में रहती है। इससे पारंपरिक सहायता प्रणाली बाधित होती है और पारिवारिक जीवन की संरचना बदल जाती है।

२. **लिंग भूमिकाओं में बदलाव :** संयुक्त परिवार में पारंपरिक लिंग भूमिकाओं में अक्सर पुरुषों और महिलाओं को विशिष्ट जिम्मेदारियाँ सौंपी जाती थीं, जिसमें महिलाएँ मुख्य रूप से घरेलू काम और देखभाल के लिए जिम्मेदार होती थीं। जैसे–जैसे अधिक महिलाएँ उच्च शिक्षा और पेशेवर कैरियर की ओर बढ़ रही हैं, उनसे अपेक्षाएँ बदल रही हैं। यह बदलाव कभी–कभी तनाव का कारण बन सकता है, खासकर रूढ़िवादी परिवारों में जो पारंपरिक लिंग भूमिकाओं का पालन करना जारी रखते हैं।

३. **वित्तीय दबाव :** जीवनयापन की बढ़ती लागत और आर्थिक दबाव संयुक्त परिवार के भीतर संबंधों को खराब कर सकते हैं। प्रत्येक सदस्य का वित्तीय योगदान हमेशा घर की बढ़ती मांगों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है। इससे पैसे, संसाधनों और प्राथमिकताओं पर विवाद हो सकते हैं।

४. **आधुनिक और पारंपरिक मूल्यों का टकराव :** युवा पीढ़ी, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में, व्यक्तिवाद और स्वतंत्रता के आधुनिक मूल्यों के संपर्क में है। ये मूल्य कभी–कभी पारिवारिक एकता के पारंपरिक आदर्शों के साथ टकराव कर सकते हैं, जिससे असहमति और संयुक्त परिवार के रूप में रहने की प्रथा में धीरे–धीरे गिरावट आ सकती है।

५. **पीढ़ीगत अंतराल :** पुरानी और युवा पीढ़ियों के बीच दृष्टिकोण में अंतर गलतफहमियाँ पैदा कर सकता

है। युवा पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की रूढ़िवादी प्रथाओं से प्रतिबंधित महसूस कर सकती है, जिससे अधिक स्वतंत्रता की इच्छा हो सकती है। इसी तरह, पुरानी पीढ़ी तेजी से बदलती दुनिया और अपने बच्चों की आकांक्षाओं से अलग महसूस कर सकती है।

६. **विकसित हो रही पारिवारिक गतिशीलता :** जहां एक ओर पारंपरिक संयुक्त परिवार प्रणाली शहरी परिवेश में अपनी प्रमुखता खो रही है, दूसरी ओर कई ग्रामीण और अर्ध–शहरी क्षेत्रों में एकजुट परिवार के मूल मूल्य अभी भी कायम हैं। जहां पारिवारिक संरचनाओं का विकास हुआ है, वहां एकल परिवार अधिक आम होते जा रहे हैं। लेकिन विस्तारित परिवार के सदस्यों का प्रभाव अभी भी महत्वपूर्ण बना हुआ है। आधुनिक भारत में एकल विस्तारित परिवार की अवधारणा उभरी हुई है। परिवार के सदस्य अलग–अलग रहने पर भी घनिष्ठ संबंध बनाए रखते हैं। वीडियोकॉल व सोशल मीडिया ने आपसी संचार बनाए रखने में मदद की है, इससे शारीरिक अलगाव के बावजूद भावनात्मक बंधन मजबूती से खड़ा है।

निष्कर्ष :–

भारतीय संस्कृति में गहराई से समाया हुआ संयुक्त परिवार लंबे समय से शक्ति, समर्थन और साझा जिम्मेदारी का प्रतीक रहा है। जबकि आधुनिकीकरण, शहरीकरण और बदलते सामाजिक मानदंडों के सामने इसे चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, इसके मूल्य प्रासंगिक बने हुए हैं। भारत में पारिवारिक जीवन की उभरती गतिशीलता परंपरा और परिवर्तन के मिश्रण को दर्शाती है, जहाँ परिवार आपसी सम्मान, देखभाल और एकता के मूल सिद्धांतों को संरक्षित करते हुए अनुकूलन करना जारी रखते हैं। साथ–साथ अपनी सांस्कृतिक जड़ों को बनाए रखते हुए वैश्विक परिवर्तनों के अनुकूल स्वयं बदलते जा रहा है। सामाजिक विकास के साथ व्यक्तिगत आकांक्षाओं और सामूहिक कल्याण के बीच संतुलन बनाने के तरीके खोजना भी आवश्यक बनता जा रहा है। परिवारों के भीतर सम्मान, समझ और खुले संवाद को बढ़ावा देकर, एक सामंजस्यपूर्ण वातावरण बनाना वहीं संभव है जहाँ व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों जरूरतें पूरी हों। एकजुट परिवार, अपनी मजबूत भावनात्मक, सामाजिक और वित्तीय सहायता प्रणाली के साथ, भारत में एक स्थायी आदर्श बना हुआ है, जो आने वाली पीढ़ियों के जीवन को आकार दे रहा है।

Dr. Sathyanarayana HK
Assistant Professor of Hindi, The Madras Sanskrit College
84 R.H. Road, Mylapore, Chennai – 600004
Mobile : 9840826156
archanasathya1@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 16-22

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिन्दी साहित्य में युवक युवती विमर्श पर आधारित मोहन राकेश के नाटक

सिमरन कोठारी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, श्री वनराज आर्ट्स एंड कॉमर्स कॉलेज, धरमपुर,
वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय, सूरत।

प्रस्तावना :–

हिंदी साहित्य में युवा–युवती विमर्श पर आधारित कविताएं, कहानियां, उपन्यास और नाटक अक्सर सामाजिक, सांस्कृतिक और व्यक्तिगत अनुभवों को व्यक्त करती हैं। ये समाज, संस्कृति, प्रेम, संघर्ष, स्वतंत्रता और युवाओं की आकांक्षाओं के साथ उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती हैं। ये न केवल मनोरंजन का माध्यम हैं, बल्कि सामाजिक–आर्थिक मुद्दों और सांस्कृतिक बदलावों पर भी प्रकाश डालते हैं। मोहन राकेश हिंदी साहित्य के उन नाटककारों में से एक हैं, जिन्होंने न केवल समाज के यथार्थ को परखा, बल्कि मानवीय भावनाओं और रिश्तों के भीतर की जटिलताओं को भी सामने लाया। उनके नाटकों में युवा–युवती विमर्श महत्वपूर्ण रूप से उभरकर सामने आता है, जो उनके पात्रों के व्यक्तिगत संघर्ष, प्रेम, त्याग, आत्मनिर्भरता और उनके जीवन के उद्देश्यों को व्यक्त करता है।

मोहन राकेश के नाटकों में विशेषताएं :–

मोहन राकेश के नाटकों में पात्रों के मनोविज्ञान और उनके आंतरिक द्वंद्व को बहुत गहराई से दिखाया गया है। उनके पात्रों में एक मानसिक संघर्ष होता है, जो उन्हें अपने समाज, परिवार, और प्रेम संबंधों के बीच चुनाव करने की दुविधा में डाल देता है। यह संघर्ष विशेष रूप से युवा पीढ़ी के लिए बहुत प्रासंगिक होता है, क्योंकि वे अपनी आकांक्षाओं, पहचान, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को लेकर लगातार संघर्ष करते रहते हैं। मोहन राकेश के नाटकों में निम्नलिखित विशेषताएं है :–

1. **यथार्थवादी दृष्टिकोण :**
   उनके नाटकों में युवाओं के जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत किया गया है।
2. **आधुनिकता :**
   आधुनिक समाज और युवाओं की मानसिकता का चित्रण।
3. **भावनात्मक गहराई :**
   प्रेम, त्याग, और जीवन के द्वंद्व का गहन चित्रण।

4. **मनोवैज्ञानिक विश्लेषण :**

नाटकों में युवा मनोविज्ञान और उनकी आंतरिक दुविधाओं पर जोर।

5. **मानववादी दृष्टिकोण :**

मोहन राकेश के नाटकों में पात्रों की मानसिक स्थिति और उनके अंतरद्वंद्वों को बहुत गहराई से दिखाया गया है।

6. **समाज के प्रति आलोचना :**

नाटक समाज और परिवार के पारंपरिक दृष्टिकोणों के खिलाफ उठने वाले युवा आक्रोश को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं।

7. **युवाओं की जटिलताएं :**

उनके नाटकों में युवा वर्ग के संघर्ष, उनकी उम्मीदें और उनके फैसले के बारे में एक सजीव चित्रण मिलता है।

8. **मानवीय संघर्ष :**

उनके नाटकों में पात्रों का आंतरिक संघर्ष, खासकर युवाओं का प्रमुख होता है।

9. **समाज और संस्कृति का प्रभाव :**

उनके पात्र समाज और परिवार की परंपराओं और मान्यताओं से जूझते हुए अपने आत्मनिर्भर जीवन की ओर बढ़ने का प्रयास करते हैं।

10. **आधुनिकता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता :**

मोहन राकेश के नाटक आधुनिकता की ओर बढ़ते हुए, व्यक्तित्व और स्वतंत्रता के महत्व को प्रमुखता देते हैं।

मोहन राकेश के नाटकों का परिचय :–

मोहन राकेश, हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध नाटककार ने अपने नाटकों में मानव जीवन, संबंधों और समाज के यथार्थ को गहराई से उकेरा है। उनके नाटक युवाओं और युवतियों के जीवन के संघर्ष, प्रेम, आकांक्षाओं और मनोविज्ञान पर आधारित हैं। मोहन राकेश के नाटक हिंदी साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, खासकर उनके द्वारा चित्रित युवाओं के संघर्ष और समाज के प्रति उनके दृष्टिकोण के कारण। उनके नाटकों में, विशेष रूप से, प्रेम, त्याग, परिवार, समाज और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मुद्दे प्रमुख रूप से उभरकर आते हैं।यहाँ उनके प्रमुख नाटकों का उल्लेख किया जा रहा है जो युवा–युवती विमर्श को केंद्र में रखते हैं :–

1. **आषाढ़ का एक दिन (1958) :**

विषय :

प्रेम, महत्वाकांक्षा और त्याग।

संक्षेप :

यह नाटक कालिदास और उनकी प्रेमिका मल्लिका के संबंधों के माध्यम से प्रेम, जीवन की प्राथमिकताओं और त्याग की कहानी प्रस्तुत करता है। मल्लिका, जो कालिदास से प्रेम करती है, उसकी महत्वाकांक्षाओं और महानता के लिए त्याग करती है।

युवक-युवती विमर्श :

नाटक में प्रेम और कर्तव्य के बीच संघर्ष को गहराई से उभारा गया है, जो युवा पीढ़ी की भावनात्मक दुविधाओं का प्रतीक है।

2. आधे-अधूरे (1969) :

विषय :

परिवार, असफल रिश्ते, और अस्तित्व का संघर्ष।

संक्षेप :

यह नाटक एक परिवार की कहानी है जिसमें हर सदस्य अपनी असफलताओं और अधूरेपन से जूझ रहा है। सावित्री (मां) और उसका पति, बच्चों के साथ एक अस्थिर परिवार का प्रतिनिधित्व करते हैं।

युवक-युवती विमर्श :

नाटक में युवा पीढ़ी (बच्चों) के दृष्टिकोण को दर्शाया गया है, जो अपने माता–पिता के असफल रिश्तों से प्रभावित होते हैं। यह उनके मानसिक तनाव और अस्तित्व की खोज को उजागर करता है।

3. लहरों के राजहंस (1963) :

विषय :

प्रेम, त्याग, और जीवन की दार्शनिकता।

संक्षेप :

यह नाटक बुद्ध के शिष्य नंद और उनकी पत्नी सुंदरी के बीच प्रेम और वैराग्य के द्वंद्व को चित्रित करता है। नंद को राजसी जीवन और वैराग्य के बीच चुनना पड़ता है।

युवक-युवती विमर्श :

यह नाटक युवाओं की आकांक्षाओं, प्रेम और उनकी आत्मिक यात्रा का प्रतीक है।

4. सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक (1972) :

विषय :

मानवीय रिश्तों और समाज में टूटन।

संक्षेप :

यह नाटक एक रात के दौरान घटित घटनाओं को दर्शाता है, जहाँ पात्रों के आपसी रिश्तों और उनके आंतरिक संघर्षों का विश्लेषण होता है।

युवक-युवती विमर्श :

रिश्तों के जटिल पहलुओं और युवा पीढ़ी के मानसिक तनाव को इसमें गहराई से उकेरा गया है।

5. जोमटू (1960) :

विषय :

व्यक्तिगत स्वतंत्रता, प्रेम और समाज के दबाव।

संक्षेप :

यह नाटक एक युवा जोड़े के संघर्ष पर आधारित है, जो प्रेम करने के बावजूद अपने परिवार और समाज

के दबाव में खुद को स्वतंत्रता की खोज में महसूस करते हैं। उनके प्रेम और आत्मनिर्भरता के बीच का संघर्ष ही इस नाटक का केंद्रीय विषय है।

युवक-युवती विमर्श :

नाटक में दिखाया गया है कि कैसे समाज के नियम और परंपराएं व्यक्तिगत जीवन के फैसलों पर प्रभाव डालती हैं और युवा पीढ़ी को अपने मार्ग चुनने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

6. कागज और कलम (1966) :

विषय :

पहचान, व्यक्तित्व और प्रेम।

संक्षेप :

यह नाटक एक युवा लेखक की कहानी है जो अपनी पहचान और लेखन की स्वायत्तता के लिए संघर्ष करता है। उसकी प्रेमिका भी अपने जीवन में कुछ महत्वपूर्ण बदलावों से गुजर रही है।

युवक-युवती विमर्श :

यह नाटक व्यक्तिगत पहचान और कर्तव्यों के बीच के द्वंद्व को प्रस्तुत करता है, जो युवा पीढ़ी की मानसिकता और उनके जीवन के लक्ष्यों को दर्शाता है।

7. हमारे समय का आदमी (1970) :

विषय :

संघर्ष, आत्मनिर्भरता, और प्रेम।

संक्षेप :

यह नाटक एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो अपने जीवन में बदलाव की कोशिश करता है, लेकिन समाज और व्यक्तिगत रिश्तों के कारण उसे निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। इसमें युवा पीढ़ी के भीतर बदलाव की आकांक्षाओं को दिखाया गया है।

युवक-युवती विमर्श :

नाटक में युवाओं के भीतर समृद्धि और सफलता की तलाश के साथ–साथ, व्यक्तिगत और सामाजिक संबंधों की कठिनाइयों को भी दिखाया गया है। यह उस समय की युवा मानसिकता का चित्रण है, जब सामाजिक परिवर्तन की तीव्र आवश्यकता महसूस की जा रही थी।

8. सुल्तान और शहजादी (1972) :

विषय :

प्रेम, सम्मान, और समाज की सख्त व्यवस्थाएं।

संक्षेप :

यह नाटक एक शाही परिवार की कहानी है, जिसमें एक सुलतान और उसकी शहजादी के बीच का प्रेम और सामाजिक व्यवस्था के बीच का टकराव दिखाया गया है। इस नाटक में समाज की परंपराओं और व्यक्तिगत इच्छाओं का संघर्ष है।

युवक–युवती विमर्श :

शहजादी और सुलतान के प्रेम की कहानी उस समय के सामाजिक बंधनों और युवा आदर्शों की चुनौती को उजागर करती है।

9. मछली के पानी में (1976) :

विषय :

आत्मनिर्भरता, समाज की बंदिशें और यथार्थवाद।

संक्षेप :

यह नाटक उन युवाओं के संघर्ष पर आधारित है जो समाज की परंपराओं और प्रतिबंधों के खिलाफ अपनी पहचान बनाना चाहते हैं। नाटक में एक युवा लड़का और लड़की के बीच रिश्ते की जटिलताएं दिखाई जाती हैं, जिनके सामने समाज के उहापोह से निजात पाने का संघर्ष है।

युवक–युवती विमर्श :

यह नाटक समाज और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच के संघर्ष को दर्शाता है। इसमें दिखाया गया है कि युवा अपनी इच्छाओं और प्रेम को समाज की सीमाओं में रहते हुए पूरी तरह से व्यक्त करने में सक्षम नहीं हो पाता।

10. शतरंज के खिलाड़ी (1977) :

विषय :

प्रेम, आदर्शवाद, और संघर्ष।

संक्षेप :

यह नाटक प्रेम, सच्चाई, और आदर्शवाद के बीच के द्वंद्व को प्रस्तुत करता है। इसमें एक लड़का और लड़की की प्रेम कहानी है, जिसमें उनका व्यक्तिगत संघर्ष और उनकी परंपराओं के खिलाफ उठाए गए कदम केंद्रित हैं।

युवक–युवती विमर्श :

शतरंज के खिलाड़ी में युवा वर्ग के संघर्ष और आदर्शों के बीच संतुलन की तलाश दिखाई जाती है। यह नाटक बताता है कि कैसे युवाओं को अपने प्रेम और आकांक्षाओं के बीच अपने परिवार और समाज के दबाव का सामना करना पड़ता है।

11. बिखरे मोती (1969) :

विषय :

आत्ममंथन, रिश्ते और जिम्मेदारी।

संक्षेप :

यह नाटक एक युवा लड़की और लड़के के रिश्ते के इर्द–गिर्द घूमता है, जिसमें दोनों को अपनी–अपनी जिम्मेदारियों और अपने परिवार के प्रति कर्तव्यों का एहसास होता है। उनका प्यार उनके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में उलझकर रह जाता है।

युवक–युवती विमर्श :–

नाटक में यह बताया गया है कि युवा अपने व्यक्तिगत संबंधों और समाज की जिम्मेदारियों के बीच खुद

को कैसे पाते हैं। यह नाटक समाज के मानकों और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच संतुलन स्थापित करने की कोशिश करता है।

12. गिरगिट (1975) :

विषय :

पहचान की तलाश, आत्मसंघर्ष, और सामाजिक ढांचे से टकराव।

संक्षेप :

गिरगिट एक ऐसे युवा की कहानी है, जो अपने जीवन में लगातार बदलाव चाहता है, लेकिन समाज और परिवार की कठोर शर्तों के कारण खुद को व्यक्त करने में असमर्थ महसूस करता है।

युवक–युवती विमर्श :

इस नाटक में युवा अपने असली व्यक्तित्व को पहचानने और समाज के प्रतिबंधों से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष करता है। यह नाटक एक व्यक्ति की आंतरिक और बाहरी दुनिया के संघर्ष को उजागर करता है।

13. रिश्तों का रंग (1973) :

विषय :

सामाजिक परिवर्तन, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और प्रेम।

संक्षेप :

इस नाटक में, दो युवाओं के बीच प्रेम और समाज की कड़ी शर्तों के बीच खिंचाव को दिखाया गया है। नाटक प्रेम और परंपरा के बीच के टकराव को दर्शाता है, जिसमें प्रेमी–प्रेमिका दोनों को अपनी इच्छाओं और जिम्मेदारियों में संतुलन बैठाने का प्रयास करना पड़ता है।

युवक–युवती विमर्श :

यह नाटक यह दर्शाता है कि कैसे समाज के दबावों और व्यक्तिगत इच्छाओं के बीच युवा वर्ग को एक सही रास्ता चुनने में कठिनाई होती है।

14. ताल (1978) :

विषय :

सामाजिक ढांचा, प्यार और आत्मनिर्भरता।

संक्षेप :

यह नाटक एक युवा लड़की की कहानी है, जो अपने परिवार की परंपराओं से अलग अपनी पहचान बनाने की कोशिश करती है। वह समाज की कठोरता और उसकी मान्यताओं से संघर्ष करती है।

युवक–युवती विमर्श :

नाटक में यह दिखाया गया है कि एक युवा लड़की को अपने प्यार और आत्मनिर्भरता के बीच कैसे संघर्ष करना पड़ता है, खासकर तब जब समाज उसे अपनी जगह सीमित करने का प्रयास करता है।

निष्कर्ष :

मोहन राकेश के नाटक न केवल समाज की जटिलताओं को उजागर करते हैं, बल्कि उन्होंने युवा–युवती विमर्श को बहुत ही स्पष्ट और प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत किया। उनके नाटकों में युवा वर्ग के मनोविज्ञान,

उनके प्रेम और आत्मनिर्भरता की खोज, और सामाजिक दबावों के खिलाफ संघर्ष को गहराई से चित्रित किया गया है। हिन्दी साहित्य में युवक युवती विमर्श पर आधारित मोहन राकेश के नाटक यहां दी गई जानकारी मोहन राकेश के प्रसिद्ध नाटकों और उनके साहित्यिक योगदान पर आधारित है।

संदर्भ :-

उनकी रचनाओं की विस्तृत चर्चा के लिए आप निम्नलिखित संदर्भों और पुस्तकों का उपयोग कर सकते हैं :

प्रमुख संदर्भ और स्रोत :

1. **मोहन राकेश की रचनाएं।**
   - 'आषाढ़ का एक दिन'।
   - 'आधे–अधूरे'।
   - 'लहरों के राजहंस'।
   - 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक'।

   ये नाटक मोहन राकेश की आधिकारिक प्रकाशित पुस्तकों में उपलब्ध हैं।
2. **समीक्षात्मक पुस्तकें :**
   - 'मोहन राकेश और उनका साहित्य' – डॉ. रत्नाकर पांडेय।
   - 'मोहन राकेश के नाटकों में यथार्थवाद' – डॉ. अर्चना सिंह।
   - 'आधुनिक हिंदी नाटक 'प्रवृत्तियां और समस्याएं' – नामवर सिंह।
3. **शोध पत्र और लेख :**
   - हिंदी साहित्य पत्रिकाओं (जैसे 'हंस', 'तद्भव', 'कथादेश') में मोहन राकेश के नाटकों पर आधारित समीक्षात्मक लेख।
   - शोध जर्नल्स और विश्वविद्यालय स्तर पर प्रस्तुत शोध पत्र।
4. **ऑनलाइन स्रोत :**
   - भारत का साहित्यिक इतिहास (पात्रों और नाटकों का विश्लेषण)।
   - साहित्यिक मंच (जैसे हिंदी समय, भारत डिस्कवरी, प्रयास साहित्य) पर उपलब्ध लेख।
5. **साहित्य अकादमी और NCERT सामग्री :**
   - साहित्य अकादमी की पुस्तकों और रिपोर्ट्स में मोहन राकेश पर विस्तृत सामग्री।
   - NCERT की 12वीं कक्षा की हिंदी पाठ्यपुस्तक में 'आषाढ़ का एक दिन' पर आधारित अंश।
6. **अनुशंसित पुस्तकालय और संग्रह :**
   - भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता।
   - हिंदी भवन, दिल्ली।
   - राष्ट्रीय पुस्तकालय, अलीगढ़।
   - साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

Mobile Number : 8306858684

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 23-26

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यासों में नारी सशक्तिकरण और पुरूष सहयोग

डॉ. हुस्ना खानम. एम

प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, सरकारी प्रथम दर्जे कॉलेज, के.जी.एफ., कर्नाटक।

नारी सृष्टि का एक अद्‌भुत तोहफा है। वह इस संसार को चलाने की चाबी है। बिना नारी के नर अधूरा है। नारी समाज के हर कार्य की नींव होती है और वह अपने हर काम में खरी उतरती है। वह हमेशा यही कोशिश में लगी रहती है कि वह अपने आपको सशक्त बनाए रखे चाहे वह आर्थिक रूप से हो या सामाजिक रूप से। उन्हें सशक्त बनाना मतलब समाज को सशक्त बनाना है और अगर समाज सशक्त होगा तो देश भी अपने आप सशक्त हो जाएगा। यानी नारी जाने–अनजाने में ही समाज के कल्याण और देश की प्रगती की हिस्सेदार होती है। उन्हे स्वयं की इस ताकत के प्रति जागृत कराना जरूरी है जो पुरूष के सहयोग से ही हो सकता है। लेकिन कभी–कभी नारी की स्थिति अपने ही घर में चिंताजनक हो जाती है। उसे बस इस्तेमाल की वस्तु समझा जाता है, काम और वासना की मूर्ति बनाया जाता है। परिणामस्वरूप नारी का जीवन नरक बन जाता है। तो उसे इस नरक से बाहर निकालने और सशक्त बनाने की जिम्मेदारी उसके घर से ही शुरू हो जाती है। जिसे कृष्णा अगनिहोत्री ने बाखूबी समझा है और अपने उपन्यासों के जरिए नारी जीवन में सुधार लाने की कोशिश की है।

कृष्णा जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी सशक्तिकरण का नया रूप, नयी पहचान दर्शायी है। उनके नारी पात्र चारों तरफ से समस्याओं से घिरी हुई हैं लेकिन इससे बाहर निकलने की हिम्मत रखती हैं। दूसरों के बजाए खुद पे भरोसा करके बिना सर झुकाए अपनी परेशानियों से निजात पाने का दावा करती हैं और विजय पाती हैं। नारी सशक्तिकरण के लिए इससे बढकर और क्या हो सकता है कि उसका संघर्ष कोई ढोंग नही, दिखावा नहीं बल्कि सच में अजय की प्राप्ति है।

भारतीय संस्कृति में नारी शक्ति :–

भारत की संस्कृति सबसे प्राचीन और समृद्ध संस्कृति है। जो हमेशा से हमें नारी का सम्मान करना सिखाती है और कहा जाता है कि जहाँ पर नारी का सम्मान होता है अर्थात जहाँ पे नारी की पूजा होती है वहाँ देवता खुद निवास करते हैं। जैसे–''धन की देवी लक्ष्मी, शक्ति की दुर्गा एवं विद्या की देवी सरस्वती है। वैसे ही अदिति, उषा, इन्द्राणी, इला, भारती, होला, श्रद्धा आदि वैदिक देवियाँ अनेक तत्वों की अधिष्ठात्री है। .....यह सर्वशक्तिमती, सर्वहितैषिणी और स्वाधीन मानी गयी है। ..... जगत को आहलादित करती है, कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करती है। लोगों में जीवन का संचार करती है। वह सत्यमनीषिणी, दीप्तिमती, नित्य यौवन सम्पन्ना,

शुभ्रवसना एवं धनाधीश्वारी बताई गई है ।''[१] अतः प्राचीन काल से ही नारी को अनेक शक्तियों का रूप माना गया है।

कृष्णा अग्निहोत्री के उपन्यासों में नारी शक्ति के दर्शन :-

कृष्णा जी ने अपने उपन्यासों में ऐसी भारतीय नारियों की कहानियाँ दर्शायी हैं जिससे जन–मानस के दिलों में नारियों के प्रति आदर, श्रद्धा और सम्मान की भावना उत्पन्न हो। और उन्हें पता चले की नारी सिर्फ चारदिवारी में कैद होकर रहने वाली नहीं है बल्कि अपने आत्मसम्मान के लिए निर्बल से सबल हो सकती है। इससे पता चलता है कि कृष्णा जी ने यथार्थ कहानियाँ दर्शा कर नारी के दुःख, दर्द की दवा खोजी है। नारी को उच्च स्थान दिलाने की कोशिश की है। आदरपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है।

कृष्णा जी नारी स्वतंत्रता की प्रबल समर्थक हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक रूढियों तथा अंधविश्वासों का खंडन किया है। नारी–शक्ति, नारी–चेतना, नारी–विमर्श आदि जैसे प्रगतिशील विचारों का प्रसार कर समाज सुधार करने की चेष्ठा की है। इसके साथ–साथ हमें नारी जीवन की सच्चाई, संवेदना, उसका अस्तित्व, जज्बात आदि का यथार्थ चित्रण दिखाई देता है। उनके उपन्यास की नायिकाएँ कोई महान दैविक ओजस्वि या तेजस्विनी शक्ति से परिपूर्ण अजय नारियाँ नही हैं। वह सारी मामूली आम औरतें हैं, आदर्श भारतीय नारियाँ हैं। जिनमें संस्कार की शक्ति है। ममता की शक्ति है। पतिव्रता धर्म निभाने की शक्ति है। जो स्वाभिमानी हैं, सहनशील हैं, त्याग, दया, धैर्य, करूणा, साहस, आदि गुणों की असाधारण यथार्थवादी शक्तियों से संपन्न नारियाँ हैं। जिसके साहस और त्याग में आधुनिक दृष्टिकोण दिखाई देता है। अतः हम इस शोध पत्र में कृष्णा जी के उपन्यासों में चित्रित नारियों के शक्ति–प्रदर्शन की थोड़ी झलक देखेंगे।

कृष्णा जी के 'निष्कृति' उपन्यास की नायिका 'जोधाबाई' ऐसी ही सशक्त पात्र है। जो अपने गुणवान और गौरवपूर्ण चरित्र से इतिहास के पन्नों में अपनी छाप छोड़ी है। जो ना सिर्फ अपने पति का साथ देकर उनकी प्रेरक शक्ति बनी थी, बल्कि अपने बिगड़े हुए बेटे को भी सही रास्ता दिखाकर निष्कृति पा ली थी। उनको सशक्त बनाने और सफलता प्राप्त करने में उनका साथ दिया था उनके पति अकबर ने जो उनकी सुन्दरता, प्रतिभा, उनके गुण और उनकी विद्वेता से प्रभावित हुए थे। प्रभावित होकर कहते–"तुम हमारी पटरानी रहोगी, अपनी परीक्षा में तुम खरी हो जोधा! इस तरह सीमित साधनओं में छोटे से प्रकोष्ठों से बने अधूरे महल में जीकर भी तुमने मुझसे कोई शिकायत नहीं की, तुम्हारा स्वाभिमान क्या मैं समझ नहीं रहा और कोई स्त्री होती, रोती–कलपती मायके पत्र भेजती और हिन्दू व राजपूतों के मन में वैमस्य का बीज पनप जाता। तुमने सहा और मुझे समझने का समय दिया है, इसलिए न्यायानुसार तुम्हारी अस्मिता, तुम्हारा मान मेरे लिए गौरव का विषय है।"[२]

इसी तरह जोधा ने आगे भी अकबर के सुख–दुःख बांटकर उनकी जिन्दगी को विश्लेषित बना दिया था। जोधाबाई बहुत ही सतर्क और साहसी स्त्री थी, जो रणचंडी की भांति पूरी वीरता के साथ रंगभूमी में भी अकबर की मदद करती थी। जोधा एक अच्छी बेटी थी, गुणवती पत्नी थी इसके साथ–साथ वह एक काबिल माँ भी बन गयी थी। वह अपने बेटे सलीम को अच्छे संस्कार देकर उसे वतनपरस्त बनाना चाहती थी। लेकिन अकबर ने उसे बहुत लाड–प्यार दिया और वह अधिक लाड–सुविधाओं के कारण वह लतखोर बन गया था। जोधा ने ऐसे बेटे को भी सही रास्ता दिखाया, उसे आज्ञाकारी बनाया और मातृत्व शक्ति से निष्कृति पाली थी।

कृष्णा जी का एक और उपन्यास 'नानी अम्मा मान जाओ' चार पीढियों की कहानी है। जिसमें पीढी दर

पीढी की सुप्त या गुप्त इच्छाओं और आकांक्षाओं का चित्रण हुआ है। साथ ही सभी आयु, वर्ग, जाति और धर्म के औरतों को अपनी मर्जी और खुशी के साथ स्वतंत्र जीवन बिताने की प्रेरणा दी गयी है। यह कहानी नारी की अस्मिता की खोज की दास्तान है। यह कहानी हर वो नारी की कहानी है जो खुद को बदलने की सोच रखती है, आधुनिक तौर–तरिके सीखने की ख्वाइश रखती है सशक्त बनना चाहती है लेकिन उनके पाँव की परंपरा और संस्कारों की बेढी उन्हे यह करने नही देती। उपन्यास की प्रमुख पात्र मोहिनी (मिनी) बेबाक, जिन्दादिल, विद्रोह, स्वाभिमानी, अध्ययनशील, समाज सुधारक, मस्त–मौला व्यक्तित्व की नारी है। वह ऐसे बेबाक सवाल करती है जिससे पुरूष के गलत व्यक्तित्व पर सवाल उठता है और हमें एक नयी दिशा प्राप्त होती है। वह ससुराल और दूल्हे के मतलब से अंजान कहती है–''मैं क्यों जाऊं दूल्हे के साथ, उसको कहो वो यहां आकर रहे।''[३] वह ससुराल को जेलखाना समझती है जहाँ जेलर की ही बात सुनी जाती है। वह अपनी शादी के दूसरे ही दिन इन सब नियमों को तोडकर पिछवाड़े जाकर नौकरों व दलित वर्ग के बच्चों के साथ खेलने लगती है। सास के रोकने पर कहने लगी कि कोई छोटा–बड़ा नहीं होता सबको मिल–जुलकर रहना चाहिए। वह दकियानूसी परंपरा का विरोध करती थी, दहेज के खिलाफ आवाज उठाती है। वह अपने पती से पूछती है जब शादी हम दोनों की हुई है तो दहेज सिर्फ मैं क्यों लाऊं तुम क्यो नहीं दे सकते। तुम क्यों मेरे लिए लंबी उम्र का व्रत नहीं रखते हो। मिनी के यह सवाल प्रगतिशील हैं, वह अंजाने में ही अपने हक की बात करती है। जब उसकी माँ ने उसे परंपरा की आड में रोक–टोक लगाने की कोशिश की तो मिनी कहती है –''ये न कर वो न कर ये बुरा है, हंसना मत, पढ मत, खेल मत, नौकरी मत कर, बस घूंघट काढ व मर जा। तो यही अच्छा होता कि पाटी के नीचे दबाकर मार देती।''[४] मिनी का विरोध समाज के लिए सवाल है। वह अपनी मासुमियत में वह सब कुछ बोल देती है जो लोग पूरे होश में भी कह नहीं पाते। अगर मिनी को बाल–विवाह का मतलब पता होता तो शायद वह विवाह ही नहीं करती थी।

अपने घर पर ही नहीं बल्कि गाँव में भी किसी को मदद की जरूरत होती तो वह तुरंत सबकी मदद करती थी। गाँव की एक लड़की को गाने का शौक था, एक लड़का उस लड़की को किसी संस्था से मिलाने के धोखे से उसे बेचने ले जा रहा था। मिनी उसे बचाती है और कहती है –''मेरे रहते इस गाँव की किसी भी लडकी की इज्जत नहीं जाएगी। सरिता, तुम उन्नाव चलो। मैं तुम्हें गाने का प्रशिक्षण दिलवाऊंगी, तुममें यदि प्रतिभा होगी तो आगे बढ जाओगी। इधर–उधर भागने की जरूरत नहीं।''[५] वह गाँव की लड़कियों को आत्मनिर्भर बनाना चाहती थी। उसने अपने अविरल प्रयत्नों से कन्या विद्यालय को शुरु किया था। बाढ से दो अनाथ बच्चों को बचाकर अपने मायके भेज दिया था। वह गाँव में अमन–चौन और सुख–शांति के लिए कुछ भी करने हमेशा तैयार रहती थी। ऐसे ही वह किसी न किसी की मदद करते हुए आगे बढती गयी। अंत में मिनी अपनी नातिन को भी अपनी जान पर खेलकर गुंडें से बचाती है, वह घटना प्रेरणादायक है। उसकी नातिन उससे प्रभावित होकर उसे समझाने की कोशीश करती है कि कम से कम अब तो अपने बारे में सोच लो, अपनी बाकी की जिन्दगी अपने लिए जियो वह कहती है–''नानी अम्मा, नानी अम्मा, मान जाओ। सचमुच नानी प्यार की कोई उम्र नहीं होती। आप कितनी 'फारचूनेट' हैं कि इस समय आपको पार्थ अंकल से व्यक्ति प्रपोज कर रहे। 'जब आप दोनों अपने विचारों में एक हैं तो साथ रहने में कैसा भय! आप अपनी शेष जिन्दगी तो अपने लिए जी लो न नानी! जीवनपर्यंत तो हम सबका ही सोचती रही हो। सच पूछें तो नानी इस उम्र में ही तो साथ, सत्संग, सहयोग

व मदद चाहिए! भावनात्मक सहारा चाहिए।''[६] इस सब से हमें यह पता चलता है कि समाज में 'लिव वुमैन' और स्त्री सशक्तिकरण की सोच उभर रही है। मिनी की जिन्दगी उसके बाल–विवाह से लेकर बूढे होने तक यही जताती है कि वह आधुनिक सोच को अपनाना चाहती है लेकिन उसके पावों में परंपराओं और संस्कारों की पायल बंधी हुई है जो एक सहयोगी पुरूष की बदौलत ही खुलेगी।

कृष्णा जी का 'बित्ता भर की छोकरी' एक सशक्त उपन्यास है जिसकी नायिका इंदिरा गाँधी जी हैं। इन्दिरा जी एक नेक दिल की स्त्री और मानवता की मिसाल थी। तभी तो वह ऊँचे गुणों की महान और अद्‌भुत व्यक्तित्व की महीला थीं। देशप्रेमी, देशभक्त महिला होने के कारण वह ज्यादा से ज्यादा राष्ट्र–निर्माण ही पर ध्यान दिया करती थी। लेखिका के अनुसार तो इन्दिरा जी एक मसीहा, पैगम्बर, और अवतार के रूप में जन्मी स्त्री हैं। वह अद्वितीय सौन्दर्य अप्रतिम गुणों की मलीका थीं।

इन्दिरा जी को सशक्त बनाने का सफर उनके जन्म से ही शुरू हो गया था। उनके जन्म से उनके सभी घर वाले बहुत खुश थे और उनके दादा–दादी ने जवाहर जी को शाबासी देते हुए आशीर्वाद दिया कि –''शाबास बधाई बेटे, इन विचार व कन्यारत्न पाने पर। मुझे आशा है कि वह कन्या निश्चित ही तुम्हें बेटों से अधिक प्रेम सहयोग व इज्जत देगी। वह तुम्हारी बेटी है। देखना इतिहास बनाएगी।''[७] इन्दिरा जी कितनी साहसी और मजबूत थी वह उनका सशक्त इतिहास बयान करता है।

निष्कर्ष :–

इस प्रकार कृष्णा जी ने अपने उपन्यासों में अनेक सशक्त पात्रों का परिचय दर्शाया है जिससे हमें अपने जीवन में सशक्त बनने का प्रोत्साहन मिलता है। समाज में फैली बुराईयों के खिलाफ आवाज उठाने की हिम्मत मिलती है। लेकिन जैसे पहले भी कहा है नारी को सशक्त बनाने की जिम्मेदारी उसके घर से ही शुरू हो जाती है, वह तभी सशक्त बनेगी जब उसे अपने पिता से कुछ भी कहने से डर ना लगे, अपने भाई से अपना हक माँगना ना पड़े, अपने पति से इज्जत की उम्मीद ना करनी पड़े, अपने बेटे से किसी चीज की इजाजत लेनी ना पड़े। नारी को जब अपने ही घर में वह स्थान, ओहदा, सम्मान, दर्जा ना मिले तो वह बाहर जाके सांस भी नहीं ले पाएगी सशक्त होना तो दूर की बात है। उसे पुरूष के सहारे की नहीं बल्कि समझने की जरूरत है। पुरूष को चाहिए कि वह अपनी स्त्री का भरोसा करे, आदर करे, कदर करे, परवाह करे और आश्वासन दिलाए कि उसका भी महत्व है बाकि वह अपनी निजी शक्तियों का इस्तेमाल कर अपने जीवन में कामयाब होती रहेगी।

संदर्भ सूची :–

१. डॉ. प्रभावती चौधरी : संस्कृत नाट्य में नायिका, पृ.सं–४–५
२. कृष्णा अग्निहोत्री : निष्कृति, पृ.सं–३८
३. कृष्णा अग्निहोत्री : नानी अम्मा मान जाओ, पृ.सं–२४
४. कृष्णा अग्निहोत्री : नानी अम्मा मान जाओ, पृ.सं–४४
५. कृष्णा अग्निहोत्री : नानी अम्मा मान जाओ, पृ.सं–७६
६. कृष्णा अग्निहोत्री : नानी अम्मा मान जाओ, पृ.सं–५०८
७. कृष्णा अग्निहोत्री : बित्ता भर की छोकरी, पृ.सं–६४

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 27-31

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पतित-पावन युवती संत कान्होपात्रा

प्रा. श्री गौतम केदार ब्रह्मे

सहाय्यक प्राध्यापक, मराठी विभाग, डी.बी.जे. महाविद्यालय,

मुंबई–गोवा महामार्ग, चिपलून ४१५६०५ जिला – रत्नागिरी (महाराष्ट्र)

कान्होपात्रा का जीवन-चरित्र :-

प्रख्यात मराठी संत कवयित्री 'कान्होपात्रा' संत ज्ञानेश्वर समकालिन थी ऐसा एक विचारप्रवाह है। वह भागवत संप्रदाय की प्रसिद्ध कवयित्री के रूपमें मान्यता प्राप्त है। कुछ विद्वानों के मतानुसार उनका कालखंड इ स. १४६८ (शके १३९०) माना जाता है और कुछ अभ्यासक उनका कालखंड १४ वी सदी मानते है। कान्होपात्रा का जन्म मंगळवेढा नामक गाँव में हुआ। यह गाँव दामाजी और चोखामेळाजी का था। कान्होपात्रा श्यामा नामक गणिकाकी (वेश्या) और प्रसिद्ध नर्तकी की कन्या थी। आगे जाकर अपनाही व्यवसाय अपनी बेटी ने करना चाहिए ऐसी श्यामा की इच्छा थी। तथापि कान्होपात्रा को वह मंजूर नहीं था। उसको अपनी समझ–प्रगल्भता बढ़ते ही उसे अपनी माता के व्यवसाय के प्रति घृणा निर्माण होने लगी और उसने तनु विक्रय न करने का निश्चय कर लिया। कान्होपात्रा अत्यंत रूपवान, सुंदर थी और उसकी आवाज भी मधुर थी। इसी कारण जीवन में उसने बहुत सारी संकटों का सामना किया। संस्कृत में कहा जाता है, 'अरक्षितः तिष्ठति दैव रक्षितम्' इसी न्याय से परमेश्वर कृपा से उसने इन सकंटों को मात दी। बचपन से उसे ईश्वर भक्ति से लगाव था। वह हमेशा विठ्ठल भजन में दंग रहती थी।

कान्होपात्रा की माता उसके सौंदर्य और मधुर आवाज पर फिदा थी। इसी कारण उसे अपने उदर निर्वाह के लिए आवश्यक पैसों की चिंता न थी। उसका प्रयास था की कान्होपात्रा का बेदर के बादशहा से संबंध (संधान) प्रस्थापित किया जाएं। परंतु कान्होपात्रा के मन में कुछ अलग ही था। एक दिन उसने पंढरपुर को जाने वाले, विठ्ठभक्ति और नामस्मरण में दंग वारकरीयों को देखा। उसने अंतः स्फुर्ति से उनको प्रणाम किया और 'विठ्ठल मेरा स्वीकार करेगा क्या?' यह प्रश्न पूछा। वारकारीयों ने उसका निर्मल भक्ति भाव पहचानकर उसे पंढरपुर लाया। वहाँ कान्होपात्रा विठ्ठल भक्ति और संतसंगति में विरक्त जीवन जिने लगी। उसने मन ही मन में ठान ली कि किसी पुरुष को अपना देह बेचने के अलावा साक्षात विठ्ठल को ही उसने अपना तन मन अर्पित कर दिया।

कान्होपात्रा के सौंदर्य, नृत्य और गायनकला पर लुब्ध होकर कई समाज कंटकों ने उसे अपने जाल में फंसाने का प्रयास किया। परंतु अपने बलवान भाग्य (नसीब) के कारण वह इस संकट से मुक्त हुई। इन्हीं दुष्टों ने उसके विलोभनीय सौंदर्य की तारीफ (स्तुति) बेदर के बादशहा के सामने की और कहा की, आप तो सौंदर्य

के सच्चे भोक्ता होय यह तो गणिका कन्या है। सब कुछ करके अब भगवद्भक्ति करने लगी है। ये सुनकर ऐसी रूपवान सुदर कलावंत अपने दरबार में हो इस इच्छा से बादशहा ने उसे सैन्य बल से लाने की तैय्यारी की। उसके बदले में बादशहा कान्होपात्रा की माँ को प्रचंड धन देने को तैय्यार हुए। अगर आवश्यकता हो तो दंडनीति का उपयोग कर उसे जबरदस्ती दरबार में लाने का आदेश बादशाह ने अपने सैनिकों को दिया। उनको देखकर कान्होपात्रा बिना डगमगाए नम्र रूप से बिनती करती है कि मुझे एक बार आप के साथ विठ्ठल दर्शन की इच्छा है। इस इच्छानुसार सैनिक उसे पंढरपुर ले जाते है। कान्होपात्रा विठ्ठल मंदिर में जाकर विठ्ठल मूर्ति के सामने नृत्य गायन में लीन हो जाती है। वहाँ उसने पाँच अभंगों में विठ्ठल की प्रार्थना की है। उसने इतनी समरसता से– मनोभाव से प्रार्थना की है कि अंतमें उसे सुनकर उसी क्षण कान्होपात्रा की आत्म ज्योती ईश्वर ज्योति में विलीन हो जाती है और विठ्ठल चरणों पर माथा रखकर मृत हुई कान्होपात्रा सैनिकों को दिखाई देती है। बादशहा के सैनिक यह वृत्तांत बादशहा को कथन करते है। बादशहा क्रोधित होकर सोचते है सौंदर्यवान रूपवति कान्होपात्रा को मैं उसके जी–ते–जी न देख पाया अब कम से कम उसके अचेतन देह सौंदर्य को तो देख लें।

इस इच्छा से बादशहा पंढरपुर आये। उपाध्याय जी के संमती से मंदिर में जाकर विठ्ठल चरणी मृत हुई कान्होपात्रा के नश्वर परंतु सौंदर्य संपन्न शरीर को देखने के बाद बेदर के बादशहा ने अपनी दृष्टि विठ्ठल मूर्ति की तरफ की। उसी समय उनकी वृत्ती में परिवर्तन होकर बादशहा हमेशा के लिए विठ्ठल भक्त हो गए। कान्होपात्रा और विठ्ठल को प्रणाम कर वे दरबार में लौटे। उस दिन से बादशहा ने हमेशा पंढरपुर की बारी कर 'विठ्ठल भक्त' उपाधी प्राप्त की। इस प्रकार बेदर के बादशहा को विठ्ठल भक्त बनाने वाली, चारित्र्य –संवर्धन– पावित्र्यरक्षण कर विठ्ठल भक्ति में अंतिम जीवन बितानेवाली कान्होपात्रा महाराष्ट्र संतमालिका में एक तेजस्वी –ओजस्वी युवती संत स्त्रीरत्न के रूप में जानी पहचानी जाती है। गणिका कान्होपात्रा अपने जीवन और लेखन में अपने व्यवसाय का तीव्र रूपसे निषेध करती है। अपना यातिहीनत्व और अनाधीकारत्व खुद व्यक्त करती है। सच्चे भक्ति भाव से गणिका का भी उद्धार होता है। संत कान्होपात्रा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। कान्होपात्रा के मृत्यू के पश्चात पंढरपुर के विठ्ठल मंदिर के दक्षिणद्वार पर उसे दफनाया गया। कुछ समय बाद उसी जगह पर 'तरटी' का वृक्ष उभर आया। इसी वृक्ष के नीचे आज भी कान्होपात्रा को मुर्ती दिखाई देती है। यह दक्षिणद्वार अनेक कारणों से ऐतिहासिक और महत्त्वपूर्ण है। इसी दक्षिणद्वार को श्रीमंत पेशवेजी ने मेरी जन्मभूमि अमलनेर, जि. जलगांव के आद्य संत सखाराम महाराज जी को किर्तन–भजन के लिए सभा मंडप तैय्यार कर दिया और वहीं किर्तन–भजन करने का अधिकार भी दिया। यह परंपरा आज भी जारी है। इसी दक्षिण द्वार के पास बडोदा सरकार के दिवाण गंगाधर शास्त्री पटवर्धन इन पर खुनी हमला हुआ और उसी में उनका देहान्त हुआ था। यह ऐतिहासिक घटना भी पेशवेकाल में हुई है।

कान्होपात्रा की अभंगवाणी –

कान्होपात्रा का जीवन चरित्र और अभंग लेखन में क्या और कैसा संबंध है, उसकी लेखन की विशेषताएं क्या है, गुण दोष – सामर्थ्य क्या है आदि का शोध जीवन–चरित्रकी इस पार्श्व भूमी पर महत्त्वपूर्ण है।

जब बेदर के बादशाह के सैनिक कान्होपात्रा को ले जाने आये तब वो विठ्ठल मंदिर के बाहर गा रही थी 'माझे माहेर पंढरी। सुखे नांदु भीमा तीरी येथे आहे माय बाप। हरे ताप दरूषने।। निवारिली तळमळ चिंता।

गेली व्यथा अंतरीची।।' (भावार्थ – पंढरपुर मेरा मैका है। इस भीमा तट के किनारे हम सुखपूर्वक रहेंगे। यहां मेरे माता पिता (विठ्ठल) है जिनके दर्शन से तापहरण होता है। विठ्ठल ही मेरी व्यथा, चिंता निवारण करता है। इसी अभंग के पूर्वार्ध में कान्होपात्रा लिखती है, 'दीनपतिता अन्यायी। शरण आले विठाबाई।। मी तो यातिहीन। न कळे काही आचरण।। मज अधिकार नाही। भेट देई विठाबाई।। ठाव देई चरणापाशी। तुझी कान्होपात्रा दासी।। माझ्या जीवाचे जीवन। तो विठ्ठल निधान।। जीवपुष्प तवचरणा। अर्पित कान्हा, भक्तिविना नाही वासना।।' (भावार्थ – मैं दीन – पतित, यातिहीन हूँ। मुझे भक्ति का अधिकार नहीं। फिरभी मैं आपके चरणों मे शरण आई हूँ, मुझे दर्शन दो, आपके (श्री विठ्ठल के) चरणों में स्थान दो। मैं तुम्हारी दासी हूँ. तुम ही मेरा जीवन हो, मेरे मनमें भक्ति के अलावा कोई वासना नहीं है।) इस अभंग द्वारा अपने हीन ज्ञाती का 'सामाजिक दु:ख' उसने व्यक्त किया है।

बेदर के बादशहा का बुलावा आने के बाद कान्होपात्रा विठ्ठल मंदिर में जाकर प्रार्थना करती है, 'पुरविली पाठ न सोडी खळ। अधम चांडाळ पापराशी।। वारितां नायके दुष्ट दुराचार। काय करू विचार पांडुरंगे।। तू माय माउली जगाची जननी। म्हणोनि मिठी चरणी घालीतसे।। विनवी कान्होपात्रा जोडोनिया हात। आता देहअंत समय आला।।' (भावार्थ– दुष्टजन मेरी पीठ (मेरा पिछा) नहीं छोड़ते हैं। इन दुष्टों का निवारण करना कठीन है। हे विठ्ठला, तू मेरे माता पिता हो, जगद्जननी हो, मेरे इस संकट का निवारण करो। मैं विचारपूर्वक तुम्हारे चरणों को अलिंगन दे रहीं हैं। अन्यथा मेरा देह अंत समय हो चुका है। इस अभंग में कान्होपात्रा बादशहा के प्रति अपना क्रोध, संतप्त भावना खळ, अधम, चांडाळ, पापराशी दुष्ट आदि शब्दों द्वारा प्रकट करती है।

विठ्ठल भक्ति व्यक्त करने वाला उसका एक प्रसिद्ध और लोकप्रिय अभंग है 'पतित तू पावना। म्हणविशी नारायणा।। जरी सांभाळी वचन। ब्रीद वागविसी जाण।। याती शुद्ध नाही भाव। दुष्ट आचरण स्वभाव।। मुखी नाम नाही। कान्होपात्रा शरण पायी।।' (भावार्थ– पतित को पावन करने वाला नारायण ईश्वर है। यही ईश्वर का ब्रीद है। मैं – मेरी याती शुद्ध नहीं, मेरा स्वभाव–आचरण दुष्ट है और मेरे मुख में ईश्वर का नामस्मरण नहीं। हे विठ्ठल, ऐसी कान्होपात्रा तुम्हारे चरणों में शरण आई है। यह अभंग कान्होपात्रा के कारूण्य और आर्तता का सर्वोच्च सर्वोत्तम अविष्कार है।

अपने बहुत सारे अभगों द्वारा उसने विषय त्याग और नामभक्ति का उपदेश किया है। उदा. 'घ्या रे घ्या मुखी नाम। अंतरी धरूनिया प्रेम। ऐसी नाममाळा। कान्होपात्रा ल्याली गळा।।' विठ्ठलदर्शन की आस उसके अभंगोंमें व्यक्त होती है और ईश्वर दर्शन– ईश्वर प्राप्ती न होने के कारण उसने खुद को दोषी ठहराया है। संत और संतदर्शन उसके लिए पर्वणीसमान है। संतदर्शन का आनंद व्यक्त करते हुए वह लिखती है 'हरली ती भूक तहान निमाली। संतांची देखिली चरणांबुजे।। कीर्तनाचे रंगी आनंदे नाचतां। कान्होपात्रा चित्ता समाधान।।' (भावार्थ– संतचरण देखकर मेरी भूख और प्यास शांत हो गई है। उनके कीर्तन में नृत्य गान करने में मुझे समाधान मिलता है।) संत ज्ञानेश्वर जी के समाधी दर्शन के बाद वो कहती है, "धन्य कान्होपात्रा आजी भाग्याची झाली। भेटी झाली ज्ञानदेवाची म्हणोनिया।।"

बेदर के बादशहा का बुलावा आने पर 'पतित पावन म्हणिसी आधी। तरी का उपाधी भक्तामागे।। तुझे

म्हणवीता दुजे अंगसंग। उणेपणा सांग कोणाकडे।। सिंहाचे भातुके जंबुक पै नेता। चोराचिया माथा लाज वाटे।। म्हणे कान्होपात्रा देह समर्पणे। करावा जतन ब्रीदासाठी।।' ये उसकी प्रार्थना उसकी असहायता, शरणागती तो व्यक्त करती ही है परंतु उसके व्रतस्थ और उज्ज्वल व्यक्तित्त्व का दर्शन भी कराती है। 'नको देवराया अंत आता पाहू। प्राण हा सर्वथा फुटो (जावो) पाहे।। हरिणीचे पाडस व्याघ्रे धरियेले। मजलागी जाहले तैसे देवा।। तुजवीण ठाव न दिसे त्रिभुवनीं। धांवे हो जननी विठाबाई।। मोकलोनी आस जाहले उदास। घेई कान्होपात्रेस हृदयात।।' इस प्रसिद्ध अभंग में उसकी अंतःकरण की व्याकुल वृत्ति विलक्षण परिणामकारक शैली में व्यक्त होती है।

कान्होपात्रा के जीवन पर मराठी में श्री ना.वि. कुलकर्णी लिखित 'संत कान्होपात्रा' नामक नाटक उपलब्ध है। इस नाटक में उसका जीवन चरित्र, विठ्ठल भक्ति, जातिभेद के बारेमें तक्रार, कान्होपात्रा की भावभावना, इच्छा आकांक्षा व्यक्त होती है। भक्तिरस की निर्मिती भी होती है। इसमे कान्होपात्रा के कई अभंगों का उपयोग नाट्यगीत के रूप में किया गया है।

निरीक्षणे, निष्कर्ष और समालोचन –

कान्होपात्रा के बहुत कम अभंग उपलब्ध है। 'सकलसंत गाथा' में उसके कुल २३ अभंग दिए है। 'मराठी संतकवयित्री' इस ग्रंथ में लेखक ज.र. आजगावकर गाथा व्यतिरिक्त और चार अभंगों का उल्लेख करते है। कुल मिलाकर कान्होपात्रा की अभंग संख्या लगभग ३० के आसपास है। उसका जीवनचरित्र महीपतीबुवा ताहराबादकर लिखित 'भक्तविजय' ग्रंथ में अध्याय क्र. ३६ में कुल ८० पंक्तियों मे (ओवी) उपलब्ध है। उसका लावण्य ही उसे दुःखदायक सिद्ध हुआ ऐसा उसके अभंग लेखन से व्यक्त होता है। आर्तता, सुबोधता, आत्मनिष्ठा आदि उसकी अभंग–लेखन की विशेषताएँ है। उसकी अभंग रचना 'प्रासादिक भावकाव्य' है और उसके अभंग उसकी भावनाओं का साफ सुथरा आईना है। उसके कारूण्यका कारण कान्होपात्रा के अपार्थिव जीवन की अपेक्षा पार्थिव जीवन में अधिक है' ऐसा मराठी के प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. गं. ब. ग्रामोपाध्ये जी का मत है। उसका काव्य मतलब भक्त के उत्कट अनुभूति का सात्त्विक अविष्कार है।

महाराष्ट्र के संत कवयित्रीओं में कान्होपात्रा विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि उसे लगभग (सिर्फ) १८–२० साल की आयु का लाभ हुआ। उसका जन्म हीन जाति में, वेश्याकुल में स्त्री के रूप में हुआ। उसकी चारों तरफ विषयोपभोग लालसा–वासनाग्रस्त वातावरण था। इसी वातावरण में और इसी वातावरण से वो भक्तिमार्ग स्वीकारकर जीने लगी होगी। कान्होपात्रा को किसी भी संत की साथ नहीं मिली थी। उसने किसी को भी अपना गुरू नहीं किया था, किसी से उपदेश नहीं लिया था। परंतु अन्य स्त्री संत कवयित्रीओं में महदंबा, मुक्ताबाई, जनाबाई, वेणाबाई, बहिणाबाई आदि कवयित्रीओं को किसी ना किसी का अनुग्रह प्राप्त हुआ था। मुक्ताबाई, वेणाबाई, बहिणाबाई उच्चवर्णीय होने के कारण इनको भक्ति ज्ञान, धार्मिक संस्कार मिले (प्राप्त) हुए थे। जनाबाई विठ्ठल भक्त संत नामदेव जी के और सोयराबाई, निर्मला संत चोखामेळा के सान्निध्य–संस्कार में पले–बढ़े थे। कान्होपात्रा के आसपास ऐस कोई भी नहीं था। वह पूर्णतः अकेली थी इसका दर्शन उसके अभंग लेखन में होता है। उनमें स्वाभाविक रूप से आत्मपरता अधिक दिखाई देती है। ज्ञान, तत्त्व चिंतन नहीं दिखता है।

प्रसिद्ध पंडित कवि मोरोपंत अपने संतों को गौरवपूर्ण 'सन्मणि माला' में कान्होपात्रा का समावेश करते है।

उसके बारे में गौरवोद्धगार निकालते है। मानवी जीवन का सबसे बडा यश–श्रेय–परमेश्वर स्वरूपी लीन होना–मोक्ष प्राप्ती–कान्होपात्रा ने प्राप्त किया। ऐसी वेश्या कुल का भी उद्धार करने वाली समर्थ युवती–स्त्री संत कान्होपात्रा निश्चित ही वंदनीय है।

संदर्भग्रंथ सूची :-

१. मराठी विश्वकोश खंड ३ रा संपा. तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी।
२. भारतीय संस्कृतीकोश खंड २ रा संपा. पं. महादेवशास्त्री जोशी।
३. सकल संत चरित्र गाथा खंड १–१९९८ संपा. प्रा. नम्रता भट।
४. प्राचीन मराठी वाङ्मयाचा इतिहास लेखक प्रा. डॉ. ल.रा. नासिराबादकर।
५. स्वी संतदर्शन – संपा./संकलन श्री अरविन्द दोडे।
६. मराठी काव्यातील स्वीचित्रण – लेखिका प्रा. डॉ. वेदश्री थिगळे।
७. संत सखाराम महाराज चरित्र– लेखक भाऊ अमळनेरकर।
८. लेख – 'दक्षिणदरवाजा' –दै. वास्तवता (अमळनेर) दि. ०३/७/२०१२ लेखक श्री. केदार ब्रह्मे।
९. लेख – 'मराठी नाटयगीतांतील श्रीविठ्ठल' हरि ओम दर्शन दिवाळी अंक २००४ (मुंबई) लेखक प्रा. श्री. गौतम केदार ब्रह्मे।

लेखक प्रा. गौतम केदार ब्रह्मे
सहाय्यक प्राध्यापक, मराठी विभाग
डी.बी.जे. महाविद्यालय, चिपळूण ४१५६०५
भ्रमणध्वनी : ९१–९४२२३५८३०८
ई–मेल– gautambrahme@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 32-35

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रेम और रोमांस

प्रियंका गौड़

M.A; B.ED; M.ED

शोधार्थी

1. प्रेम में त्याग और समर्पण।
2. आदर्श और यथार्थ के बीच प्रेम।
3. सामाजिक बंधनों में बँधा प्रेम।

प्रस्तावना :–

प्रेम लिखने अथवा शब्दों में बाँधने का विषय नहीं है, यह वो सत्य है, जो स्वभाव में प्रदर्शित होता है, चरित्र में निखरता है, मन में निर्मल झरने की तरह बहता है तथा आत्मा में कस्तुरी–सा महकता है।

प्रेम शाश्वत सत्य है :–

सत्य यह भी कि इसके बिना जीवन संभव नहीं, यथार्थ की जीवन को सही मायनों में जीने का आधार प्रेम ही है। प्रेम जो मनुष्य, समाज, सम्पूर्ण सृष्टि, जगत्, चर–अचर, पेड़–पौधों, नदी–पहाड़ों से करता है। प्रेम के साथ सम्मान का भाव, जीवन जीने का प्रमुख आधार है। विषयान्तर्गत प्रेम में समय–साथ–विश्वास–सम्मान – सहयोग एवं अन्य सभी भावों के साथ त्याग और समर्पण मुख्य तत्व है। बिना इनके प्रेम की कल्पना या जीवन को सुन्दर तरीके से जीने का भाव व्यर्थ है। प्रेम ही एकमात्र मार्ग है, जो जीवन को जीने योग्य बनाता है एवं जीवन की सार्थकता सिद्ध करता है।

लेख में आगे चर्चा करते हुए हम समझ सकते हैं कि आज के इस समय में प्रेम के बीच से त्याग और समर्पण का भाव खत्म हो रहा है।

वर्तमान संदर्भ में प्रेम :–

युवक–युवती प्रेम को महज समय गुजारने का साधन मात्र मानते है। बढ़ती उम्र में होने वाले आकर्षण को प्रेम समझ लिया जाता है, तो कहीं आकृष्ट हो जाने को प्रेम मान बैठते हैं। वास्तविक प्रेम संबंध की परिभाषा भी जिन्हें ज्ञात नहीं, वे स्वयं को प्रेमी व प्रेम में होना पाते हैं। जहाँ उन्हें ये भी ज्ञात नहीं होता कि प्रेम किस तरह स्वयं को, जीवन को तथा प्रेमी को निखारता है, किस तरह जीवन को नई ऊँचाइयों की तरफ ले जाता है। वही प्रेम की छवि को धूमिल करती ये नई पीढ़ी अधिकार जताने, समय काटने और महज अपनी जरूरतों को पूरा करने को ही प्रेम मानती है।

प्रेम :-

जहाँ यह भाव, मानव जीवन को प्रेमी व प्रेमिका को नई दिशा देता, जीवन जीने की कला सिखाता है। जीवन को भौतिक–मानसिक–आध्यात्मिक स्तर पर ऊँचा उठाता है। प्रेमियों के बीच जीवन की उलझनों व समस्याओं को मिटाकर जीवन को सहज, सरल और और भी ज्यादा सार्थक बनता है।

प्रेम-भाव :-

प्रेम कहने–दिखाने या प्रदर्शन करने की वस्तु या चीज मात्र नहीं है, यह तो व्यवहार में नजर आने वाला गुण है। जब आप किसी से प्रेम में होते हो तो वह भाव आपके मन, कार्यों व व्यवहार में नजर आने लगता है। मेरे लिए प्रेम की परिभाषा यह है कि आप जिसके साथ प्रेम में हैं, वो आप में झलकने लगे, आपकी छवि में आपका प्रेमी नजर आने लगे, आपके भीतर से आपके प्रेमी की गंध आने लगे, चूँकि प्रेम इंसान को बेहतर बनाता है, जब दो लोग एक–दूसरे के साथ प्रेम में होते है तो वहाँ दोनों का विकास होता है, दोनों एक–दूसरे को ऊँचा उठाने में सहयोग करते हैं। अगर ऐसा नहीं होता, दोनों अपने मन–जीवन को ऊँचा नहीं उठा पा रहे तो यह तय है कि यह प्रेम नहीं कुछ और हो सकता है, मगर प्रेम नहीं.....

प्रेम में त्याग और समर्पण - वर्तमान संदर्भ :-

चूँकि प्रेम आत्मा – स्वभाव और इंसान के मध्य होने वाले मौन संवाद की भाँति है। जहाँ शब्दों को बोलना शब्दों में भावों को पिरोना पूरी तरह से व्यर्थ ही है। प्रेम मन को, जीवन को, आत्मा को, समाज व संसार को श्रेष्ठ बनाता है। एक–दूसरे के जीवन को सँवारता है। कहा भी जाता है कि अगर प्रेम आपको आपके बेहतर व्यक्तित्व की तरफ नहीं लेकर जा रहा है। इसका मतलब वह प्रेम नहीं है। चूँकि इन सब बातों के बीच प्रेम में त्याग का भाव, समर्पण का भाव प्रेम की पुष्टि के मूल कारक है। प्रेम में प्रेमी के लिए त्याग करना स्वयं को पूरी तरह से समर्पित करना अनिवार्य है। बशर्ते कि सामने वाला भी आपके समर्पण और त्याग को समझता हो, उसकी कदर करता हो।

यहाँ त्याग को परिभाषित करने के लिए स्पष्ट किया जा सकता है कि त्याग अर्थात् जो आपके लिए जरूरी है, पर फिर भी अपने साथी के लिए, अपने प्रेमी के लिए उसे त्याग दे। उसे उस काम–भावना, आदत या विचार उसे छोड़ दे। साथ ही ये भी कि प्रेमी को इस त्याग का मूल्य ज्ञात हो, जो उसके लिए छोड़ा जा रहा है, उसकी कदर की जाएँ।

प्रेम में समर्पण को इस तरह से समझा जा सकता है कि प्रेम एक–दूसरे के प्रति प्रेम से सम्मान के भाव से समर्पित है। हर इच्छा, जरूरत, माँग पर एक–दूसरे के लिए खड़े रहे, जीवन की प्रत्येक स्थिति में एकनिष्ठ भाव से साथ रहे।

सामाजिक पतन :-

दुर्भाग्य है इस समय काल की आज के सन्दर्भ में मानव समाज प्रेम से वंचित है। इस बीच प्रेम की पराकाष्ठा नियत करने वाले नवयुवक–युवती प्रेम को समझ ही नहीं पाते। वर्तमान समय दर्शन में आकर्षण को ही प्रेम समझा जाने लगा है। जो एक सीमा पर आकर मात्र शारीरिक जरूरतों पर खत्म होने लगा है। युवक–युवती के बीच एक बार शारीरिक माँग जरूरत के पूरा होने के पश्चात् दोनों का असली रूप सामने आ

जाता है। चूँकि वे स्वयं नहीं समझ पाते कि ये महज आकर्षण था या मात्र समय की जरूरत। समय आने पर ये लोग एक–दूसरे से बचने और दोषारोपण करने लगते हैं।

समाज जिस तरह कलुषित होता जा रहा है, वहाँ इन समाज का निर्माण करने वाले युवक–युवतियों को सही दिशा, सही ज्ञान देने वाला भी कोई नहीं। समाज का एक बड़ा भाग स्वार्थ, कामुकता, ऐश्वर्य, दिखावे इत्यादि में इतना डूबा हुआ है कि उन्हें स्वयं के जीवन की दिशा भी ज्ञात नहीं।

जहाँ प्रेम और प्रेम में त्याग–समर्पण की बातें की जाती है, वो बातें ही बनकर रह जाती है। जमीनी स्तर पर यह यथार्थ सिद्ध नहीं हो पाती, चूँकि प्रेम की प्राप्ति अथवा प्रदान करने के लिए समय– धैर्य–प्रतीक्षा व समझ का होना अति आवश्यक है, जहाँ प्रेमियों के बीच एक–दूसरे पर विश्वास नही, एक–दूसरे के लिए समय, समझ नही, वे कहाँ प्रेम को गहन भाव – उच्च स्तर पर ले जाएँगे? अधीरता में कथित तौर पर प्रेमी अपनी जरूरतों शारीरिक अथवा मानसिक अथवा अपने स्वार्थ के पूर्ण होने पर की एक–दूसरे को झटक देंगे।

यद्यपि प्रेम एक भाव प्रधान विषय है। शब्दों में बाँधना या परिभाषित करना असंभव है। व्यक्तिगत स्तर पर कोशिश भी की जाएँ तो यह मात्र व्यक्तिगत अनुभव ही होगा। समाज के दायरे में आकर इसका क्षेत्र और इसकी व्यापकता व परिभाषा बदलती रहती है.....

प्रेम जितना सामाजिक स्तर का विषय है, उससे कही अधिक व्यक्तिगत व निजी स्तर का है। जहाँ भिन्नता देखी जाती है, अनेक प्रकार की भिन्नता प्रेम के अनेक रूपों को प्रदर्शित करती है, जो स्वयं शाश्वत भी है, अर्थात् प्रेम में जितने रूप है वह सभी सत्य है।

इन भिन्नताओं के सत्य के साथ प्रेम को समझना त्याग और समर्पण को समझना आज के युवा के लिए मुश्किल होता जा रहा है। जहाँ वे समाज में दिख रहे दिखावे का और अधिकार मात्र को प्रेम समझते हैं। वहीं समाज का आईना दिखाने वाले सिनेमा से प्रेम की परिभाषा, नियम कायदे–कानून सीखते हैं, जो मस्तिष्क पर गलत प्रभाव डालते हैं। सिनेमा भी प्रेम के छिछले रूप को दिखाने को बाध्य है, क्योंकि युवा इसी छिछले भाव को देखना पसंद करता है। मस्तिष्क को नैतिकता, मर्यादा, जिम्मेदारी के भावों का प्रशिक्षण देने के बजाए सिनेमा वासनात्मक भूख को बढ़ावा देने के अलावा और क्या ही प्रयोजन है। जो युवा को देखना है वो ही सिनेमा समाज दिखाता है और जब यही नैतिकता भंग हो गई तो युवा कहाँ स्वयं और समाज को सही दिशा दे पाएगा।

निष्कर्ष :-

इन सब कारणों में त्याग की भावना प्रेम में समर्पित होने की भावना नजर ही नही आती और कोशिश भी करे तो प्रेम में इस स्तर पर पहुँचना कठिन सोपान है जिससे आज का हर युवा भटका हुआ है।

अस्थिरता, चंचलता, वासनात्मक भूख, अविश्वास इन सब दुर्गुणों के चलते प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँचना मुश्किल है।

युवक–युवतियों में प्रेम की सही पहचान का होना अनिवार्य है। इन सबके लिए हमें हमारे युवा को सही मार्गदर्शक को चुनने की आवश्यकता है। साथ ही नैतिकता–चरित्र–संस्कारों पर प्रबल दृष्टि रखकर आगे बढ़ने का सुझाव है।

संस्कारों से मानव समाज में नैतिकता और नैतिकता के माध्यम से ही उत्तम चरित्र का निर्माण संभव है। उत्तम चरित्र को धारण करने वाला युवा (युवक–युवती) ही प्रेम की वास्तविक परिभाषा को समझ प्रेम को, स्वयं को, समाज को ऊँचाई तक ले जा सकता है।

अतः वर्तमान सन्दर्भ में युवक–युवती विमर्श की प्रभावी आवश्यकता है, जहाँ उन मार्गविहीन युवा को सही दिशा देने का प्रयास किया जा सके। मन–मस्तिष्क, स्वभाव के हर सवाल, हर उलझन का समाधान किया जा सके। सही–गलत, नैतिक–अनैतिक का मुआयना कर युवा को सही दिशा देने का आधार तय किया जा सके।

लेख में व्यक्त विचार लेखिका के मौलिक एवं अभिव्यक्ति परक भाव है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 36-41

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अरेंज मैरिज बनाम प्रेम विवाह

सविता

पी. एच. डी. शोधार्थी, अँग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

प्रस्तावना :–

प्राचीन काल से ही विवाह एक सामाजिक मूल्य रहा है। विवाह एक प्रकार का बंधन है जिसे मनुष्य को जीवनपर्यंत निभाना है। प्रायः विवाह दो आधार पर तय होता है एक है अरेंज मैरिज और दूसरा है प्रेम विवाह। अरेंज मैरिज एक प्रकार की व्यवस्था है जिसमें दोनों पक्ष की स्वीकृति अनिवार्य होती है। इसमें एक पक्ष वर–वधू का विवाह के लिए स्वीकृति देना शामिल होता है या यह दो परिवार मिलकर निर्णय ले लेते हैं कि अमुक लड़के का अमुक लड़की से विवाह होना तह किया गया है इसमें वर–वधू के स्वीकृति की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। इस प्रकार यह पूर्णतः सामाजिक व्यवस्था बनकर रह जाती है जिसमें वर–वधू को अपनी स्वीकृति देनी ही पड़ती है। आज के दौर में विवाह एक समस्या के रूप में भी उभरा है। यह समस्या अरेंज मैरिज तथा प्रेम विवाह दोनों में देखी जा सकता है। अरेंज मैरिज में दो परिवार मिलकर अपना सामाजिक स्वरूप, प्रतिष्ठा, धन–धान्य, जाति, गोत्र, कुंडली (जन्मपत्री) आदि सब देखकर ही रिश्ता तह होता है वहीं दूसरी तरफ प्रेम विवाह इस व्यवस्था के सभी कानून तथा नियमों को तोड़कर आगे बढ़ जाता है। प्रेम विवाह में जाति, धर्म, प्रतिष्ठा, गोत्र आदि सब ताक पर रखकर मन के मेल पर बल देता है, जहां दो मन मिल जाते हैं। दो मन का पूर्णतः मेल ही प्रेम की पहली सीढ़ी है। प्रायः यह सुना जाता है कि– 'लड़का–लड़की राजी तो क्या करेगा काजी'। प्रेम विवाह दो दिलों को तो जोड़ता है परंतु दो परिवार अधिकांशतः टूटते–बिखरते हुए नजर आते हैं, इसलिए बिहारी ने भी कहा है कि :–

"दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति
परत गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति।"

इस पंक्ति में साफ कहा गया है कि जब दो व्यक्तियों में प्रेम होता है तब दो घर टूट जाते हैं, दो व्यक्तियों के हृदय जुड़ने से दो घरों के हृदय में गांठ पड़ जाती है। इस प्रकार प्रेम विवाह एक लोकतान्त्रिक मूल्य जरूर है परंतु समाज के कई बंधन उस विवाह को रोकने का पूर्ण प्रयत्न करते रहते हैं।

पुराणों में अरेंज मैरिज बनाम प्रेम–विवाह :–

पुराण कथाओं में अनेक विवाह संबंधी कथाओं का वर्णन है, जो यह सिद्ध करेगा कि इन कथाओं में भी प्रेम–विवाह तथा अरेंज मैरिज होती थी। यह कथाएँ यह भी सिद्ध करती हैं कि प्रेम तथा विवाह का सुंदर रूप क्या है। मनुष्यों को इन कथाओं से सीख लेकर इसे अपने जीवन में उतारना चाहिए। आज के दौर में मैरिज

बनाम प्रेम–विवाह में कई सारी समस्याएँ देखने को मिलती हैं। यह समस्याएँ अक्सर प्रेम–विवाह में देखने को मिलती हैं जैसे जाति, धर्म के नाम पर मोंब लिंचिंग (भीड़ हत्या), ऑनर किलिंग (सम्मान के लिए हत्या) आदि। "जाति व्यवस्था वाले ऐसे पारंपरिक समाज में, शादी के लिए चुनाव काफी अहम हो जाता है। ऐसे में अपनी जाति यह धर्म से हटकर शादी के बारे में सोच पाना इतना आसान नहीं।"[1] हमारा समाज इतिहास तथा पुराणों से सीखता है, इसकी कथाएँ करवाता है, राधा–कृष्ण, शिव–पार्वती, राम–सीता आदि के उदाहरण हमारे पास हैं फिर भी आज के दौर में जाति–धर्म इन सबसे ऊपर उठाकर मनुष्यों पर, परिवार पर, सम्पूर्ण समाज पर अपनी पैठ बना रहा है। यहाँ कुछ उदाहरणों से अरेंज मैरिज तथा प्रेम–विवाह की बात स्पष्ट हो जाएगी।

शिव-पार्वती विवाह :-

शिव–पार्वती के विवाह को दुनिया का सबसे पहला प्रेम–विवाह माना जाता है। यह इस बात का उदाहरण है कि शिव–पार्वती को आज भी अर्धनारीश्वर कहा जाता है। पत्नी के लिए 'अर्धांग्नि' शब्द भी यहीं से आया है क्योंकि शिव, पार्वती को अपना आधा अंग मानते थे। शिव–पार्वती के विवाह के दिन ही महाशिवरात्रि का व्रत रखा जाता है तथा यह त्योहार धूमधाम से मनाया जाता है। शिव–पार्वती के विवाह से प्रेम की पराकाष्ठा को जाना और समझा जा सकता है।

राम-सीता विवाह :-

प्रायः यह माना जाता है कि राम–सीता का विवाह अरेंज मैरिज था न कि प्रेम–विवाह। राम–सीता का विवाह भी प्रेम विवाह था इसके कुछ उदाहरण वाल्मीकि रामायण में दिये गए हैं। राम–सीता के विवाह के लिए स्व्यंवर रचाया गया था परंतु स्व्यंवर से पहले ही राम–सीता जनकपुर की पुष्प–वाटिका में मिल चुके थे और सीता ने राम को अपना पति स्वीकार कर लिया था। उनका विवाह यह संदेश देता है कि एक आदर्श जीवन साथी को कैसा होना चाहिए। राम सदैव एक पत्नी व्रत रहे। शूर्पनखा के सौन्दर्य से भी वह विचलित नहीं हुए। यह प्रेम–विवाह का उच्चतम रूप है।

राधा-कृष्ण :-

राधा–कृष्ण का विवाह नहीं हुआ परंतु सात्विक प्रेम का रूप राधा–कृष्ण के प्रेम में देखा जा सकता है। राधा–कृष्ण का प्रेम एक मानक है जो प्रेम की पराकाष्ठा को प्रदर्शित करता है। राधा–कृष्ण का प्रेम इसलिए अमर हुआ क्योंकि यह पूर्ण नहीं हो पाया। पूर्णता अंत का संदेश देता है अपूर्णता जीवन जीने का जज्बा देती है।

इस प्रकार पुराण कथाओं में प्रेम पर अधिक झुकाव देखने को मिलता है। प्रेम मनुष्य को जीवन जीने की कला सिखाता है। प्रेम स्वतंत्रता प्रदान करता है तो विवाह बंधन में बांधता है। जीवन में प्रत्येक व्यक्ति किसी–न–किसी व्यक्ति तथा वस्तु से प्रेम करता आया है। व्यक्ति के प्रेम को मनुष्य विवाह में बदलना चाहता है। वह एक स्थायित्व चाहता है। प्रेम तब तक प्रेम रहता है जब तक वह विवाह की सीमा में न बंधा हो। जैसे ही प्रेम विवाह की सीमा में बंधता है ठीक उसी समय प्रेम का अंत हो जाता है। प्रेम यथार्थ है विवाह एक आदर्श रूप है। प्रेम पूर्णतः वैयक्तिक है और विवाह पूर्णतः सामाजिक। स्त्री–पुरुष के प्रेम में यह अंतर है कि– "पुरुष का प्रेम आधिपत्य जामाता है, स्त्री का प्रेम अपने को पुरुष के हाथ में सौंप देना है।"[2] पुराणों में कई उदाहरण प्रेम सम्बन्धों के देखने को मिलते हैं जैसे शाल्व और अम्बा, उर्वशी–पुरुरवा, भीम और हिडिंबा, अनिरुद्ध और उषा, भरत और शकुंतला आदि ये सभी प्रेम सम्बन्धों के उदाहरण हैं इससे यह प्रेम चलता है कि प्रेम पुराणों में भी

प्रेम–संबंध तथा प्रेम–विवाह पर अधिक बल दिया गया है। प्रेम एक प्राकृतिक देन है यह सभी व्यक्तियों तथा पशु–पक्षियों में पाया जाता है। इसके कई उदाहरण हमें इतिहास में भी देखने को मिलते हैं।

इतिहास में प्रेम और विवाह का स्वरूप :-

मानव का इतिहास बहुत प्राचीन है, वह शुरू से ही एक–दूसरे से सिर्फ प्रेम की वजह से जुड़ा पाता है। यह अपनापन उसे साथ रहने पर महसूस हुआ इससे यह साफ जाहिर हो जाता है कि यदि किसी भी व्यक्ति से लंबे समय से रहने पर उससे प्रेम होना बिलकुल स्वाभाविक प्रक्रिया है। इतिहास के पन्नों में ऐसे कई उदाहरण हैं जो आज भी अमर हैं जैसे लैला–मजनू, हीर–राँझा, सोनी–माहिवाल, रोमियो–जूलियट, अमृता–इमरोज, पृथ्वीराज–सयुंकता, पेरिस–हेलेन, क्लियोपेट्रा–मार्क एंटनी आड़–आदि ऐसे अनेकों उदाहरण है जो यह दर्शाते हैं कि प्रेम और विवाह इतिहास में भी समाप्त नहीं हुए अधिकांशतः प्रेम–संबंध और प्रेम विवाह ही देखने को मिलते हैं जहां भी अरेंज मैरिज देखने को मिलती है वहाँ यह तो स्व्यंवर कि प्रथा को महत्व दिया जाता है उदाहरण के लिए अर्जुन–द्रौपदी, पृथ्वीराज–सयुंकता आदि।

इतिहास में हमें ऐसे कई उदाहरण देखने को मिलते हैं जहां यह देखा जाता है कि एक से अधिक प्रेम–संबंध तथा विवाह भी हुए हैं तथा किए गए हैं। आज के दौर में यह एक समस्या का भी रूप ले चुका है। इतिहास में इस तरह की समस्याएँ शायद ही देखने को मिलतीं हों परंतु आज अफेयर होना लगभग आम सी बात हो गई है, इसका सबसे बड़ा कारण मन का मोह है। पुरुष और स्त्री के मोहित होने के कई कारण है जैसे– पैसा, सौन्दर्य, व्यवहार, ज्ञान, रसूख आदि–आदि। यहाँ हिन्दी साहित्य के इतिहास में अरेंज मैरिज बनाम प्रेम–विवाह पर बात करना भी लाजमी होगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रेम और विवाह :-

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कई और से उदाहरण हैं जो प्रेम और विवाह से संबन्धित है। सर्वप्रथम यदि आदिकाल से पहले की बात की जाए तो यह कहा जा सकता है कि सिद्ध–नाथ तथा जैन में से सिद्धों के यहाँ भोग पर अधिक बल था। यहाँ भोग को ही मोक्ष मान लिया गया था।

आदिकाल में इसके ठीक विपरीत सौन्दर्य प्रधान तथा हासिल कर लेने की प्रबल इच्छा देखने को मिलती है। इस काल में वीरता तथा श्रृंगार में से श्रृंगार का भाव अधिक प्रबल था। यहाँ रूप–लिप्सा मौजूद थी इसलिए कहाँ भी गया है कि– 'जाकर कन्या सुंदर देखि तापर धरी जाय तलवार' इस प्रकार आदिकाल में सुंदर कन्या को देखकर ही उठा लिया जाता तथा कन्या को लेकर ही युद्ध हुआ करता था। श्रृंगार वीरता को अग्नि देता था, इस प्रकार यहाँ प्रेम का तत्व गौण था बल्कि अधिकार का भाव प्रबल था।

दूसरी तरफ भक्तिकाल में प्रेम का स्वरूप बदल गया। इस काल में चार शाखाएँ हैं चारों शाखाओं में प्रेम पर चर्चा करें तो यह साफ जाहिर होता है कि ज्ञानाश्रयी शाखा में दाम्पत्य–प्रेम को अधिक श्रेय दिया गया है। जैसे कबीरदास कहते हैं कि– 'पतिव्रता मैली भली काली–कुचित कुरूप", / पतिव्रता के रूप पर बारहों कोटि सरूप।।'

यहाँ कबीरदास पतिव्रता स्त्री को ही प्रेम का स्वरूप मानते हैं कि पतिव्रता स्त्री ही प्रेम में महान होती है चाहे वह काली–कुचित ही क्यों न हो। कबीरदास प्रेम के बारे में भी यह कहते हैं कि प्रेम किसी बाग–बगीचे में नहीं फलता–फूलता बल्कि और न ही यह किसी बाजार में बिकता है यह तो एक अनमोल रत्न है जो राजा से

लेकर प्रजा को जिसे भी भा जाता है प्रेम तो उसी का हो जाता है। प्रेम पर सबका सामान अधिकार है। ईश्वर ने प्रेम का भाव सब में समान रूप से दिया है चाहे वह राजा हो या प्रजा। 'प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय, / राजा–परजा जेहि रुचौ, सीस देइ लै जाय।'

कबीरदास प्रेम के बारे में कहते हैं कि वास्तव में कोई भी प्रेम की गहराई को नहीं जानता है और हर कोई प्रेम–प्रेम का जाप करता रहता है। प्रेम व्यक्ति के रोम–रोम में बसता है। कबीरदास कहते हैं कि– 'प्रेम–प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न चीन्हे कोय। आठ पहर भीना रहे, प्रेम कहावे सोय।'

इस प्रकार प्रेम का सुंदर रूप कबीर ने प्रस्तुत किया है। प्रेम स्वतंत्र है, प्रेम घट–घट में है। प्रेम छिपाने से भी नहीं छिपता है। यह एक ऐसा भाव है जो मनुष्य को जोड़ने का काम करता है। कबीर मूल रूप से प्रेम का वर्णन करते हुए कहते हैं की :–

"अकथ कहानी प्रेम की, कछु कही न जाइ।
गूंगे केरी सरकरा, बैठा मुसकाई।।"[3]

कबीर के यहाँ प्रेम मन का अनमोल भाव है जो व्यक्ति को लोकतान्त्रिक बनाता है तथा मानवीयता का मूल्य सिखाता है।

प्रेमाश्रयी शाखा में प्रेम का अति शूक्ष्म रूप है। यहाँ निर्मल प्रेम को महत्व दिया गया है। सभी रचनाएँ प्रेम की पराकाष्ठा को प्रदर्शित करता है। इन रचनाओं में नायक, नायिका को पा लेना चाहता है। उदाहरणस्वरूप जायसी प्रेम को एक चिंगारी के रूप में देखते हैं और कहते हैं, प्रेम की यदि एक चिंगारी हृदय में पड़ गई और उसे सुलगते बन पड़ा तो फिर ऐसी अद्‌भुत अग्नि प्रज्वलित हो सकती है जिससे सारे लोक विचलित हो जाएँ।

"मुहमद चिनगी प्रेम कै सुनि महि गगन डेराइ।
धनि बिरही औ धनि हिया, जहँ अस अगिनी समाइ।।"[4]

इस प्रकार यहाँ प्रेम का ऐसा रूप है कि एक प्रेमी की कई सारी प्रेमिकाएँ हैं परंतु मंझन ही एकमात्र ऐसा काव्य है जिसमें नायक एक पत्नी के लिए प्रतिबद्ध है।

कृष्ण भक्ति शाखा में कृष्ण का रूप प्रदर्शित किया गया है। वह अधिकांशतः प्रेमी के रूप में दिखाये गए हैं। गोपियों के साथ उनका प्रेम तो जगजाहिर है ही बल्कि राधा के साथ उनका एक अटूट प्रेम है। गोपियों का प्रेम परकीया प्रेम है, इस काव्य में भी परकीया प्रेम मान्य था। राधा–कृष्ण का प्रेम सात्विक रूप में दिखाया गया है। कृष्ण भक्ति शाखा में राधा के प्रेम का उत्तम रूप देखने को मिलता है इसलिए यह दुर्लभ पंक्ति 'अति मलीन वृषभानुकुमारी' इसी काव्य में देखने को मिलती है।

राम भक्ति शाखा में प्रेम का सत्य, शील, और सुंदर रूप देखने को मिल जाता है। इसमें राम–सीता का प्रेम है जो एक आदर्श प्रेम को दर्शाता है। यह प्रेम आज भी एक मानक बना हुआ है। राम–सीता का एक पत्नी व्रत प्रण आज के लिए भी एक उदाहरण है जो यह दर्शाता है कि प्रेम का उच्च रूप क्या होना चाहिए।

रीतिकाल में प्रेम सम्पूर्ण काल का मूल विषय रहा है इसमें रीतिमुक्त काव्य के कवि के यहाँ प्रेम का उद्दात रूप देखने को मिलता है। यहाँ प्रेम भी है और विवाह भी। घनानन्द का प्रेम स्वछंद प्रेम है और बोधा कहते हैं कि 'प्रेम को पंथ कराल महा तलवार की धार पर धावनो है'। घनानन्द मानते हैं कि प्रेम का मार्ग अत्यंत सरल और सीधा है, इसलिए वह कहते हैं कि– 'अति सुधो स्नेह को मारग है' उनके प्रेम में पीड़ा है वह 'प्रेम की पीर'

के कवि हैं। "घनानन्द ने प्रेम की पीड़ा को भोगा है और उसे काव्य में बांध दिया। प्रेम निरंतर पीड़ित रहने की प्रक्रिया है।"[5] आलम और शेख रंगरेजिन का प्रेम और विवाह यह संदेश देता है कि प्रेम में रूप महत्वपूर्ण न होकर बुद्धि महत्वपूर्ण होती है।

आधुनिक कल में प्रेम की परिभाषा ही बदल गई। पहले चिट्ठी–पत्री का दौर था अब आधुनिक साधन आ गए हैं यहाँ अरेंज मैरिज तथा प्रेम विवाह के कई संसाधन उपलब्ध होते हुए भी आज विवाह संस्था में कई समस्याएँ आ खड़ी हुई हैं। यह समस्या इस बात का उदाहरण है कि प्रेम–विवाह से लेकर व्यवस्थागत विवाह तक सभी इस समस्या को झेल रहे हैं।

अरेंज मैरिज बनाम प्रेम-विवाह स्वरूप और मूल अवधारणा :-

अरेंज मैरिज व्यवस्थागत विवाह के अंतर्गत आता है इस विवाह में वर–वधू की आपसी सहमति होने के बाद विवाह करा दिया जाता है। आज से लगभग बीस–पच्चीस साल पहले परिवार ही रिश्ता तय करता था और वर–वधू को बिना कुछ सवाल किए विवाह करना होता था परंतु आज स्थितियाँ बदली हैं। जैनेन्द्र कुमार कहते हैं कि 'प्रेम तब तक ही प्रेम रहता है जब तक विवाह का बंधन न हो जैसे ही विवाह का बंधन आ जाता है वैसे ही प्रेम का अंत होना शुरू हो जाता है'। प्रेम विवाह में आपसी सहमति होने के बाद उसे दोनों परिवारों की रजामंदी द्वारा व्यवस्थागत विवाह में भी तब्दील किया जाता है यदि ऐसा नहीं हो पाता तो इसके बुरे परिणाम भी सामने आते हैं। जैसे भागकर शादी करना, शादी के बाद सम्मान के लिए हत्या, शादी करके अपनी प्रेमिका को बेच देना, शादी के नाम पर स्त्री की खरीद–फरोख्त आदि। यह भी आज एक भरा–पूरा व्यवसाय का रूप धारण कर चुका है। व्यवस्थागत विवाह में पकड़कर विवाह कराना, जोर–जबर्दस्ती करके विवाह कराना, परिवार की मान–मर्यादा के तहत अपने ही जाति तथा धर्म की स्त्री तथा पुरुष से विवाह कराना जैसी समस्या दिखाई देती है।

व्यवस्थागत विवाह तथा प्रेम विवाह के गहन रूप समाज में मौजूद हैं, कुछ अपवाद भी है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो समाज को एक आईना दिखाने का काम करता है। नसीब अपना–अपना में परिवार के दबाव के कारण नायक विवाह तो कर लेता है परंतु वह किसी और नायिका को चाहने लगता है। नायक को अपने रूप पर अभिमान है कई लड़कियां उसपर जान छिड़कती हैं परंतु वह किसी को भाव तक नहीं देता। शादी के बाद वह अपनी पत्नी को धोखा देते हुए किसी अन्य महिला से प्रेम–प्रसंग चलाता रहता है। अंततः वह अपनी पत्नी के प्रेम को समझता है और कहानी की नायिका दोनों को मिलाने के लिए अपने जीवन को ही समाप्त कर लेती है। वैसे तो यह आदर्श अंत प्रदान करती है परंतु सच्चाई ठीक इसके विपरीत भी दिखाई देती है। प्रेम और विवाह दोनों समर्पण मांगता है, यदि कोई भी पक्ष अपना समर्पण नहीं दिखाता तो यह संबंध ज्यादा दिनों तक नहीं टिकता। "प्रेम चाहे भावुकता हो या मनोवेग, यह भाव–जीवन का एक स्थायी और जटिल संगठन है, पर भावुकता के रूप में यह अधिक बौद्धिक, परिमार्जित तथा शूक्ष्म है और मनोवेग के रूप में यह बहुत तगड़ी किस्म की भावुक जटिलता है।"[6] विवाह के बाद भी आत्मसम्मान का बना रहना बहुत आवश्यक है, यदि किसी स्त्री के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती है तो वह उस बंधन को तोड़ना ही उचित समझती है, इसका उदाहरण 'थप्पड़' फिल्म के माध्यम से देखा जा सकता है।

प्रेम की कोई उम्र नहीं होती यह किसी भी उम्र में हो जाता है। 'प्यार किया नहीं जाता हो जाता है' इस

गाने को यदि आधार बनाया जाये तो यह बिल्कुल सटीक बैठता है कि यह किसी भी उम्र में हो जाता है। प्रेम को न तो समाज घेर सकता है न ही धर्म और जाति। इसका उदाहरण ''"रेत समाधि' जैसे उपन्यास में देखा जा सकता है तथा 'लिपस्टिक अंडर माय बुर्का' जैसी फिल्मों में चित्रित है। आज का समाज धन–लोलुपता के मद में झूमता हुआ समाज है यहाँ प्रेम और विवाह जैसे पवित्र रिश्ते में भी लाभ–हानि देखना इस रिश्ते की मर्यादा को विक्षिप्त करता है। धन के लिए प्रेमी या पति को मरवा देना, शादी के बाद प्रेमी के साथ भाग जाना, विवाह से पहले धोखा देने पर स्त्री द्वारा बलात्कार तक का दोष लगा देना, विवाह के बाद तलाक, घरेलू–हिंसा जैसे मामले का सामने आना एक चिंताजनक संकेत हैं। हमें अपने इतिहास और पुराणों से विवाह के स्वच्छ रूप को अमल में लाकर ही समाज को बेहतर दिशा की ओर ले जा सकते हैं।

निष्कर्ष :-

अरेंज मैरिज बनाम प्रेम–विवाह दोनों ही विवाह का एक सुंदर रूप है। दोनों में ही आपसी सहमति होना महत्वपूर्ण है। प्रेम त्याग तथा समर्पण मांगता है। आकर्षण प्रेम नहीं है न ही मोह प्रेम है। प्रेम सामंजस्य से उत्पन्न होता है और साहचर्य से जन्म लेता है। विश्वास और समर्पण प्रेम का ईंधन है। स्त्री–पुरुष का संबंध प्रेम और विवाह के बंधन पर ही तय होता है। बिना बंधन के न तो प्रेम सफल हो पाता है न ही व्यवस्थागत विवाह। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्थागत विवाह को महत्वपूर्ण मानता है परंतु प्रेम–विवाह ने इसे चुनौती दी है और कई बेड़ियों को तोड़ने का काम भी किया है। प्रेम और विवाह में स्त्री–पुरुष का संबंध एक ऐसे पायदान पर आ गया है जहां दोनों वर्गों को शोषक की भूमिका में देखा जा रहा है ऐसे अनेक उदाहरण है– हाल ही में ज्योति मोर्या का केस सामने आया। इस प्रकार धन ने स्त्री–पुरुष को ही विवाह तथा प्रेम में शोषक की भूमिका में ला खड़ा किया है। मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार– "यों तो वर्तमान युग में स्त्रियाँ सर्वत्र शोषित हैं, पर जिन स्त्रियों के हाथों में बहुत धन आ गया है, वे भी पुरुषों का निर्मम यौन शोषण करती हैं। इससे प्रमाणित होता है कि न पुरुष शोषक है न नारी, असली शोषक तो धन है। इस कारण कुछ हाथों में धन का जमा हो जाना समाज के लिए खतरनाक है।"[7] इस प्रकार धन ने रिश्तों की परिभाषा को ही बदल कर रख दिया है। इस तर्ज पर दोनों विवाह पद्धति अपनी–अपनी जगह सटीक है बस आवश्यकता है इस पद्धति में विश्वास, त्याग और समर्पण की भावना को अपने मूल रूप में बनाए रखने की। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इससे ही एक कालजयी रिश्ते की शुरुवात हो सकती है और तभी कोई रिश्ता कालजीवी बन सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. जैन, अरविंद. (2021). बेड़ियाँ तोड़ती स्त्री. राजकमल प्रकाशन. नयी दिल्ली. पृ. 81.
2. वर्मा, भगवतीचरण. (1934). चित्रलेखा. राजकमल प्रकाशन. नयी दिल्ली. पृ. 152.
3. दास, श्यामसुंदर. (2020). कबीर ग्रंथावली. विश्वभारती पब्लिकेशन. पृ. 55.
4. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. (2009). जायसी ग्रंथावली. प्रकाशन संस्थान. पृ. 53.
5. सिंह बच्चन. (2008). बिहारी का नया मूल्यांकन. लोकभारती प्रकाशन. इलाहाबाद. पृ. 10.
6. एलिस, हैवलॉक. (2023). यौन मनोविज्ञान. राजपाल एंड सन्स. पृ. 262.
7. गुप्त, मन्मथनाथ. (2005). वाणी प्रकाशन. नयी दिल्ली. पृ. 11. विषय प्रवेश से.

मोबाइल नंबर– 9990633113, ईमेल आई. डी. savita1999du@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 42-45

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

लैंगिक असमानता और समानता : युवक–युवती के लिए समाज के अलग–अलग मानदंड और हिंदी साहित्य में इसका परिप्रेक्ष्य

दीप्ती जे पनिकर

शोधार्थी, एन एस एस हिन्दू कॉलेज, चांगणाचेरी, कोट्टयम, केरल।

भूमिका :–

लैंगिक असमानता एक वैश्विक सामाजिक समस्या है, जो सदियों से समाज में व्याप्त रही है। यह असमानता केवल महिलाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह पुरुषों को भी पारंपरिक सामाजिक ढाँचों में बाँधकर उनके व्यक्तित्व और स्वतंत्रता को प्रभावित करती है। भारतीय समाज में युवक और युवती के लिए अलग–अलग मानदंड तय किए गए हैं, जो उनकी शिक्षा, कैरियर, विवाह, नैतिकता और स्वतंत्रता को विभिन्न तरीकों से प्रभावित करते हैं। हिंदी साहित्य में इस असमानता को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया गया है, जहाँ लेखकों ने सामाजिक विषमताओं को उजागर कर परिवर्तन की दिशा में प्रयास किए हैं। इस लेख में, हम समाज में युवक–युवती के लिए बने भिन्न मानदंडों की चर्चा करेंगे और हिंदी साहित्य में इनके चित्रण का विस्तार से विश्लेषण करेंगे।

लैंगिक असमानता का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :–

भारतीय समाज में लैंगिक असमानता की जड़ें प्राचीन काल से ही मौजूद रही हैं। वैदिक काल में महिलाओं को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था, लेकिन उत्तर–वैदिक काल में सामाजिक व्यवस्था में बदलाव आया और महिलाओं की स्थिति कमजोर हो गई। मध्यकालीन भारत में महिलाओं की शिक्षा और स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा दिया गया। बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा और दहेज जैसी कुप्रथाएँ प्रचलित हो गईं, जिससे स्त्रियों की सामाजिक स्थिति और भी दयनीय हो गई।

आधुनिक काल में, सामाजिक सुधार आंदोलनों ने महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने का प्रयास किया। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर और महात्मा गांधी जैसे समाज सुधारकों ने महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष किया। स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी ने उनके अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाई, लेकिन फिर भी समाज में युवक और युवती के लिए अलग–अलग मानदंड बने रहे।

युवक–युवती के लिए समाज के अलग–अलग मानदंड :–

1. शिक्षा और करियर में भेदभाव :

शिक्षा के क्षेत्र में लड़कों को उच्च शिक्षा और कैरियर के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जबकि लड़कियों को परंपरागत रूप से घरेलू कार्यों तक सीमित रखा जाता है। हालांकि समय के साथ महिलाओं की शिक्षा दर में वृद्धि हुई है, लेकिन अब भी कई परिवारों में लड़कियों की उच्च शिक्षा को आवश्यक नहीं माना जाता। समाज में यह धारणा बनी हुई है कि पुरुषों को कमाने वाला और महिलाओं को घर संभालने वाला माना जाना चाहिए, जिससे करियर में महिलाओं की प्रगति बाधित होती है।

2. विवाह और पारिवारिक जिम्मेदारियाँ :

भारतीय समाज में विवाह को लड़कियों के जीवन का मुख्य लक्ष्य माना जाता है, जबकि लड़कों के लिए यह एक विकल्प की तरह देखा जाता है। विवाह के बाद महिलाओं से अपेक्षा की जाती है कि वे घर की देखभाल करें और पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करें, जबकि पुरुषों को करियर और सामाजिक गतिविधियों में स्वतंत्रता दी जाती है। लड़की की शादी से जुड़ी जिम्मेदारियों को माता–पिता का कर्तव्य माना जाता है, जबकि लड़कों के विवाह को व्यक्तिगत पसंद का विषय समझा जाता है।

3. नैतिकता और स्वतंत्रता के अलग–अलग मापदंड :

समाज में नैतिकता को लेकर युवक और युवती के लिए भिन्न दृष्टिकोण अपनाया जाता है। लड़कों को देर रात बाहर घूमने, अपने करियर और व्यक्तिगत जीवन के फैसले लेने की स्वतंत्रता दी जाती है, जबकि लड़कियों को कई सामाजिक प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता है। प्रेम और रिश्तों को लेकर भी समाज की प्रतिक्रिया अलग–अलग होती है। यदि कोई लड़का प्रेम संबंध बनाता है, तो उसे सामान्य माना जाता है, जबकि लड़की के लिए इसे नैतिकता से जोड़कर देखा जाता है।

4. उत्तराधिकार और संपत्ति के अधिकार :

भारतीय समाज में पारिवारिक संपत्ति में महिलाओं को समान अधिकार देने के लिए कानूनी सुधार किए गए हैं, लेकिन व्यवहारिक रूप में आज भी लड़कियों को पारिवारिक संपत्ति से वंचित रखा जाता है। उन्हें दहेज के रूप में संपत्ति का हिस्सा दिया जाता है, जबकि बेटों को परिवार का उत्तराधिकारी माना जाता है।

हिंदी साहित्य में लैंगिक असमानता का चित्रण :–

हिंदी साहित्य ने समाज में व्याप्त लैंगिक असमानता को उजागर करने और समानता की दिशा में जागरूकता फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विभिन्न लेखकों ने अपने उपन्यासों, कहानियों और कविताओं में महिलाओं की स्थिति, उनके संघर्ष और पुरुषसत्ता के अन्यायपूर्ण स्वरूप को प्रस्तुत किया है।

1. प्रेमचंद का साहित्य और नारी जीवन :

मुंशी प्रेमचंद ने अपने साहित्य में समाज में व्याप्त स्त्री–शोषण, दहेज प्रथा, विधवा जीवन की पीड़ा और पुरुष सत्ता की क्रूरता को उजागर किया। उनके उपन्यास निर्मला में दहेज प्रथा के कारण एक लड़की के दुखद जीवन को चित्रित किया गया है, जबकि गबन में विवाह के बाद महिलाओं की स्थिति और उनकी संघर्षशीलता

को दर्शाया गया है।

2. महादेवी वर्मा की नारीवादी दृष्टि :

महादेवी वर्मा ने अपने निबंध संग्रह शृंखला की कड़ियाँ में महिलाओं की स्थिति पर गहरा विश्लेषण किया है। वे मानती थीं कि महिलाएँ केवल समाज के नियमों का पालन करने के लिए नहीं बनी हैं, बल्कि उन्हें अपनी स्वतंत्रता और पहचान स्थापित करने का पूरा अधिकार है।

3. मन्नू भंडारी और मृदुला गर्ग का योगदान :

मन्नू भंडारी का उपन्यास आपका बंटी विवाह और मातृत्व में महिलाओं की स्थिति को दर्शाता है, जबकि मृदुला गर्ग का चित्तकोबरा स्त्री की आत्मनिर्भरता और सामाजिक बंधनों के खिलाफ संघर्ष को दर्शाता है।

4. समकालीन हिंदी साहित्य में नारीवाद :

समकालीन हिंदी साहित्य में महिला लेखकों ने अपनी रचनाओं में नारीवाद को नया स्वरूप दिया है। चित्रा मुद्गल का आवां, गौरीनाथ का गुड़िया भीतर गुड़िया और अनामिका का दुर्वासा आधुनिक स्त्री के संघर्ष को प्रस्तुत करते हैं।

लैंगिक समानता की दिशा में प्रयास :-

समाज में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए कई कानूनी और सामाजिक प्रयास किए गए हैं।

1. कानूनी सुधार :
   - दहेज निषेध अधिनियम (1961)
   - घरेलू हिंसा अधिनियम (2005)
   - मातृत्व लाभ अधिनियम (2017)
   - संपत्ति में महिलाओं को समान अधिकार देने के कानून
2. शिक्षा और सशक्तिकरण :
   - बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ योजना।
   - महिला आरक्षण विधेयक।
   - कार्यस्थल पर महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा के उपाय।

3. साहित्य और मीडिया की भूमिका :

हिंदी साहित्य, सिनेमा और मीडिया ने लैंगिक समानता के विचार को फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। महिलाओं के मुद्दों पर केंद्रित फिल्मों, पुस्तकों और टेलीविजन कार्यक्रमों ने समाज में जागरूकता बढ़ाने का कार्य किया है।

निष्कर्ष :-

लैंगिक असमानता समाज की एक गहरी समस्या है, जो केवल महिलाओं के लिए नहीं, बल्कि पूरे समाज के लिए हानिकारक है। हिंदी साहित्य ने इस असमानता को उजागर कर समाज को नई दिशा देने का कार्य किया है। लैंगिक समानता प्राप्त करने के लिए शिक्षा, कानून और साहित्य का समन्वय आवश्यक है, ताकि समाज

में युवक और युवती के लिए समान अवसर और अधिकार सुनिश्चित किए जा सकें।

पुस्तक सूची :–

1. प्रेमचंद : निर्मला, गबन।
2. महादेवी वर्मा : शृंखला की कड़ियाँ।
3. मन्नू भंडारी : आपका बंटी।
4. मृदुला गर्ग : चित्तकोबरा।
5. चित्रा मुद्गल : आवां।
6. गौरीनाथ : गुड़िया भीतर गुड़िया।
7. अनामिका : दुर्वासा।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 46-51

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रेमचंद के उपन्यासों में युवक–युवती की छवि

शिवलाल अहिरवार

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी शासकीय नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देवरी जिला– सागर, म. प्र.

'गोदान' प्रेमचंद की सर्वोत्तम कृति और हिन्दी के उपन्यास–साहित्य के विकास का उज्जवलतम प्रकाश–स्तंभ है। सच्चे अर्थों में यह उपन्यास भारतीय ग्राम्यजीवन और कृषि संस्कृति का 'महाकाव्य' है जिसका नायक है होरी और धनिया इसकी नायिका।

इसमें कोई दो राय नहीं कि होरी 'गोदान' की 'आत्मा' है लेकिन प्रेमचंद ने उस 'आत्मा' की 'काया' धनिया के सहारे ही गढ़ी है। 'गोदान' में प्रेमचंद जो होरी के माध्यम से नहीं कह पाए उसे उन्होंने धनिया के द्वारा अभिव्यक्ति दी है। अगर कहा जाय कि धनिया गोदान की 'पूर्णता' है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। स्वयं होरी के शब्दों में "धनिया सेवा और त्याग की देवी जबान की तेज पर मोम जैसा हृदय पैसे–पैसे के पीछे प्राण देने वाली, पर मर्यादा रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार" रहने वाली नारी है।

धनिया सच्चे अर्थों में 'अर्द्धांगिनी' है। चाहे जो कुछ हो जाये, वह होरी का साथ छोड़ने के लिए तैयार नहीं है। उसमें ना तो होरी जैसी व्यवहार कुशलता है और ना वह लल्लो–चप्पो ही करना जानती है, पर अपने संकल्पित आचरण द्वारा वह होरी की सहायता करती है, उसे डगमगाने से बचाती है, ढाढ़स देती है। हाँ, सुनाती भी खूब है। आवेग में वह कभी–कभी अदूरदर्शितापूर्ण कार्य कर जाती है, पर तत्कालीन सामंती परिवेश में भी वह निर्भीक और निडर है, ये बड़ी बात है। उसमें प्रतिशोध–भावना है, जो होरी में नहीं है, पर कोमल भी वह उतनी ही है। तभी तो किसी की पीड़ा देख उसका आक्रोश दब जाता है।

'गोदान' में भारतीय किसान के संपूर्ण जीवन का जीता–जागता चित्र उपस्थित किया गया है। उसकी गर्दन जिस पैर के नीचे दबी है उसे सहलाता, क्लेश और वेदना को झुठलाता, 'मरजाद' की झूठी भावना पर गर्व करता, ऋणग्रस्तता के अभिशाप में पिसता, तिल–तिल शूलों भरे पथ पर आगे बढ़ता, भारतीय समाज का मेरुदंड यह किसान कितना विवश और जर्जर हो चुका है, यह गोदान में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है।

होरी उसी भारतीय किसान का प्रतिनिधि चरित्र है। उसे हम पग–पग पर परिस्थितियों से दबते और समझौतों में ढलते देख सकते हैं लेकिन धनिया ऐसी कतई नहीं। वह जिस बात को ठीक समझती है, उसे जात–बिरादरी, समाज, कानून आदि की परवाह किए बिना करती है। कभी–कभी तो वह अपने आचरण द्वारा गाँव की 'नाक' तक रख लेती है।

एक नारी की भाँति धनिया मातृ–भावना और स्नेह से परिपूर्ण है। वह होरी की ऐसी 'परछाई' है जो उसकी 'रिक्तता' को भर देती है। होरी अगर भारतीय किसान का प्रतीक है तो धनिया कृषक–पत्नी की प्रतिनिधि। सच तो

ये है कि धनिया के बिना ना तो किसी 'होरी' की परिकल्पना की जा सकती है, ना किसी किसान के घर की और ना ही भारत के ग्रामीण जीवन की। कुल मिलाकर, अगर धनिया नहीं होती तो प्रेमचंद को पूर्णता देनेवाला 'गोदान' भी ना होता। अगर होता भी तो वो नहीं होता जो अब है। इस तरह कहना गलत ना होगा कि प्रेमचंद, गोदान और होरी : तीनों की 'पूर्णता' है धनिया।

गोबर का चरित्र "मनुष्य की आर्थिक सामाजिक स्थिति का सर्वाधिक असर उसके नाम पर होता है" कि उक्ति को चरितार्थ करने वाला, पूरा नाम गोवरधन महतो होने पर भी मात्र 'गोबर' नाम से पुकारा जाना जाने वाला, 16 वर्षीय सांवला, लंबा–इकहरे बदन का गोबर होरी–धनिया का इकलौता नवयुवा पुत्र– गरीब किसान–परिवार का होने से एकदम अनपढ़ किंतु "प्रसन्नता की जगह मुख पर असंतोष और विद्रोह" का भाव लिए हुए जेठ की भयंकर लू–गर्मी में कार्य करने वाला। अपनी इस प्रथम झलक में गोबर कुछ खास प्रभाव नहीं छोड़ता, सिवाय इसके कि वह एक निम्नवर्गीय, निर्धन और कृषक परिवार का सामान्य सा युवा है।

वस्तुतः गोबर 'होरी के बाद की पीढ़ी का विकासोन्मुख अंकुर है। नई पीढ़ी के असंतोष का प्रतीक।' "वह नए जमाने की रोशनी देख चुका है। चाहे गांव में खेती करें, चाहे शहर में मजदूरी, वह दूसरों का अन्याय बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं है। होरी के मरने के बाद गोबर मानो पिता के हत्यारों के लिए एक चुनौती की तरह जीवित रहता है"। वस्तुतः गोबर नहीं पीढ़ी का ऐसा युवक है, जिस पर परंपरागत संस्कारों का प्रभाव अत्यल्प है। फिर भी इस सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि गोबर के चरित्रांकन में प्रेमचंद ने पूर्णतया स्वाभाविक और यथार्थपरक दृष्टिकोण ही अपनाया है।

गबन उपन्यास की नायिका जालपा एक जटिल और दिलचस्प पात्र है। वह एक सुंदर, आकर्षक और संवेदनशील महिला है, जो अपने जीवन में कई संघर्षों का सामना करती है। उसकी कुछ विशेषताएँ हैं :

उपन्यास का संपूर्ण कथानक नारी की आभूषण प्रियता पर ही केंद्रित है। जालपा को बचपन से आभूषणों के लिए उकसाया गया कि तेरे लिए चंद्रहार ससुराल से आएगा, लेकिन जब विवाह के अवसर पर वह चंद्रहार प्राप्त नहीं कर पाती तो उदास हो जाती है। आभूषण प्रियता के भूत से अकेली जालपा ही ग्रस्त हो ऐसी बात नहीं रतन और देवीदिन की पत्नी भी गहनों की दीवानी है।

मिथ्या सामाजिक प्रतिष्ठा की चाह की समस्या ने भी हमारे समाज को कमजोर बना दिया गबन उपन्यास का एक उद्देश्य यह भी रहा कि समाज की कृत्रिम सामाजिक प्रतिष्ठा एवं प्रदर्शन की भावना का यथार्थ चित्रण करके उसके पूरे परिणाम से समाज को परिचित कराया जाए। रामनाथ के चरित्र में यही भावना दृष्टिगोचर होती है इसी प्रवृत्ति के कारण उसमें मिथ्या प्रदर्शन का भाव उत्पन्न होता है। विधवा नारियों की स्थिति का चित्रण प्रेमचंद की गवन में रतन के चरित्र द्वारा विधवाओं की करुण स्थिति का चित्रण करते हैं अनमेल विवाह और उसका परिणाम।

जालपा का चरित्र समाज में एक स्त्री की स्थिति और उसके संघर्षों को दर्शाता है, खासकर जब वह भौतिक सुख–साधनों की ओर आकर्षित होती है। उसके व्यक्तित्व में अच्छाई और बुराई दोनों का सम्मिलन है, जो उसे एक सजीव और यथार्थवादी पात्र बनाता है।

रतन का चरित्र रतन एडवोकेट इन्दुभूषण की पत्नी है। वह पूर्ण युवती है जबकि उसके पति वृद्ध हैं। वह एक संपन्न व्यक्ति की पत्नी होने के कारण वेशभूषा में रानी सी लगती है। रतन नायिका जालपा की सहेली

है और मूल कथा को विकसित करने में सहायक बनी हैं। रतन का व्यक्तित्व स्वच्छंद जीवन और पति–भक्ति का समन्वित रूप है। रतन में आभूषण प्रियता जालपा से कम नहीं है। वकील साहब की अनुपस्थिति वह हार लेना चाहती है। उसके पास रुपए कम है जोहरी को संदूक बंद करते देखकर उसकी दशा कितनी विह्वल हो जाती है। पर–दुःख कायरता और सहानुभूति रतन के चरित्र की प्रमुख विशेषता है। वह जालपा के दुख को अपना दुख समझता है। श्रम को महत्व देने वाली रतन परिश्रमशील नारी है। वह निरू संकोच जालपा के घर चक्की पीसती हुई देखी जाती है। पतिव्रता नारी का आदर्श रतन हिंदू पतिव्रता नारी के नियमों का पालन करती हुई आदर्श उपस्थित करती है। व्यक्ति और निराशा–पति की मृत्यु से रतन निराश्रय हो जाती उसके जीवन को वियोग की भावना घेर लेती हैं। वह अपने समस्त आभूषण एवं श्रृंगार प्रसाधन की वस्तुओं को दान कर देती है। इस उपन्यास में रतन की केवल एक उपयोगिता दिखाई देती है और वह यह दिखाना चाहती है कि सम्मिलित परिवार में हिंदू नारी की स्थिति दैनिक असहाय होती है साथ रतन मूल कथा को गति भी प्रदान करती है।

रमानाथ गबन उपन्यास का नायक है। उसका चरित्र निम्न मध्यम वर्ग के व्यक्ति का चरित्र है। उपन्यास की समस्त घटनाओं का वह केंद्र बिंदु है। कथानक का विकास भी उसी की क्रियाकलापों के द्वारा होता है। प्रेमचंद जी ने आरंभ से अंत तक उसके जीवन को एक ही रूप में चित्रित किया है। वह अपने चरित्र की बुराइयों से परिचित है लेकिन उससे मुक्त होने की शक्ति उसमें नहीं है वह जानता है कि उसके द्वारा जो कार्य किया जा रहा है वह ठीक नहीं है पर फिर भी अपने आप को रोक नहीं पाता। उसे वह कार्य करना ही पड़ता है और यही उसकी सबसे बड़ी कमजोरी है। उसके पिता को मात्र पचास रुपए मासिक वेतन मिलता है। सीमित आय के कारण उसे कॉलेज की पढ़ाई छोड़ने पड़ती है। उसमें इतना पुरुषार्थ भी ना था कि वह स्वयं अर्जन करते हुए अपना अध्ययन जारी रख सके परिणाम यह हुआ कि अपना शौक पूरा करने के लिए कभी किसी के कपड़े पहन लिए और कभी किसी के जूते पहन लिए, उसमें दिखावा के प्रति अत्यधिक आकर्षण था। उसकी इसी मनोवृति ने उसे पतन के द्वार तक पहुंचा दिया था।

दयनाथ की इच्छा थी कि जलपा को घर की यथार्थ स्थिति से अवगत करा देना चाहिए क्योंकि जालपा उसके घर की बहू है। लेकिन रामनाथ अपने घर की यथा स्थिति स्पष्ट करने की अपेक्षा चोरी करना पसंद करता है। अपनी इसी कायरता के कारण वह जालपा के गहने चुराकर अपने पिता दयनाथ को दे देता है यह उसके चरित्र की सबसे कमजोरी है। रामनाथ नित्य अभिमानी युवक है उसका मिथ्याभिमान ही उसके विवाह में अत्यधिक व्यय कर देता है। परिणाम यह होता है की गहनों के उधारी नहीं चुकाई जा सकती जालपा से वह अपने स्थिति इस कारण छुपाता है कि कहीं जालपा उसे छोटा और हीन ना समझने लगे। संकोच की प्रवृत्ति के कारण ही वह अनेक संकटों में पड़ता है। जालपा बहुत धैर्य देती है कि वह जज के सामने पुलिस की चालो का भंडाफोड़ करें अपनी झूठी गवाही की बात स्वीकारे, लेकिन अपनी संकुचित प्रवृत्ति के कारण वह चाहते हुए भी ऐसा नहीं कर पाता। रमानाथ का व्यक्तित्व दुर्बल है। उसके आदर्श वे लोग हैं जिनका कोई आदर्श या ध्येय नहीं होता। परिस्थितियां उन्हें जिधर ले जाती है उधर ही वह चलते चले जाते हैं। रामनाथ अपने नैतिक बन्धनों की शिथिलता के कारण ही जगह–जगह झूठ का सहारा लेता है। माता–पिता जालपा और रतन सभी से वह झूठ बोलता है। जैसे आप कोड़ी–कोडीं के मोहताज रहे वैसे ही मुझे भी बनाना चाहते हैं। उपन्यासकार ने उसके संबंध में लिखा है पत्नी की दृष्टि में वह आदर्श है और जालपा अगर मांगती तो वह अपने प्राण भी उसके चरणों पर न्यौछावर

कर देता। रुपए की तो बात ही क्या? यह उसकी सरलता और सहृदयता ही थी कि एक वेश्या भी उसे पर मुक्त हो गई और उसे फुसलाने के स्थान पर उसके मार्ग को आलोकित करने लगी। रामनाथ उपन्यास का नायक है प्रेमचंद जी ने रामनाथ के रूप में ऐसे युवक का चित्र अंकित किया जो अपने जीवन का कोई लक्ष्य नहीं समझता वस्तुतः प्रेमचंद ने रामनाथ के माध्यम से अर्थाभाव से पीड़ित निम्न मध्यम वर्ग के युवक का चरित्रांकन किया है।

निर्मला उपन्यास की नायिका का नाम है, और यह उपन्यास हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक प्रेमचंद द्वारा लिखा गया था। निर्मला का चरित्र अत्यंत ही संवेदनशील और गहरे मानविक भावनाओं से परिपूर्ण है। उसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :–

सामाजिक दबावों का सामना निर्मला एक गरीब परिवार की लड़की है, जो सामाजिक कुप्रथाओं और आर्थिक स्थिति के कारण विवाह के लिए बाध्य हो जाती है। वह समाज के दबावों का सामना करती है, और इस दौरान उसका जीवन संघर्षों से भरा होता है।

कुर्बानी की भावना निर्मला का चरित्र सच्ची बलिदानी भावना से भरा हुआ है। वह अपने परिवार की खातिर अपनी इच्छाओं और सपनों की कुर्बानी देती है। उसे अपनी शादी के बाद भी प्रेम और समझौते का रास्ता अपनाना पड़ता है।

संवेदनशीलता और आदर्शवाद वह एक भावुक और संवेदनशील लड़की है। वह सदैव अच्छाई की ओर प्रवृत्त रहती है और समाज की कुरीतियों से मुक्त होने की चाह रखती है। उसकी सोच में आदर्शवादिता और नैतिकता की गहरी छाप होती है।

नैतिक संघर्ष निर्मला के जीवन में नैतिकता और समाजिक परिस्थितियों के बीच एक संघर्ष चलता है। वह अपने परिवार और समाज के दबावों में रहते हुए भी नैतिक मूल्यों को नहीं छोड़ती, हालांकि यह संघर्ष उसे मानसिक रूप से टूटने की कगार तक पहुंचा देता है।

अवसाद और दुःख निर्मला के जीवन में कई दुख और कष्ट आते हैं, जैसे कि उसका विवाहित जीवन सुखमय नहीं होता। उसे अपने पति से अपेक्षित प्रेम नहीं मिलता, और उसका मानसिक दुःख लगातार बढ़ता जाता है।

आत्मनिर्भरता की ओर प्रयास निर्मला की चरित्र में यह विशेषता भी है कि वह हर कठिनाई के बावजूद अपनी स्थिति को सुधारने की कोशिश करती है, लेकिन उसके लिए यह रास्ता आसान नहीं होता।

निर्मला का जीवन और उसके निर्णय समाज में स्त्री की स्थिति और संघर्ष को उजागर करते हैं, साथ ही यह भी बताता है कि सामाजिक कुरीतियों और पारंपरिक सोच को चुनौती देने की जरूरत है।

'सेवा सदन' की नायिका का नाम 'अन्नपूर्णा' है। उनकी चरित्र विशेषताएं निम्नलिखित हैं :–

सादगी और आत्मविश्वास अन्नपूर्णा बहुत साधारण और सादगी से भरी हुई महिला हैं। वह अपने जीवन में कोई दिखावा नहीं करतीं और अपनी जिम्मेदारियों को ईमानदारी से निभाती हैं।

धैर्य और सहनशीलता अन्नपूर्णा का व्यक्तित्व बहुत धैर्यवान है। वह हर मुश्किल परिस्थिति का सामना करती हैं और उसकी कठिनाइयों को सहन करती हैं, बिना हार माने।

सेवा भाव जैसा कि नाम से भी प्रतीत होता है, अन्नपूर्णा का सबसे प्रमुख गुण उनका सेवा भाव है। वह

समाज की सेवा में पूरी तरह से समर्पित रहती हैं और दूसरों की मदद करने में हमेशा तत्पर रहती हैं।

त्याग और बलिदान अन्नपूर्णा अपने परिवार और समाज के लिए काफी बलिदान देती हैं। वह अपनी सुख–सुविधाओं का त्याग करती हैं और दूसरों के लिए खुद को समर्पित करती हैं।

सामाजिक दायित्व अन्नपूर्णा का मानना है कि समाज में बदलाव लाने के लिए हमें अपने कर्तव्यों को समझकर कार्य करना चाहिए। वह अपने कर्तव्यों को प्राथमिकता देती हैं और समाज में सुधार लाने का प्रयास करती हैं।

उनकी इन विशेषताओं ने उन्हें कहानी की नायिका के रूप में एक प्रेरणादायक और आदर्श व्यक्तित्व बना दिया है।

प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' में सूरदास का चरित्र जनहित के लिए समर्पित, निर्भय, और आशावादी है। वह मुसीबतों से सामना करने वाला और स्वयं को संभालने वाला व्यक्ति है। सूरदास के चरित्र में गांधी जी के दर्शन दिखते हैं।

रंगभूमि उपन्यास में सूरदास के चरित्र की विशेषताएं :–

– सूरदास जनहित के लिए समर्पित है।
– वह निर्भय है और मुसीबतों से सामना करने वाला है।
– वह आशावादी है और विपरीत परिस्थितियों में भी हार नहीं मानता।
– वह अपने विरोधियों के प्रति कोई दुर्भावना नहीं रखता।
– वह निष्पक्ष खेल का सख्ती से पालन करता है।
– वह गांधी दर्शन से प्रभावित है।
– वह नशा–व्यसन का विरोधी है।
– वह समाज में लोगों की समस्याओं का समाधान ढूंढने के लिए मिल बैठकर बात करता है।
– वह पंचायत जोड़ता है।
– वह सरकारी अदालत के झूठे प्रकरण में दोषी ठहराए जाने पर जनता और पंचायत से दोबारा निर्णय लेता है।

कथा का नायक सूरदास का पूरा जीवनक्रम, यहाँ तक कि उसकी मृत्यु भी राष्ट्रनायक की छवि लगती है। पूरी कथा गाँधी दर्शन, निष्काम कर्म और सत्य के अवलंबन को रेखांकित करती है। यह संग्रहणीय पुस्तक कई अर्थों में भारतीय साहित्य की धरोहर है। कहानी में सूरदास के अलावा सोफी, विनय, जॉन सेवक, प्रभु सेवक का किरदार भी अहम है।

प्रेमचंद के उपन्यास 'कर्मभूमि' में सुखदा एक प्रधान नारी पात्र है। सुखदा का लालन–पोषण विलासी वातावरण में हुआ था। अमरकांत से विवाह के बाद, अमर उससे सादा जीवन व्यतीत करने की आशा करता है।

सुखदा के बारे में ज्यादा जानकारी :–

– सुखदा, 'कर्मभूमि' उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र है।
– अमरकांत से विवाह के बाद, अमर उससे सादा जीवन व्यतीत करने की आशा करता है।
– अमरकांत और सुखदा, 'कर्मभूमि' उपन्यास के प्रमुख केंद्रीय पुरुष और महिला पात्र हैं।

– 'कर्मभूमि' उपन्यास में हर वर्ग, जाति, और धर्म के पात्र हैं।

– 'कर्मभूमि' उपन्यास में प्रेमचंद ने गौण पात्रों का इस्तेमाल कथा–संघटन में इतनी कुशलता से किया है कि ग्राम और नगर कथाओं के पृथकत्व का पता नहीं चलता।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बीसवीं शताब्दी के चर्चित उपन्यास–डॉ. राजेंद्र मिश्र।
2. गोदान : प्रेमचंद।
3. गबन : प्रेमचंद।
4. निर्मला : प्रेमचंद।
5. सेवा सदन : प्रेमचंद।
6. रंगभूमि : प्रेमचंद।
7. कर्मभूमि : प्रेमचंद।

मो. 8823045608

Email: shivlala77@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 52-55

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रेम में त्याग और समर्पण

गांवित कल्पेशभाई रायुभाई

पी.एच.डी शोधार्थी (हिंदी विभाग), (वी.एन.द.गु.विश्वविद्यालय) सूरत, गुजरात।

मार्गदर्शक – **डॉ.पुखराज जांगिद** (सह प्राध्यापक)

राजकीय महाविद्यालय गवर्नमेंट कोलेज दमण, (वी.एन.द.गु.विश्वविद्यालय) सूरत, गुजरात।

१. प्रेम में त्याग और समर्पण।

२. आदर्श और यथार्थ के बाद प्रेम।

३. सामाजिक बंधनों में बंधा प्रेम।

प्रस्तावना :–

मनुष्य के भावो में प्रेम ही एक ऐसा भाव हे जो मनुष्य को मनुष्य बनाता है। प्रेम कभी भी पूर्ण रूप से पूरा नहीं हो सकता है। वह तो जितना आपस में बाँटोगे उतना ही बढ़ता जायेंगा। प्रेम की कभी कोई भाषा नहीं होती है। वह तो एक एहसास है जो बिना कहे बिना बोले एक दुसरे के समक्ष आ जाता है। प्रेम की अगर कोई भाषा है तो मनुष्य की दो आँखे जिनकी वजह से वह प्रेम भाव को समझ सकता है। जो आँखों से प्रारंभ होकर हृदय तक जाता है। प्रेम में कभी भी स्वार्थ को महत्त्व दिया नहीं जाता वह तो निःस्वार्थ भावो से होता है। प्रेम केवल किया जाता है न कि लिया या माँगा जाता है। यही सच्चे प्रेम की निशानी है और सच्चा धर्म है। जो दो व्यक्ति को निभाना होता है। प्रेम का अनुभव सभी व्यक्ति को भिन्न–भिन्न रूप से होता है। पर में यह कहना चाहता हु की विश्व के सभी देशो में चाहे भले ही संस्कृति अलग हो चाहे रीति–रिवाजों अलग हो या भाषा का स्तर अलग हो पर प्रेम का अहसास तो एक ही होता है। जिनको हमें समझना होता है।

1. प्रेम में त्याग और समर्पण :–

जिस प्रेम में त्याग ना हो समर्पण न हो वह प्रेम सच्चा नहीं हो सकता। प्रेम में अपने आपको पूरी तरह से स्वतंत्रता देना और सामने वाले व्यक्ति को भी स्वतंत्रता दे ताकि सही रूप से प्रेम कर सके। इस युग में प्रेम का दान करना सर्वोतम दान कहा जा सकता है। क्योंकि आजकल के युग ने प्रेम करना या मिलना असंभव है। आज के समय में किसी व्यक्ति के पास समय नहीं है वह अपने निजी कामो में व्यस्त है जिनकी वजह से जो अपने अन्दर जो प्रेम का सागर है वह निकाल नहीं पाता है।

एक पंक्ति के द्वारा समझ सकते है :–

'मैं एक इश्क हुं।

मुझे इश्क के सिवा कुछ भाता नहीं।
मेरी प्रकृति इश्क।
मेरी स्वीकृति इश्क।
मेरा अर्पण भी इश्क
हो, में इश्क हूं।
में ही काशी, में ही मथुरा
में ही राधा, में ही श्याम हूं।
हा, में इश्क हूं। इश्क में हूं।

भारतीय परंपरा में राधा और कृष्णा का प्रेम जो है वह प्रेम कि वास्तविकता, को उजागर करता है। प्रेम के समर्पण में राधा का नाम सर्वोतम है। क्योंकि राधा ने प्रेम को पा लिया था। राधा को अंतिम बार मिलने आये कृष्ण जब रोते है तब उनके आँखों में से निकलते आसूँ राधा के साड़ी में समा गये थें। जब राधा के घर वालें उनके पिता उनको समझाते है कि अपनी साड़ी धुलाई के लिए अपने माँ को देने के लिए कहतें है तब राधा कहती है कि मेरे, कृष्ण कि निशानी इस साड़ी में है में यह, साड़ी न दूंगी। यहां हम देख सकते है कि सच्चे प्रेम की पराकाष्ठा क्यों होती है।

2. आदर्श और यथार्थ के बाद प्रेम :–

आदर्श वह हे जो भौतिक जगत को या तो उस विचार या प्रत्यय का अनुकरण है या उस चेतना में ही स्थित है। आदर्शवाद और यथार्थवाद अलग–अलग स्वतंत्र परिभाषिक शब्द है किंतु प्रेमचंद ने आदर्शान्मुख यथार्थवाद के नाम से आदर्श और यथार्थ के मिले–जिले रूप की परिकल्पना की है। प्रेम एक ऐसा भाव है जिनमे आदर्श भी है और यथार्थ भी है। सरल शब्दों में कहे तो आदर्श के धरातल पर किया गया प्रेम ही यथार्थ की और ले जाता है। जो परम सुख या मोक्ष के रूप में हमें अनुभव कराता है। गुरुदेव कहते है जिन्होंने सत्य असत्य के सारे भेदों को समझ लिया है और जो असत्य को छोड़कर सत्य में स्थित है उन सब ज्ञानियो की दशा एक समान होती है। उनमें विवाद नहीं होता। वे तो जो बीच के अधकचरे लोग है। कुछ का कुछ कहकर उबलते है।

जो आपको प्रेम करता है उसे आप प्रेम करो और जो आपसे निस्वार्थ भाव से प्रेम करता है। उनकी आप कदर और मन सम्मान करो। क्योंकि प्रेम में कभी भी यह विचार नहीं करना चाहिए कि वो भी मुझे प्यार करे अगर आप इस प्रकार की सोच रखते हो तो यह गलत है। प्रेम सिर्फ देना है उनमे त्याग की भावना होनी चाहिए। प्रेम ही मनुष्य को पूर्ण बनाता है। अपनी अस्तित्व की पहचान कराता है। पर दूसरे शब्दों में कहे तो प्रेम न पूर्ण होता है ना सम्पूर्ण होता है। प्रेम अनंत है और अनंत का कोई छोर नहीं होता जो प्रेम अधुरा रहे वही प्रेम है। क्योंकि वो निरंतर बढ़ता रहता है। प्रेम का न आदि है न अंत प्रेम तो सदा से है अनंत.....और हमेशा रहेगा।

"प्रतीक्षा करना शुद्ध प्रेम की
निशानी है जो प्रतीक्षा कर

सकता है वही प्रेम को निभा
सकता है।"

3. सामाजिक बन्धनों में बंधा प्रेम :–

भारतीय समाज में कई ऐसे रीती रिवाजो है जिनकी वजह से सच्चे प्रेम करने वाले व्यक्ति को अपना प्रेम नहीं मिलता है। वास्तव में प्रेम को कोई भी बांध नहीं सकता वह तो परम सत्य है पर हमारे समाज के लोगो को यह बात समझाना मुश्किल है। उनको अपने रित रिवाजो की सेवा करनी होती है। किसी को धर्म सही नहीं लगता जात–पात में मानने वाले होते है। कोई समाज आमिर गरीब को महत्त्व देता है। कोई समाज की भाषा या बोली को लेकर विवाद करते है। ऐसे कई सामाजिक बंधनों का सामना करना पड़ता है।

"पुरुषो के जीवन का संघर्ष,
सदैव उनकी प्रेमिकाओं ने देखा है,
पत्नियो को तो एक पढ़ा लिखा
कामयाब लड़का मिला है।"

उपरोक्त पंक्तिया समाज के ऊपर निशाना लगाती है कि व्यक्ति अगर सफलता प्राप्त करता है तो उनमे प्रेमिकाओ ये बात आज के समाज को समझना होगा। दक्षिण भारतीय समाज में सगे मामा भोजी में शादी सबसे उत्तम संबंध माना जाता है। जबकि अन्य राज्यों में इसी धर्म के लोग इसे घोर पाप समझेंगे। एक ही संबंध किसी के लिए पाप है तो किसी के लिए बेहद पवित्र आदरणीय और स्वीकार्य। हम जिस राज्य प्रान्त, समाज और परिवार में पैदा हुए है वहां के नियम ही पाप पुण्य की परिभाषा तय करते है। और उन नियमो को मानकर चलने में ही हमारी भलाई है।

निष्कर्ष :–

प्रेम की व्याख्या या उनको परिभाषित करना किसी व्यक्ति के स्थान से परे है। क्योंकि हमारे इतिहास करो ने जितना भी उनके बारे में लिखा है। वह आज भी बहुत ही कम जान पड़ता है। प्रेम शब्द को हम लिखकर या उनको बोलकर उनकी सीमा तय नहीं की जा सकती। पर उनको तो सच्चे मनसे और ह्रदय की पवित्रता से ही उनका अनुभव किया जा सकता है। और भारतीय परम्परा में कहा गया है कि प्रेम ही सत्य है और सत्य ही ईश्वर है। हमें सिर्फ इसी भावना को समझकर आगे आने वाले समय को और उन समय पर होने वाले प्रेम को समझाना है। शब्द के बिना जिसका वर्णन होता है वह प्रेम ही अनुभव या एहसास के बिना स्नेह पर लगन लगे वह प्रेम है। जिसके बिना एक पल भी अधूरा लगे वह प्रेम है।

सन्दर्भ सूचि :–

1. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. अमरनाथ, पांचवा संस्करण, २०२२
2. कबीर दर्शन, अभिलाष दास, ग्यारहवी बार, २०२०
3. दिव्य भास्कर, १२ फेब्रूआरी, २०२५, पृष्ट–3
4. दमणगंगा टाइम्स, १३ फेब्रुआरी २०२५, पृष्ट–४

5. दमणगंगा टाइम्स, १५ फेब्रुआरी २०२५, पृष्ट–3

वेबसाईट :-

1. https://m.hindi.webdunia.com/relationship/%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%9C%E0%A4%BF%E0%A4%95-%E0%A4%B8%E0%A4%82%E0%A4%B0%E0%A4%9A%E0%A4%A8%E0%A4%BE-%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82-%E0%A4%B0%E0%A4%BF%E0%A4%B6% E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A5%8B%E0%A4%82-%E0%A4%95%E0%A4%BE-%E0%A4%AE%E0%A4%B9%E0%A4%A4%E0%A5%8D%E0%A4%B5-108041000047_1.htm'amp=1
2. https://navbharattimes.indiatimes.com/./articleshow/7961793.cms

चलभास– ८३२०५८६०४६
अणुदाक– ganvitkapu44@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 56-62

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति

डॉ. सविता यादव

सहायक प्रध्यापक, राजनीति विज्ञान, शासकीय महाविद्यालय सोयतकलॉ, जिला आगर, मालवा, म. प्र.

सारांश :-

सामाजिक जीवन कभी भी देश एवं काल के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता। भारतीय व्यवस्था के इतिहास में स्त्रियों की स्थिति लंबे समय से विवाद का विषय रही है। स्त्रियों की स्थिति से संबंधित विवाद का कारण यह नहीं है कि हम जैविक अथवा मानसिक रूप से उन्हें दोषपूर्ण मानते हैं, बल्कि इसका प्रमुख कारण हमारी पवित्रता संबंधी संकीर्ण विचारधारा ही है। अनेक पश्चिमी विद्वानों ने यहां तक मान लिया है कि नारी में कुछ ऐसे जन्मजात दोष हैं, जिनके कारण वह पुरुषों के साथ समानता का दावा नहीं कर सकती।

डॉ. रूबैक का विचार है कि स्त्रियों में जन्म से ही असंगति और परस्पर विरोधी गुण होते हैं। हमारी मौलिक सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों को सम्मति, ज्ञान और शक्ति का प्रतीक माना गया है, जिसकी अभिव्यक्ति लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा की पूजा के रूप में की जाती रही है। स्त्री को पुरुष की 'अर्द्धागिनी' के रूप में स्थान दिया गया है, जिसके बिना किसी भी कर्तव्य की पूर्ति नहीं की जा सकती। वैदिक और उत्तरवैदिक काल के पश्चात हमारे समाज की मौलिक व्यवस्थाएं रूढ़ियों के रूप में परिवर्तित होने लगीं। फलस्वरूप, स्त्रियों में लज्जा, ममता और स्नेह के गुणों को उनकी दुर्बलता समझकर पुरुष ने उनका मनमाना शोषण करना आरंभ कर दिया।

ऐसी प्रवृत्तियों को स्मृतिकारों और धर्मशास्त्रकारों का आशीर्वाद प्राप्त होने के कारण स्त्री धीरे–धीरे परतंत्र, निस्सहाय और निर्बल बन गई। पुरुष ने शक्ति के लोभ में स्त्री के पारिवारिक अधिकार तक छीन लिए। इन परिस्थितियों के कारण मध्यकाल में हिंदू समाज में स्त्रियों की स्थिति एक दासी से अच्छी नहीं रह गई। समय और समाज परिवर्तनशील हैं, और हमारे समाज के एक बड़े भाग ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के व्यापक प्रयत्न किए। इसके फलस्वरूप, भारतीय समाज में आज स्त्रियों को पुनः सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में नवीन अधिकार प्राप्त हो रहे हैं।

अनेक क्षेत्रों में स्त्रियों ने पुरुषों पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर यह सिद्ध कर दिया है कि जन्मजात दृष्टि से वे किसी भी प्रकार से पुरुषों से कम नहीं हैं। स्त्रियों की स्थिति में मूलभूत परिवर्तन 19वीं सदी के बाद प्रारंभ हुआ। बाह्य दृष्टि से इस परिवर्तन के लिए अंग्रेजी शासन को उत्तरदायी माना जा सकता है (दुबे 1990 : 15)। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का विभिन्न कालों में वर्णन इस प्रकार से किया जा सकता है।

वैदिक काल :-

2000 से 1000 ईसा पूर्व का युग वैदिक युग के रूप में जाना जाता है। वैदिक समाज भारतीय इतिहास

का सर्वाधिक आदर्श समाज रहा है, जिसमें नारियों ने समस्त अधिकारों का पूर्णता के साथ उपयोग किया था। वेदाध्ययन से विदित होता है कि स्त्री को पुरुष के समान समस्त अधिकार प्राप्त थे। अथर्ववेद (11ध्18ध्5) में स्त्री को वेदाध्ययन का स्पष्ट अधिकार दिया गया है। ऋग्वेद (1ध्3ध्11) में स्त्री को यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त है। ईसा से 600 वर्ष पूर्व तक स्त्री को समाज में आदरणीय एवं पूजनीय स्थान प्राप्त था। घर में उसकी स्थिति रानी की तरह होती थी। महाभारत के कथानुसार, 'यदि घर में पत्नी नहीं, तो वह घर, घर नहीं होता।'

कन्याएँ स्वतंत्र होकर युवकों के साथ अध्ययन करती थीं और विभिन्न कार्य–धंधों में भी संलग्न रहती थीं। वैदिक युग की नारियाँ वैदिक वाङ्मय का विधिवत अध्ययन करती थीं एवं यज्ञों में भाग लेकर मंत्रोच्चारण भी करती थीं। वैदिक समाज में धर्म के नाम पर स्त्रियों के प्रति कोई दुर्व्यवहार नहीं किया जाता था। कोई भी धार्मिक कृत्य बिना पत्नी के सहयोग के पूर्ण नहीं होता था। इस प्रकार, समाज में उनकी स्थिति सम्मानजनक थी (नायडू 1997 : 25)।

स्त्रियों को पति के चुनाव में स्वतंत्रता प्राप्त थी। विवाह में उनकी सहमति ली जाती थी और उन्हें स्वयंत्रता प्राप्त थी। अपनी बहन का विवाह योग्य वर से करना भाई का पुनीत कर्तव्य माना जाता था। संतानोत्पत्ति प्रत्येक स्त्री का विशिष्ट कार्य माना जाता था। बाल विवाह नहीं होते थे। विधवा विवाह की छूट का उल्लेख यद्यपि नहीं मिलता, परंतु सती प्रथा उस काल में नहीं थी। विधवाओं के साथ मानवीय व्यवहार किया जाता था, और उन्हें अपने मृत पति की संपत्ति में अधिकार प्राप्त था। दहेज प्रथा उस समय प्रचलित नहीं थी। पति–पत्नी दोनों मिलकर 'दम्पति' कहलाते थे, और दम्पति को अटूट जोड़े के रूप में मान्यता प्राप्त थी। अविवाहित व्यक्ति को पूर्ण नहीं माना जाता था।

महाभारत में लिखा है– 'वही आदमी पूर्णता प्राप्त करता है जो अपनी पत्नी तथा बच्चों के साथ रहता है।' पत्नी को अपने पति की 'अर्द्धांगिनी' कहा जाता था। पाणिग्रहण एवं सप्तपदी पति और पत्नी के समानता एवं मैत्रीपूर्ण संबंध के प्रतीक थे। पत्नी को पति की दासी नहीं समझा जाता था, वह उसकी साथी एवं मित्र थी, अर्थात स्त्री को बराबरी का दर्जा प्राप्त था। पत्नी पति के कार्यों में सहयोग देती थी तथा धार्मिक कृत्यों में वह पति की सहधर्मचारिणी होती थी। पत्नी को अपने पति की अनुपस्थिति में भी, उसकी अनुमति के बिना, सामान्य संपत्ति से दान आदि करने का अधिकार था।

वैदिक युग की स्त्रियाँ समस्त अधिकारों की भोगी थीं तथा उनकी स्थिति उच्च एवं आदरणीय थी। उस युग में स्त्री–संबंधी कुरीतियों का प्रचलन आरंभ नहीं हुआ था। प्राचीन भारतीय इतिहास में वैदिक युग की नारी को उसके उत्थान की पराकाष्ठा पर माना जाता है (लवानिया 1996 : 18)।

उत्तरवैदिक काल :–

उत्तरवैदिक काल ईसा पूर्व 1000 से 500 तक माना जाता है। इस काल में लोहे का प्रारंभ भी माना जाता है। उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हुआ। ऋग्वेद के समय में स्त्रियों की जो स्थिति थी, अर्थवेद व उसके बाद के समय में उसमें बदलाव आया। धीरे–धीरे यह भावना विकसित होने लगी कि बौद्धिक दृष्टि से स्त्री पुरुष से निम्न है। यह भी माना जाने लगा कि वह पुरुष से अधिक भावुक तथा कामविवेकी होती है और बाह्य वातावरण की शीघ्र शिकार बन जाती है। उसमें सत्य की परख की योग्यता का अभाव रहता है तथा कारणों की गहराई नापने की क्षमता नहीं होती।

भीष्म पितामह ने महाभारत के अनुशासन पर्व में कहा है कि स्त्रियों को हमेशा पुरुष के संरक्षण की आवश्यकता होती है। मनु ने भी इस प्रकार का वर्णन किया है। मनु के अनुसार :–

'पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रः, न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति।।'

अर्थात, बाल्यकाल में स्त्री को अपने पिता के संरक्षण में, युवावस्था में पति के संरक्षण में और वृद्धावस्था में अपने पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए। एक स्त्री को कभी भी अपने पिता या पुत्र से स्वतंत्र होने का विचार नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार, उत्तरवैदिक काल में महिलाओं पर कई प्रकार के बंधन लगा दिए गए। धर्मशास्त्र काल तीसरी शताब्दी से लेकर 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक माना जाता है। इस समय याज्ञवल्क्य संहिता, विष्णु संहिता और पराशर संहिता जैसी रचनाएँ हुईं, जिन्होंने मनुस्मृति के नियमों को प्राथमिकता देकर स्त्रियों की वैदिक काल की स्वतंत्रता को और भी सीमित एवं प्रतिबंधित कर दिया।

इस युग में स्त्रियों को संपत्ति के अधिकार से वंचित कर दिया गया। कन्याओं के विवाह की आयु घटाकर 10 से 12 वर्ष के मध्य कर दी गई। विवाह में कन्या की इच्छा का कोई महत्व नहीं रह गया। स्त्रियाँ एक वस्तु के रूप में देखी जाने लगीं, जिन्हें पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी प्रकार से उपयोग में ला सकता था (लवानिया 1996 : 20)।

मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति :–

उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति कमजोर अवश्य होने लगी थी, परन्तु उनके प्रति सम्मान का भाव बना रहा और पुरुषों के साथ उनके सामंजस्य की भावना भी थी। मध्यकाल, जो 11वीं शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक माना जाता है, में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत निम्न हो गई। इस काल में ब्राह्मणों का प्रभुत्व बढ़ रहा था। विवाह और जाति–नियमों को कठोर बनाया गया, और ब्राह्मणों ने नए कर्मकांडों तथा अनुष्ठानों का प्रावधान कर महिलाओं को अत्यंत निम्न श्रेणी में रख दिया।

मुगलों के आक्रमण ने स्त्रियों की स्थिति को और भी दयनीय बना दिया। पुत्र की उत्पत्ति सम्मानजनक मानी जाने लगी, जबकि पुत्री का जन्म अपमानजनक समझा जाने लगा। कई स्थानों पर पुत्रियों की हत्याएँ होने लगीं। पुत्री को पराया धन मानकर उसके लालन–पालन और शिक्षा पर ध्यान देना बंद कर दिया गया। पुत्र और पुत्री के बीच समानता का भाव समाप्त हो गया, और पुत्री के जन्म पर परिवार में मायूसी छाने लगी।

पति के परिवार में भी स्त्रियों की स्थिति निम्न होती गई। पुरुषों का नियंत्रण बढ़ता गया, और पत्नी को पति की सम्पत्ति समझा जाने लगा। वैदिक काल में जो स्त्री गृहस्वामिनी थी, वह मात्र भोग की वस्तु और घर की दासी बनकर रह गई। समाज में लड़कियों को उच्च शिक्षा देने का विरोध किया जाने लगा। स्त्रियों की शिक्षा को समाज–विरोधी मान लिया गया, और घरेलू कार्यों में दक्षता ही उनके लिए सबसे बड़ी शिक्षा बन गई। स्वयं महिलाओं ने भी यह मानना शुरू कर दिया कि अधिक पढ़ने का कोई लाभ नहीं क्योंकि अंततः उन्हें घर का चूल्हा–चौका ही संभालना है।

स्त्री पर सामाजिक प्रतिबंध एवं दमन :–

बचपन से ही महिलाओं को यह सिखाया जाने लगा कि पति उनका परमेश्वर है। उन्हें अधिक भावुक और

कामुक माना जाने लगा, और यह विचार स्थापित हुआ कि वे अपनी स्वाभाविक कमजोरी के कारण किसी के भी समक्ष समर्पण कर सकती हैं। इसीलिए उन पर कठोर नियंत्रण रखना आवश्यक समझा जाने लगा। कौमार्य की रक्षा और पवित्रता के नाम पर बाल विवाह प्रचलित हो गए। विधवाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई। महिलाओं को अपने जीवनसाथी के चुनाव में कोई अधिकार नहीं दिया गया। प्रेम विवाह को हेय दृष्टि से देखा जाने लगा, जिससे बेमेल विवाह प्रचलित हो गए।

इस काल में विवाह के नियमों को कठोरता से लागू किया गया, जिससे दहेज (वर–मूल्य) की माँग बढ़ गई। दहेज प्रथा ने स्त्रियों की स्थिति को और अधिक गिराने में योगदान दिया। इसी युग में सती प्रथा का प्रारंभ हुआ और विधवा पुनर्विवाह पर पूर्णतः रोक लगा दी गई। पति–पत्नी के संबंधों में समानता समाप्त हो गई, और पति का व्यवहार पत्नी के प्रति कठोर होता गया। घरेलू कार्यों में भी पत्नी की राय को महत्वहीन माना जाने लगा।

महिलाओं पर कठोर नियंत्रण :–

पति–पत्नी के संबंधों में पुरुष का वर्चस्व इतना बढ़ गया कि पत्नियों पर अत्याचार और आतंक फैलने लगा। इस युग में पर्दा प्रथा का भी प्रचलन शुरू हो गया, और स्त्रियों को स्वतंत्र रूप से रहने के अयोग्य घोषित कर दिया गया। उनका कार्य क्षेत्र घर की चारदीवारी तक सीमित कर दिया गया। सार्वजनिक एवं सामाजिक कार्यों में भाग लेने पर प्रतिबंध लगाया गया, और पुरुषों का नियंत्रण कठोर से कठोरतर होता गया। सामाजिक दृष्टि से स्त्रियों की स्थिति अत्यंत निम्न हो गई।

मध्यकाल में महिलाओं की निम्न स्थिति के प्रमुख कारण :–

1. महिलाओं को अशिक्षित रखने की प्रथा का प्रारंभ।
2. विदेशी आक्रमणों के कारण अंतर्विवाह नियमों का कठोरता से पालन।
3. शास्त्रकारों द्वारा 'कन्यादान' की परंपरा का प्रचार।
4. महिलाओं को अन्य व्यवसायों से अलग रखना।
5. पर्दा प्रथा का अस्तित्व में आना।
6. महिलाओं की आर्थिक निर्भरता में वृद्धि।
7. संयुक्त परिवार व्यवस्था में स्त्रियों की निम्न दशा और पुरुषों का प्रभुत्व।
8. पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों को पुरुषों के अधीन रखने का प्रावधान।
9. बाल विवाह की प्रथा का प्रचलन।
10. विवाह प्रथाओं जैसे अंतर्विवाह, कुलीन विवाह, विधवा विवाह निषेध, बाल विवाह, दहेज प्रथा और बेमेल विवाह ने स्त्रियों की स्थिति को कमजोर और अत्यंत निम्न कर दिया (नायडू 1997 : 15–18)।

ब्रिटिश–युग एवं आधुनिक काल में महिलाओं की स्थिति :–

18वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों से स्वतंत्रता प्राप्ति तक का समय ब्रिटिश युग के नाम से जाना जाता है। इस युग में भी महिलाओं की स्थिति में कोई विशेष बदलाव नहीं आया। स्वतंत्रता के पूर्व हमारे यहां साक्षरता 6 प्रतिशत से भी कम थी। बाल विवाह, पर्दा प्रथा तथा सामाजिक कुरीतियों में इस युग तक सुधार की कोई आवश्यकता महसूस नहीं की गई। धार्मिक कर्तव्यों का पालन करना, पति की सेवा करना ही इनका प्रमुख कार्य

हो गया। सभी प्रकार के अधिकार पुरुषों के ही हाथों में केन्द्रित थे। स्त्रियों का प्रमुख कार्य संतानोत्पत्ति एवं परिवारजनों की सेवा करना था। विवाह विच्छेद के अधिकार न होने से पति के दुष्चरित्र और पापी होने पर भी पत्नी को उसके साथ सामंजस्य करना पड़ता था। विधवाओं की अवहेलना भारतीय समाज की विशेषता रही है। स्त्रियों को सन 1937 के पूर्व तक विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। स्त्री के द्वारा घर की देहरी लांघकर कोई भी आर्थिक कार्य करना अनुचित तथा अनैतिक समझा जाता था। पुरुषों की कृपा पर निर्भर रहना उनकी मजबूरी बन गई थी। सर्वप्रथम 1937 में पति की संपत्ति से संबंधित शिक्षा दी गई। यहां आपका वाक्य संशोधित किया गया है। इस आधार पर कुछ स्त्रियों को मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ।

भारतीय समाज में आरंभ से ही एक ऐसा वर्ग रहा है जिसने शूद्र कहलाने वाली महिलाओं को न तो धार्मिक कृत्यों में भाग लेने का अधिकार दिया, न ही धार्मिक ग्रंथों को पढ़ने या छूने का। उनकी छाया का स्पर्श भी पाप समझा जाता था। वे यज्ञोपवीत धारण नहीं कर सकती थीं। पानी के लिए उनका अलगपन था, मंदिरों में उनका प्रवेश निषिद्ध था, और बस्तियां भी अलग थीं। शिक्षा ग्रहण करने का भी इन्हें कोई अधिकार नहीं था। इन्हें रास्ते से निकलते समय अपने पीछे कांटेदार झाड़ू लगाकर निकलना पड़ता था, ताकि मार्ग साफ हो जाए। ऐसा प्रतीत होता था मानो उनके शरीर से आग की लपटें निकल रही हैं। स्वार्थ, अत्याचार और अन्याय जब अपनी चरम सीमा को पार कर जाते हैं, तो स्वाभाविक रूप से उनके विरुद्ध प्रतिक्रियाएं प्रारंभ हो जाती हैं। समाज सुधारकों में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महर्षि कर्मे, रमाबाई, मालाबाई आदि ने स्त्रियों की स्थिति में बदलाव लाने के उद्देश्य से सामाजिक आंदोलनों का सूत्रपात किया। स्त्रियों का ध्यान उनके साथ होने वाले दुर्व्यवहार और शोषण के प्रति आकर्षित किया। स्त्रियों ने निर्णय लिया कि वे पुरुषों की स्वार्थ परता को नष्ट कर देंगे, वे स्वयं अग्रसर होनी लगीं।

उदार पुरुषों ने भी उनका साथ दिया। महिलाओं ने समाज की कुप्रथाओं के प्रति अपना आक्रोश जाहिर किया। पर्दा प्रथा, बाल विवाह, दहेज प्रथा, बेमेल विवाह आदि के प्रति एक जन आंदोलन ने जन्म लिया। शिक्षा के क्षेत्र में भी इसने यह सिद्ध कर दिया कि शिक्षा का अधिकार केवल पुरुषों को ही नहीं, बल्कि स्त्रियों को भी है। वे वैदिक काल की स्थिति को पुनः प्राप्त करना चाहती हैं (नायडू, 1997 : 28–29)। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व महात्मा गांधी, ज्योतिबा फूले, डॉ. भीमराव अंबेडकर, कर्वे, एनी बेसेन्ट आदि ने जोरदार आंदोलन चलाकर भारतीय स्त्रियों को घर की चारदीवारी के बाहर आने का आह्वान किया। गांधी जी के साथ स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए भारतीय स्त्रियां हजारों की संख्या में बाहर आईं और पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया। महिलाओं ने सामाजिक कुरीतियों जैसे बाल विवाह, दहेज प्रथा, बेमेल विवाह, विधवा विवाह पर रोक आदि के विरोध में आवाज उठाना प्रारंभ किया। विधवा जीवन जीने के लिए आज स्त्री तैयार नहीं, विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में उसने साहस के साथ आवाज उठाई। पति की बर्बरता, त्यागतीत तथा कठोर व्यवहार के विरुद्ध भी उसने आवाज उठाई। कोई भी स्त्री दुःखी वैवाहिक जीवन जीने की अपेक्षा विवाह विच्छेद पसंद करती है। वे आत्मनिर्भर रहना चाहती हैं। विच्छेद पसंद करती हैं, वे आत्मनिर्भर रहना चाहती हैं। महिलाओं के संवैधानिक तथा कानूनी अधिकारों को प्रसारित किया गया। भूतकाल और वर्तमान में समाज में महिलाओं की स्थिति का विश्लेषण किया गया। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में महिलाओं से संबंधित विभिन्न विषयों को एकत्र कर उनके प्रसार और प्रचार की व्यवस्था की गई, ताकि उन पर सामान्य रूप से विचार–विमर्श हो सके।

अंतर्राष्ट्रीय मामलों में मानव अधिकारों के अंतर्गत असमानता एवं प्रताड़ना के विरुद्ध आवाज उठाने का अधिकार प्रमुख रूप से प्रदान किया गया है। इस दिशा में महिला अपराधों पर प्रतिबंध लगाकर उन्हें समानता, विकास और शांति के साथ जीवनयापन करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। नैरोबी में अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन में 30 मई 1991 को आर्थिक एवं सामाजिक नियमों द्वारा '1991/118 निर्णायक प्रस्ताव' पारित किया गया, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं को सुरक्षा और बराबरी का दर्जा प्रदान करने हेतु अधिकार दिए गए।

इस संदर्भ में :

– धारा–1 के अंतर्गत महिलाओं को प्रताड़ना के विरुद्ध आवाज उठाने का अधिकार दिया गया है।

– धारा–2 के अंतर्गत समाज एवं परिवार में महिलाओं से संबंधित प्रताड़नाओं पर प्रतिबंधात्मक कदम उठाए गए हैं, जिनमें बालिका भ्रुण हत्या, दहेज प्रताड़ना, विवाहोपरांत बलात्कार, महिला शोषण एवं अन्य सामाजिक बुराईयां प्रमुख हैं (परमार, 2002 : 1)।

भारतीय स्वतंत्रता के पूर्व और पश्चात भारतीय महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से अनेक सामाजिक विधानों को पारित किया गया, जो इस प्रकार हैं :–

1. **सती प्रथा निषेध अधिनियम, 1829 :**

– यह कानून राजा राममोहन राय के प्रयासों से लॉर्ड विलियम बेंटिक द्वारा पारित किया गया।

– इस अधिनियम के तहत सती प्रथा (पति की मृत्यु के बाद पत्नी को जबरदस्ती जलाने की प्रथा) को अवैध और दंडनीय अपराध घोषित किया गया।

2. **हिंदू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1856 :**

– ईश्वर चंद्र विद्यासागर के प्रयासों से यह अधिनियम पारित हुआ।

– इसने हिंदू विधवाओं को पुनर्विवाह का कानूनी अधिकार प्रदान किया।

3. **बाल विवाह निरोधक अधिनियम, 1929 (शारदा अधिनियम) :**

– हर बिलास शारदा के प्रयासों से इसे लागू किया गया।

– इस अधिनियम के तहत विवाह की न्यूनतम आयु लड़कियों के लिए 14 वर्ष और लड़कों के लिए 18 वर्ष निर्धारित की गई, जिसे बाद में संशोधित कर लड़कियों के लिए 18 वर्ष और लड़कों के लिए 21 वर्ष कर दिया गया।

4. **दहेज निरोधक अधिनियम, 1961 (संशोधित 1976–91) :**

– दहेज लेना और देना अपराध घोषित किया गया।

– 1976 और 1991 के संशोधनों में इसे और कठोर बनाया गया, जिससे दहेज उत्पीड़न के मामलों में कड़ी सजा का प्रावधान किया गया।

5. **हिंदू विवाह तथा विवाह विच्छेद अधिनियम, 1956 :**

– हिंदू विवाह को संवैधानिक अधिकार दिया गया और महिलाओं को विवाह–विच्छेद (तलाक) का कानूनी अधिकार प्रदान किया गया।

6. **हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 :**

– इस अधिनियम के तहत महिलाओं को पैतृक संपत्ति में समान अधिकार दिया गया।

– यह कानून महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।

7. हिंदू दत्तक ग्रहण तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956 :

– महिलाओं को दत्तक ग्रहण (गोद लेने) और भरण–पोषण का कानूनी अधिकार दिया गया।

– महिलाओं को पति से गुजारा भत्ता लेने का अधिकार प्राप्त हुआ।

8. स्त्रियों तथा कन्याओं में अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम, 1956 :

– इस कानून का उद्देश्य महिलाओं और कन्याओं की तस्करी रोकना और उन्हें यौन शोषण से बचाना था।

9. गर्भपात अधिनियम, 1971 (मैडिकल टर्मिनेशन ऑफ प्रेग्नेंसी एक्ट) :

– यह अधिनियम महिलाओं को सुरक्षित गर्भपात का कानूनी अधिकार देता है।

– अस्वस्थता, बलात्कार या अन्य विशेष परिस्थितियों में गर्भपात की अनुमति प्रदान करता है।

10. भ्रूण हत्या अधिनियम, 1994 (पूर्व गर्भाधान और पूर्व जन्म निदान तकनीक अधिनियम) :

– लिंग आधारित भ्रुण हत्या (Female Feticide) को रोकने के लिए यह कानून बनाया गया।

– लिंग परीक्षण को अवैध घोषित किया गया ताकि बेटियों के जन्म को सुनिश्चित किया जा सके।

निष्कर्ष :-

इन सभी कानूनों ने महिलाओं की स्थिति को सुधारने और उन्हें समान अधिकार दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हालांकि, सामाजिक बदलाव धीरे–धीरे आया, लेकिन ये कानूनी सुधार महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक बड़ा कदम थे।

संदर्भ सूची :-

1. दुबे, एस. सी. (1990). भारतीय समाज. नई दिल्ली : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।
2. नायडू, रमेश. (1997). भारतीय नारी : अतीत और वर्तमान. वाराणसी : ज्ञान गंगा प्रकाशन।
3. लवानिया, आर. के. (1996). प्राचीन भारत में स्त्री की स्थिति. जयपुर : साहित्य सदन।
4. मनुस्मृति।
5. ऋग्वेद।
6. अथर्ववेद।
7. महाभारत।
8. याज्ञवल्क्य संहिता।
9. विष्णु संहिता।
10. पराशर संहिता।

डॉ. सविता यादव

4, चितावद रोड साजन नगर कैलाश दाल मिल के पास इन्दौर, पिन 452001

Mobile 9179262313, Savitaindore123@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 63-66

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

लैंगिक समानता और असमानता : 'युद्ध और शांति' के विशिष्ट संदर्भ में

आद्याशा पाढ़ी

शोधार्थी, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

सार :-

मानव समाज में भेद के कई तत्व विद्यमान हैं फिर वह नस्ल भेद हो, क्षेत्रीयता के आधार पर भेद को, भाषागत भेद, आर्थिक भेद अथवा जातिगत भेद। यह सभी भेद मानव निर्मित हैं। इसी प्रकार समाज में लैंगिक भेद भी व्याप्त है जो सामाजिक स्तरिकरण को जन्म देता है। किस प्रकार लिंग के आधार पर एक जाति के मन में गौरव की भावना जन्म लेती है तो वहीं दूसरी जाति को हीनता का सामना करना पड़ता है यह शोचनीय है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य इन्हीं भेड़ों को उजागर कर उनके कारणों का पड़ताल करना है ताकि समाज इनके प्रति अधिक सजक हो सके।

संकेत शब्द :- लैंगिक विभेदीकरण, युद्ध, लैंगिक असमानता, स्त्री एवं पुरुष, सामाजिक व्यवस्था पितृसत्ता।

जब हम 'वैज्ञानिक' शब्द का प्रयोग करते हैं तो अधिकांश व्यक्तियों के मन में एक पुरुष की छवि निर्मित होती है। वहीं, जब एक 'नर्स' की बात करते हैं तो मन में एक महिला की आकृति बनती है। यह एक विचित्र बात है, पर सत्य है। इसके केंद्र में वर्षों से समाज में अपना स्थान बनाई हुई लैंगिक असमानता है।

सृष्टि की निर्मिती के साथ ही विभिन्न प्राणियों का निर्माण हुआ। उनकी प्रजाति की संख्या में वृद्धि हेतु प्रकृति ने प्रजनन की प्रक्रिया का प्रावधान भी रखा। आदिम युग में 'समाज' की अवधारणा नहीं थी। व्यक्ति छोटे–छोटे अस्थायी टुकड़ों में खाद्य एवं आश्रय की चिंता में भटकते रहते थे। 'नर' और 'मादा' के रूप में उनके मध्य जो संबंध था, वह प्राकृतिक था, सामाजिक नहीं। इसीलिए, उनमें केवल शारीरिक भिन्नता व्याप्त थी जो स्वाभाविक भी थी। कबिलाई सभ्यता के आगमन के साथ 'नर' की पुरुष में तथा 'मादा' की स्त्री में परिणति हुई। स्त्री और पुरुष के मध्य लैंगिक भिन्नताएँ और अधिक स्पष्ट होती गईं। प्रसव के चलते जहां स्त्रियाँ घर से बांध गईं, पुरुष बाहर जाकर काम करने लगा। इसीलिए स्त्रियों के ज्ञानार्जन का मार्ग अवरुद्ध हो गया और वे बहार की जानकारी प्राप्त करने हेतु पुरुष पर निर्भर करने लगी। यह कृषि युग भी था। पुरुष खेतों में निरंतर लगा रहता था। पुरुष ने जमीन की उर्वरता बढ़ाने में अपने योगदान को प्रजनन – प्रक्रिया से जोड़ा। उसने यह दावा किया कि जिस प्रकार पुरुष जमीन में बीज डालता है जिससे पौधे उगते हैं, उसी प्रकार वह स्त्री में अपना वीर्य डालता है जिससे संतान की उत्पत्ति होती है। जब पुरुष के मन में 'मैं' का भाव जागृत हुआ, तब उसमें

निजी संपत्ति की अवधारणा का भी विकास हुआ। अपने निजी संपत्ति के संरक्षण हेतु पुरुष के लिए संतान ही एक मात्र विकल्प थी। जब उसमें पिता बनने का भाव जागृत हुआ, उसने स्त्री की योनि पर अपना अधिकार स्थापित करते हुए विवाह संस्था की योजना बनाई एवं विभिन्न धार्मिक कर्मकांडों द्वारा उनकी पुष्टि की। सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए उसने विवाह संस्था को नियमों में बांधा। समस्या तब उत्पन्न हुई जब स्त्रियों एवं पुरुषों के लिए समाज में, विशेषकर विवाह में दोहरे मानदंड निश्चित किए गए। इसके चलते विवाहितों के अतिरिक्त प्रेमी–प्रेमिकाओं के संबंध भी प्रभावित हुए। इससे लैंगिक भिन्नता लैंगिक विभेदीकरण में परिणत हुई। लैंगिक असमानता का आशय शारीरिक भिन्नता नहीं वरन् स्त्री–पुरुष के मध्य अधिकारों एवं संसाधनों के आसमान वितरण से है जिससे पुरुषों को स्त्रियों की तुलना में अपनी व्यक्तिगत प्रगति हेतु बेहतर अवसर मिलते हैं। इसको स्थिरता प्रदान करने का काम पितृसत्ता करती है।

जब सामान्य परिस्थितियों में स्त्री–पुरुष के मध्य असमानता व्याप्त रहती है, तब युद्ध जैसी परिस्थितियों में स्त्रियाँ और अधिक असुरक्षित हो जाती हैं। युद्ध पुरुषों के लिए अपना पौरुष सिद्ध करने का माध्यम रहे हैं। इसके लिए उन्हें बचपन से तैयार किया जाता है। उन्हें विभिन्न अस्त्र–शस्त्र चलाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसीलिए, जब एक पक्ष दूसरे पक्ष को हारता है तब पुरुषों का पौरुष आहत होता है। 'युद्ध और शांति' में जब नेपोलियन मॉस्को तक कूच करता है, रास्ते में कई जगह संग्राम की स्थिति पैदा होती है तथा दोनों पक्षों के सिपाही आपस में लड़ाई भी करते हैं, नेपोलियन की फ्रांसीसी सेना अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए तथा रूस की सेना अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए। कई सिपाही मृत्यु को प्राप्त करते हैं। कई के हाथ–पैर भी कट जाते हैं जिसके चलते उन्हें अपना जीवन पृथक प्रतीत होता है और मृत्यु अधिक प्रिय लगती है। युद्ध के समय संभ्रांत घरों से आने वाले पुरुषों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सेना में उच्च पद पर आसीन होकर सेना का नेतृत्व करें। इससे उन्हें ख्याति भी प्राप्त होती है और उनके जीवन को विशिष्ट खतरा भी नहीं रहता। इसीलिए, युद्ध और शांति' में पीरी बेजुहोव जब युद्ध में हिस्सा लेने से मन करता है, उसे हेय की दृष्टि से देखा जाता है। वहीं, स्त्रियों का मन सदैव युद्ध से आशंकित रहता है क्योंकि उनके पति ही उनके जीवन की धूरी होते हैं। वे अपने जीवन की सार्थकता अपने पति के स्वस्थ रहने में ढूंढती हैं।

इसीलिए, जब भी आंद्रेय बोलकोंस्की युद्ध लड़ने जाता था, उसकी पत्नी एलिजाबेथ दरी–दरी सी रहती थी। वह न किसी उत्सव के लिए सजती–सँवरती थी, न घर से ज्यादा बहार निकलती थी। इसके पीछे संभवतः यह कारण भी हो सकता है कि पुरुष जब घर से बहार निकलता है वह किसी के लिए जवाबदेही नहीं होता परंतु स्त्रियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने परिचित पुरुषों के संरक्षण में ही घर से बहार निकलें, उनके लिए ही सजें–सँवरें। जब मॉस्को पर नेपोलियन आक्रमण करता है, तब गाँव–देहात के किसान सफेद वस्त्र पहनकर मृत्यु का आह्वान करते हैं पर स्त्रियों तथा बच्चों को घरों के बेसमेंट में छिपा दिया जाता है ताकि वे किसी तरह लंबे समय तक सुरक्षित रहें। इसके पीछे यह तर्क भी हो सकता है कि यदि नेपोलियन का आक्रमण उस स्थान पर होता, तो उन्हें पहले से ही इसका आभास मिल जाता और वो या तो खुद जहर खाकर मार जाते अथवा किसी सुरंग से बाहर निकालने का रास्ता ढूंढते। यह इसीलिए है कि स्त्रियों की देह में पितृसत्ता ने आकर्षण डाला है। पुरुष उसे मनुष्य बाद में, पहले भोग की वस्तु के रूप में देखता है। स्त्रियों ने का भी युद्ध को नहीं चुना क्योंकि युद्ध के केंद्र में वर्चस्व, अधिकार प्राप्ति, लोभ एवं प्रतिस्पर्धा रहा है। घर के दायरे में सीमित

जीवन जीने के चलते स्त्रियों को संपत्ति संचित करने की काभी आवश्यकता महसूस नहीं हुई। फिर भी, युद्धों के दौरान सबसे ज्यादा भयावह स्थिति उनकी ही हुई जिसके केंद्र में उनका वस्तुकरण है।

'द फीमेल युनक' में जर्मेन ग्रियर ने बताया है कि किस प्रकार स्त्री के शरीर का एक–एक अंग सामान्य अंग न होकर पुरुष की विलास का केंद्र रहा। एक स्त्री का शरीर उसकी संपत्ति काभी रहा ही नहीं। इसके पीछे भी पितृसत्ता का षड्यन्त्र रहा है। पुरुष छोटे बाल रखते थे क्योंकि उन्हें युद्ध करना पड़ता था और युद्ध के दौरान छोटे बाल संभालना आसान है। वहीं, स्त्रियों का सौन्दर्य लंबे बालों से पूर्ण माना गया ताकि पुरुष जब चाहे अपना अधिकार जताने हेतु स्त्री को बालों से पकड़ सके। साथ ही, यदि बाल बढ़ाने हैं तो उनकी देख–बहाल भी करनी होगी। सौन्दर्य के प्रसाधनों में स्त्रियों को उलझाए रखने से उनका ध्यान अपने अधिकारों की ओर कम जाएगा।

इसीलिए, एक आदर्श समाज अपनी व्यवस्था बनाए रखने के लिए आदर्श स्त्री और आदर्श पुरुष के मानक निर्धारित करता है। एक स्त्री की गुणवत्ता उसके शारीरिक गठन एवं घरेलू कार्यों में दक्षता से परखी जाती है। इसके विपरीत, पुरुष अपने बाहुबल, सामाजिक स्थिति, आदि के आधार पर परखा जाता है। 'युद्ध और शांति' में भी ऐसे उद्धरण मौजूद हैं। जब एन्ना पावलोवना के बैठकखाबने में दावत चल रही होती है, युवतियों का परिचय देते हूर टॉलस्टॉय लिखते हैं :–

"मंडली में तरूणी राजकुमारी एलिजाबेथ बोलकोस्की भी उपस्थित थीं जो पीटर्सबर्ग की सबसे आकर्षक एवं मयविनी महिला समझी जाती थीं।"[1]

जब उपन्यास का पुरुष पात्र 'पीरी' सभा में उपस्थित होता है, उसका उल्लेख टॉलस्टॉय इस प्रकार करते हैं :– **"कुछ देर बाद एक तगड़े सुगठित शरीरवाले युवक ने ब्रिचेज पहने हुए मंडली में प्रवेश किया।"**[2]

समाज में जो प्रेम संबंध विवाह में परिणत होते हैं उन्हें ही समाज की स्वीकृति मिलती है, अन्यथा प्रेम संबंधों को हेय की दृष्टि से देखा जाता है। इसके मूल में प्रेम का सामाजिक व्यवस्था से अंतर्विरोध हो सकता है क्योंकि इससे सामाजिक व्यवस्था को खतरा होता है। जब स्त्री–पुरुष संबंधों का यह हाल है, तब समलैंगिक संबंधों में और अधिक जटिलता होना स्वाभाविक है। 'युद्ध और शांति' में प्रत्यक्ष रूप से इसकी बात नहीं की गई परंतु यत्र–तत्र उसके संकेत विद्यमान हैं। मैरिया बोलकोंस्की एक राजकुमारी है जो संभ्रांत परिवार से आती है। अपनी सखी जुली से न मिल पाने की उसकी तड़प उसके पत्र द्वारा अभिव्यक्ति पाती है। मैरिया तथा नताशा नामक पात्र के मध्य भी बीच–बीच में घनिष्ट मित्रता के संकेत मिलते हैं।

इसके अतिरिक्त आंद्रेय तथा एलिजाबेथ के दाम्पत्य जीवन द्वारा टॉलस्टॉय समाज में स्त्री–पुरुष संबंधों के रेशे–रेशे को उखाड़कर रख देते हैं। गर्भवती एलिजाबेथ के प्रति आंद्रेय किसी प्रकार के आकर्षण का अनुभव नहीं करता। इस समस्या का उल्लेख टॉलस्टॉय 'एन्ना केरेनीना' उपन्यास में भी करते हैं। किस प्रकार एलिजाबेथ की मृत्यु के पश्चात आंद्रेय से दूसरा विवाह करने के लिए कहा जाता है, यह प्रसंग पाठक वर्ग के समक्ष एक प्रश्न उपस्थित करता है कि यदि युद्ध में आंद्रेय मारा गया होता एवं एलिजाबेथ जीवित होती तो क्या उसे समान अधिकार मिलते?

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि मानव सभ्यता का विकास तो हुआ है और मनुष्य ने कई क्षेत्रों में ख्याति प्राप्त की है परंतु स्त्री–पुरुष संबंधों की जब बात आती है तो कहीं न कहीं पितृसत्ता ने अपनी बेड़ियों से कसकर मनुष्य को रोककर रखा है। इसीलिए, समाज में स्त्रियों का शोषण एक सामान्य बात

है। जब युद्ध जैसी विपरीत परिस्थितियाँ निर्मित होती हैं जहां सामान्य मानवाधिकारों की भी रक्षा नहीं हो पाती, ऐसे में स्त्रियों की उद्धार तो दूर, उनके जीवित रहने की कल्पना तक करना मुश्किल हो जाता है। आवश्यकता यह है कि उन्हें वस्तु तुल्य न मानकर सामान्य मनुष्य की तरह देखा जाए एवं उन्हें उनके सभी अधिकारों के प्रति सचेत कराया जाए। इसमें ही समस्त संसार की उन्नति निहित है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. पृष्ठ संख्या 08, 'युद्ध और शांति', लियो टॉलस्टॉय, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 1869
2. पृष्ठ संख्या 09, 'युद्ध और शांति', लियो टॉलस्टॉय, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 1869

सहायक ग्रंथ सूची :-

1. 'मेल, फीमेल, द ईवोलूशन आफ ह्यूमन सेक्स डिफ्रेन्सेस', गियरी डेविड, अमेरिकन साइकोलाजिकल एसोसिएशन, 1998
2. 'द रिलेशन आफ सेक्सेस', लियो टॉलस्टॉय, गुड प्रेस पब्लिकेशन, 2021
3. 'युद्ध और शांति', लियो टॉलस्टॉय, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 1869
4. 'द फीमेल युनक', जर्मेन ग्रियर, हारपर कॉलिन्स पब्लिकेशन्स, 1970
5. 'एन्ना केरेनीना' लियो टॉलस्टॉय, पेंगुइन बुक्स इंडिया, 1873
6. 'शृंखला की कड़ियाँ' महादेवी वर्मा, राजकमल प्रकाशन, 1942

मेल id : adyaneha1@gmail.com
Mobile 7008648002

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 67-70

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पुरूष (शिव) और स्त्री (शक्ति) एक दूसरे के पूरक

डॉ. विक्रम कुमार

सहायक प्राध्यापक सह हिंदी विभागाध्यक्ष, जयानंद कॉलेज, नेहरा, दरभंगा।

जब हम स्त्री और पुरुष कहते है तो इंसानों में ही दो अलग–अलग रूपों का बंटवारा भी कर देते हैं। जैविक स्तर पर स्त्री और पुरुष अलग–अलग हैं। दोनों का पहनावा–ओढावा, दोनों के रहन–सहन में अलगाव तो है ही दोनों दिखने में भी अलग–अलग हैं। दिल और दिमाग के स्तर पर भी उनमें कुछ अलगाव सा दिखता है। इन सब विविधताओं के बाबजूद स्त्री और पुरुष में बहुत कुछ समानताएं भी है। दोनों धरती पर साथ–साथ रहते हैं। दोनों साथ–साथ एक तरह की भाषा बोलते हैं। अपनी–अपनी संस्कृति और समाज में एक साथ काम करते हैं। मानव जाति के विकास के साथ ही स्त्री और पुरुष हमेशा साथ–साथ रहते आए हैं। सभी देश में यही स्थिति देखने को मिलता है। यहाँ तक की जीव जंतुओं में भी नर और मादा एक साथ ही रहते हुए दिखते हैं। शिव और शक्ति क्रमशः पुरुष और स्त्री का ही प्रतीक है। हालाँकि यह अध्यात्म जगत से जुड़ा हुआ है। परंतु समाज में भी स्त्री और पुरुष के रूप में विद्यमान है। शिव संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ 'कल्याणकारी' या 'शुभकारी' है। शिव दो शब्दों से बना है, जिसमें 'शि' का अर्थ शक्ति या उर्जा होता है। शिक्षार्थी हिंदी शब्दकोश के अनुसार शक्ति का अर्थ है – "ताकत, पराक्रम, बल, योग्यता, क्षमता, माया, प्रकृति।" इस तरह शिव का 'शि' शक्ति के अर्थ में है और शक्ति का अर्थ ताकत है। इस तरह शिव और शक्ति दोनों आपस में जुड़ा हुआ है।

वैसे अध्यात्म में शिव एक देवता का नाम है तो शक्ति उसकी अर्धांगनी पार्वती को माना गया है। शिव जो एक पुरुष और शक्ति अर्थात पार्वती जो एक स्त्री का प्रतीक हैं, इन दोनों के मिलने से ही आगे के जीवन का निर्माण होता है। इसी तरह का सम्बन्ध समाज में प्रत्येक नर–नारी या कहे पति–पत्नी में दिखाई देता है। वैसे भी प्रेम स्त्री और पुरुष के बीच ही होता है। हालाँकि कई पुरुष और स्त्री अकेले रहना भी पसंद करते हैं। इस सबके बाबजूद स्त्री और पुरुष के बीच के संबंध विद्वेषपूर्ण नहीं दिखता है।

शादी भी स्त्री और पुरुष के बीच ही होता है। हालाँकि कुछ किन्नर सम्बन्धी अपवाद भी समाज में देखने को मिलता है। परन्तु ऐसे अपवादों से जैविक कार्य का विकास निर्धारण नहीं होता है। स्त्री–पुरुष के बीच सदियों से प्रेम सम्बन्ध रहा है। यदि उन्हें प्रेम करने से रोकने की कोशिश भी किया गया, तो वें हरेक बाधा को तोड़कर प्रेम प्रसंग में आगे बढ़ें हैं। इसी कारण बिहारी ने अपने दोहे में स्त्री और पुरुष के बीच के ऐसे प्रेम को वर्णित किये हैं, जो भरी सभा में भी इशारों ही इशारों में बातें कर लेता है :–

"कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैननु हीं सब बात।।"

इसी तरह का प्रेम भाव भक्ति साहित्य में भी दिखाई देता है। कहीं भक्त स्त्री का रूप धारण कर भगवान् को पति मानकर पूजा करने लगते हैं तो कहीं भगवन को स्त्री मानकर उसमें फना हो जाते हैं। पद्मावत में भगवन के माध्यम से स्त्री पुरुष का प्रेम वर्णित हुआ है। इसी कारण रामचंद्र शुक्ल पद्मावत की भूमिका में लिखते हैं कि "यही प्रेम पुरुष तथा नारी के सन्दर्भों से जुड़कर ईश्वरीय प्रेम की छाया से साधक को अपनी प्राप्ति के प्रति तन्मयीभूत किये रहती है। इसी प्रेम संसक्ति को भक्ति से जोड़कर इन सूफी कवियों को अपनी तन्मयीभूत लयता की साधना को नारी–पुरुष प्रेम की संलग्नता से प्रतीक रूप में जोड़ करके काव्य कथाएँ लिखीं" इस तरह हिंदी साहित्य और एनी साहित्य में भी प्रेम के स्तर पर स्त्री और पुरुष एक दुसरे के पूरक तो दिखते ही हैं। साहित्य में स्त्री पुरुष का अलग अलग लिखे जाने के बाबजूद भी वो पूरक ही हैं। क्यूंकि स्त्रियां समाज में लेखन के माध्यम से अपना वजूद हरेक क्षेत्र में स्थापित करना चाहती है न कि पुरुषों से अलग होना चाहती है।

सबसे प्राचीन ग्रंथ वेदों में भी स्त्रीयों को समाज में पूर्ण सम्मान दिया गया है। इसी कारण कहा गया है कि **"या देवी सर्व भूतेषु मात्री रूपेण संस्थिता"** अर्थात जगत के सभी प्राणियों में माता के से भाव उत्पन्न हो जाए। पर माता के साथ पिता का भाव भी होना ही चाहिए। तभी संसार पूर्ण हो पायेगा, वर्ना अधुरा सा रह जायेगा। क्योंकि सृष्टि का निर्माण ही माता–पिता के संयोग से होता है। "शक्ति प्रभाव का ही एक प्रकार है।" जबकि समाज में स्त्री और पुरुष दोनों का ही प्रभाव होता है। कोई भी संस्था इन दोनों के बिना अधुरा सा है। विवाह संस्था के द्वारा स्त्री–पुरुष अर्थात शिव और शक्ति को जोड़ने का काम किया गया है। ताकि समाज निरंतर विकासशील रहे। अपने कविता संग्रह "वसुधैव कुटुम्बकम्" में विक्रम कुमार लिखते हैं कि हालाँकि "व्यावहारिक रूप में इंसानों के बीच कई तरह के विभेद दिखाई देता है। यह विभेद धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, वर्ग, क्षेत्र, शैक्षणिक आदि मानव जनित है। इन मानव जनित विभेदों को मानवों द्वार ही ठीक किया जा सकता है। .....भारत की विविधता को देखते हुए ही यहाँ के रिषी मुनियों ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की संकलपना किये होंगे।" इस तरह स्त्री और पुरुष के बीच के विभेदों को मिटाने का प्रयास भी अनादिकाल से चल रहा है और इसमें सफलता भी मिल रही है। इसी कारण 'अर्ध नारीश्वर' नामक लेख में रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं कि "नर–नारी पूर्ण रूप से सामान है एवं उनमें एक के गुण दूसरे के दोष नहीं हो सकते। अर्थात् नारी में नारियों के गुण आएं तो इससे उनकी मर्यादा हीन नहीं होती, बल्कि उनकी पूर्णता में वृद्धि ही होती है।" इस तरह स्त्री–पुरुष का एक दूसरे के नजदीक आने से ही उनमें एक–दूसरे के गुणों का आदान प्रदान हो सकेगा। चूँकि समाज में स्त्री–पुरुष एक साथ रहते हैं, इसलिए उनमें गुणों का प्रचार प्रसार होगा ही।

सभ्यता के विकास की शुरुआत से लेकर अब तक देखा जाए तो स्त्री–पुरुष जैविक रूप से अलग–अलग होकर भी साथ–साथ ही रह रहे हैं। हालाँकि कृषि युग के बाद स्त्रियां घर के कार्यों में उलझ गईं तो वहीँ पुरुष घर से बाहर के कार्यों को पूरा करने लगे। इससे दोनों के कार्यों में कुछ दूरियां आई, पर तब भी दोनों घर में साथ साथ ही रहते थें। इसी कारण दिनकर जी अपने लेख में आगे लिखते हैं कि "हम तो साथ साथ जन्में थे तथा धुप और चांदनी में वर्षा और आतप में साथ ही घूमते थे, बल्कि आहार–संचय को भी हम साथ ही निकलते थे और अगर कोई जानवर हम पर टूट पड़ता तो हम एक साथ उसका सामना भी करते थे।" ऐसे में देखा जाए तो प्रत्येक युग में स्त्री और पुरुष सुख दुःख को साथ रहकर ही भोगे हैं।

हालाँकि इतिहास की तरफ मुड़कर देखें तो स्त्री–पुरुष के कार्यों में कई तरह का अंतर भी दिखाई देता

है। समाज का अधिकांश पुरुष कभी स्त्रियों को घरों और पर्दों में ही रखना पसंद करते थे। अधिकांश स्त्रियों को पढने और लिखने तक का अधिकार नहीं दिया गया। इससे उनके अन्दर की बौद्धिक क्षमता का विकास नहीं हो पाया। पर वो घरों में अपनी सार्थक भूमिका निभाती रहीं। ऐसे में रविन्द्रनाथ टैगोर के मातानुसार "नारी की सार्थकता उसकी भंगिमा के मोहक और आकर्षक होने में है, केवल पृथ्वी की शोभा, केवल आलोक, केवल प्रेम की प्रतिमा बनने में है। कर्मकिर्ती वीर्यबल और शिक्षा दीक्षा लेकर वह क्या करेगी।" हालाँकि देश की आजादी में बंगाल की महिलाओं ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। चूँकि स्त्रियों को पुरुष अपने से अलग मान लिया है, इसी कारण उनके लिए अलग नियम भी बना दिया गया। मुख्यतः स्त्रीयों को भोग विलास की वस्तु समझा गया। जिसके कारण उनका श्रृंगारिक विकास और सौन्दर्य पर ध्यान तो गया, परन्तु मानसिक विकास पर ध्यान नहीं दिया गया। उनको पढ़ा लिखा कर पुरुष अपने समकक्ष नहीं रख पाया। परन्तु कालांतर में ऐसी सोंच का भी खंडन किया गया। अब स्त्रियों को पढ़ा लिखाकर पुरुष अपने समकक्ष का इन्सान समझते हैं। कम समय में ही स्त्रियों ने अपने बौद्धिकता का परचम समाज के प्रत्येक क्षेत्र में दिखाया भी है। इस तरह संसार में स्त्री–पुरुष कभी आगे कभी पीछे चलते हुए दिखाई देते हैं तो कभी साथ–साथ चलते दिखते हैं। इसलिए दिनकर जी लिखते हैं कि "अब नारी विकारों की खान और पुरुषों की बाधा नहीं मानी जाती है। वह प्रेरणा का उद्‌गम, शक्ति का स्रोत और पुरुषों की क्लान्ति की महौषधि हो उठी है।" स्त्रियों की शिक्षा दीक्षा से अंततः पूरे समाज को फायदा हुआ है। अर्थात स्त्रीयों का पुरुषों के बराबर बने रहने से ही समाज का संतुलन बना रहता है।

वैज्ञानिक आधार पर भी यदि देखा जाए तो स्त्री और पुरुष के शारीरिक बनावट में जितना अंतर है, उससे कई गुना ज्यादा समानताएं हैं। परन्तु लोगों का ध्यान समानता की अपेक्षा असमानताओं को देखने और दिखाने पर ज्यादा है। जबकि "नारी और नर एक ही द्रव्य की ढली दो प्रतिमाएं हैं..... आरम्भ में दोनों बहुत कुछ समान थे। आज भी प्रत्येक नारी में कहीं न कहीं कोई एक प्रच्छन्न नर और प्रत्येक नर में कहीं न कहीं एक क्षीण नारी छिपी हुई है।" इस तरह शिव में शक्ति और शक्ति में शिव हमेशा ही विद्यमान रहते हैं। ऐसा होने से ही समाज संतुलित भी है, अन्यथा दोनों आपस में कभी एक हो भी नहीं पाते। यदि एक नहीं होते तो शायद दोनों में आपसी वैर भाव होता। हमेशा उनमें शत्रुता का भाव रहता और इससे समाज में कभी शांति नहीं आ पाती।

आज स्त्री व पुरुष लगभग सभी क्षेत्रों में समानता के भाव से साथ रहकर साथ–साथ कार्य करते दिखाई देते हैं। कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं दिखता है, जहाँ स्त्री और पुरुष मिलकर काम नहीं करते हों। ऐसे में दिनकर जी का भी मानना है कि "जिसे भी पुरुष अपना कर्म क्षेत्र मानता है, वह नारी का भी कर्मक्षेत्र है। नर और नारी दोनों के जीवन उद्देश्य एक है।" दुनिया के सभी देश और सभी समाज में जीवन का उद्देश्य है सुख–शांति से जीवन को व्यतीत करना। ऐसे में इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आज भी और आगे भी सबको सकारात्मक प्रयास करते रहना चाहिए। साथ ही स्त्री–पुरुष के बीच के जो भी अवरोध जहाँ भी दिखें, उनको दूर करने की कोशिश करते रहना चाहिए। ऐसा नहीं होगा तो शिव और शक्ति दोनों एक दुसरे के पूरक न होकर विरोधी हो जायेगा। इससे अंतत समाज से सुख–शांति छिन जायेगा। इसलिए दिनकर जी अपने लेख में लिखते हैं कि "अर्धनारीश्वर केवल इसी बात का प्रतीक नहीं है कि नारी और नर जब तक अलग है तब तक दोनों अधूरे हैं बल्कि इस बात का भी कि पुरुष में नारीत्व की ज्योति जगे और यह कि प्रत्येक नारी में भी पौरुष का स्पष्ट आभास हो।"

इस तरह दोनों का विशेष गुण एक दुसरे के साथ रहने से ही प्रसारित हो पायेगा। अतः स्त्री ओर पुरुष

अर्थात शिव और शक्ति को एक साथ रहना ही पड़ेगा। इसी कारण शास्त्रों में कहा गया है कि "जहाँ स्त्रीयों की पूजा होती है वहां देवता रमते हैं और जहाँ इनका पूजन नहीं होता वहां सम्पूर्ण कर्म यज्ञादि निरर्थक है।" इस तरह जब यज्ञ जैसे महतवपूर्ण और प्रमुख कार्यों में भी स्त्रियों की भागीदारी को सुनिश्चित किया गया है तो सहज ही सोंचा जा सकता है कि बाकी के छोटे–मोटे कार्यों से स्त्रियों को अलग नहीं किया जा सकता है।

कुल मिलकर आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल सभी में स्त्री और पुरुष साथ–साथ ही रहते आएं हैं और आगे भी रहेंगे। शिव और शक्ति के मिलन से ही संसार जैविक रूप से आगे बढ़ता जा रहा है। यदि दोनों का साथ और संयोग न हो तो संसार ही नष्ट सा हो जायेगा। इसलिए शिव और शक्ति दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। इसी कारण ईश्वर के अर्धनारीश्वर रूप में एक–दूसरे को समाहित किया गया है। हिंदी साहित्य के इतिहास लेखन में भी देखें तो स्त्री और पुरुष अलग–अलग रचना तो कर रहें हैं पर रचना पूरे समाज के लिए ही होता है न कि किसी स्त्री विशेष के लिए। इस तरह साहित्यिक लेखन के आधार पर भी दोनों पूरक ही साबित होते हैं। अतः शिव और शक्ति अर्थात स्त्री और पुरुष एक दुसरे के पूरक ही हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. शिक्षार्थी हिंदी शब्दकोश, डॉ. हरदेव बाहरी, राजपाल एंड संस, संस्करण 1990, पृष्ठ 767
2. बिहारी रत्नाकर, श्री जगन्नाथदास रत्नाकर, विजय प्रकाशन मंदिर प्रा. ली. सी.के. 15/5 बुलानाला वाराणसी, 221001, संस्करण 2016, पृष्ठ 20
3. पद्मावत, संपादक– रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, प्रयागराज 211001, संस्करण 2022, पृष्ठ 7 कुछ विचार से।
4. सामाजिक परिवर्तन एवं भारतीय नारी, डॉ. मीरा मिश्र, महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह रिसर्च सोसाइटी, सोमनाथ निकेतन, सं 1997, पृष्ठ 01
5. समाज की प्रमुख उप व्यवस्थाएं, डॉ. संजीव महाजन, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, सं. 2008, पृष्ठ 46
6. वसुधैव कुटुम्बकम्, विक्रम कुमार, अक्षर पुब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर, एल–9ए, गली न 42, सादतपुर एक्स्टेंशन, दिल्ली 110090, संस्करण 2022, पृष्ठ 07 भूमिका से।
7. अर्धनारीश्वर, रामधारी सिंह दिनकर, दिगंत भाग 2, बिहार स्टेट टेक्स्टबुक पब्लिशिंग कार्पोरेशन लिमिटेड, संस्करण 2019, पृष्ठ 46
8. वही, पृष्ठ 47
9. वही, पृष्ठ 49
10. वही, पृष्ठ 49
11. वही, पृष्ठ 49
12. वही, पृष्ठ 50
13. वही, पृष्ठ 51
14. स्त्री शिक्षा एक समाजशास्त्रीय अध्ययन, सरोज चौधरी, स्वाभाविक प्रकाशन, रांची संस्करण 1986, पृष्ठ 01

मो. 9718909087, ई मेल paswanvikram85@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 71-74

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

संस्कृति और नैतिक मूल्यों का टकराव

सोहेल

अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, हैदराबाद।

सारांश :-

संस्कृति किसी एक समाज में पाई जाने वाली उच्चतम मूल्यों की वह चेतना है, जो सामाजिक प्रथाओं, व्यक्तियों की चित्तवृत्तियों, भावनाओं, मनोवृत्तियों, आचरण के साथ–साथ उसके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिए जाने में अभिव्यक्त होती है। संस्कृति जो पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती है। इसमें रीति रिवाज, परंपराएं, कला, भाषा, साहित्य और जीवन की प्रति दृष्टिकोण शामिल होते हैं। किसी समाज में संस्कृति और नैतिक मूल्यों का गहरा संबंध होता है। नैतिक मूल्य जो सही और गलत के बारे में हमारे विचारों को दर्शाते हैं, संस्कृति का एक अभिन्न अंग है। ये मूल्य हमें यह तय करने में मदद करते हैं, हमें कैसा व्यवहार करना चाहिए और समाज में कैसे रहना चाहिए। समय के साथ संस्कृति और नैतिक मूल्यों में बदलाव आ सकता है। तकनीकी विकास, वैश्वीकरण और सामाजिक आंदोलन के कारण नई विचारधाराएं और जीवन जीने के तरीके सामने आते हैं। जब ये नए विचार पारंपरिक संस्कृति और नैतिक मूल्यों से टकराते हैं तो टकराव की स्थिति पैदा होती है।

महत्वपूर्ण शब्द :- संस्कृति, मानवीय मूल्य, परंपरा, आधुनिकता, वैश्वीकरण, भारतीय समाज और साहित्य।

संस्कृति के अंतर्गत विभिन्न संस्कृतियों के केवल वही तत्व आम राष्ट्रीय संस्कृत के अंग माने जाते हैं जिन्हें ऐसी सद्भावना के साथ लोगों के सामूहिक मन से जोड़ा जा सके कि सभी वर्ग और समुदाय के लोग उन्हें अपना समझें। इन तत्वों के द्वारा निर्मित इस सामूहिक अवस्था को राष्ट्रीय संस्कृति कहा जाता है। भारत की राष्ट्रीय संस्कृति में भी ये तत्व निहित हैं–समान प्रकृति और समान दृष्टिकोण, जिससे भारतीय मस्तिष्क तथा विभिन्न आंदोलनों और संस्कृतियों का बौद्धिक प्रभाव बनता है, जिनका राष्ट्रीय मस्तिष्क के साथ सामंजस्य स्थापित हो गया है। इसमें वे संस्कृतियां शामिल है जो प्रागैतिहासिक काल में विद्यमान थी जिनका देश के साथ अस्थायी संबंध रहा, वे जो बाहर से आयीं और भारत में अपना घर बना लिया, तथा अंत में वे क्रांतिकारी बौद्धिक आंदोलन, जो आप से आप स्वयं, समय–समय पर इस देश में उत्पन्न हुए।

भारत की संस्कृति पर भारत में आने वाले लोगों का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। भारत मैं आक्रमण की दृष्टि से या व्यापार की दृष्टि से आने वाले लोगों के रीति रिवाज खान–पान भाषा वेशभूषा आदि कई चीजों को आत्मसात किया गया। वे लोग भारत में आकर बस गए और यहां की कला और संस्कृति मैं अपना योगदान दिया।

इस्लाम का जन्म स्थान अरब, बड़े भौगोलिक क्षेत्र का एक भाग है, जो लाल सागर, अरब सागर, फारस

की खाड़ी तथा भूमध्य सागर से लगभग गिरा हुआ है। कई वर्षों पूर्व दुनिया में इस क्षेत्र की केंद्रीय स्थिति रही और तीन महाद्वीपों का यह मिलन बिंदु था। यहां अनेक महान संस्कृतियां उभरी तथा अन्य जो एशिया, अफ्रीका या यूरोप में जन्मी एक दूसरे के संपर्क में आयीं। इस्लाम एकेश्वरवाद की धारणा को लेकर आगे बढ़ा। मुसलमान 712 ईस्वी में आक्रमणकारियों के रूप में भारत आए और सिंध तथा मुलतान में अपना शासन स्थापित कर लिया।

संभवतः दक्षिण भारत में पहले उन्होंने व्यापारी के रूप में आना प्रारंभ कर दिया था। आठवीं शताब्दी से उन्होंने सिंध से काठियावाड़ और गुजरात समुद्र तट पर बसना प्रारंभ कर दिया था। इस तरह मुस्लिम संस्कृति और हिंदू संस्कृति के बीच संपर्क एक प्रकार से आठवीं शताब्दी में प्रारंभ हो चुका था। चिकित्सा शास्त्र, गणित और ज्योतिष शास्त्र पर हिंदू विद्वानों की पुस्तकों का संदर्भ मिलता है, जो सिंध से अरब ले जायी गयी और मुसलमानों के बौद्धिक विकास में सहायक हुई। मुसलमानों के विचारों से, हिंदुओं के भक्ति आंदोलन को जो गति मिली उसका भी उल्लेख किया जाना जरूरी है। भारत में मुसलमानों का आगमन एक तरफ आक्रमणकारी और व्यापारी के रूप में हुआ तो दूसरी तरफ मुसलमानों का एक वर्ग जो सूफी संत कहलाता है, भारत में आया और उसने निर्गुण भक्ति भावना की ओर भारतीयों को आकर्षित किया। इस प्रकार दो अलग–अलग संस्कृतियों ने मिलकर एक साझी संस्कृति को निर्मित किया।

यदि हम वर्तमान समय में भारत की सांस्कृतिक स्थिति पर दृष्टिपात करें तो पाएंगे कि यद्यपि विविधता में एकता का प्राचीन स्वरूप सुरक्षित है किंतु एकता के आधारभूत रंग धूमिल पड़ गए और विविधता की सतही रंग अधिक उभर आये हैं। यदि हम सामान आधारभूत बातों पर और अधिक जोर देते हुए शीघ्र उस स्थिति को वापस लाने के लिए परिश्रम नहीं करते तो मूल स्वरूप का कोमल भावुकतापूर्ण संतुलन हमेशा के लिए समाप्त हो सकता है। जब हम सांस्कृतिक एकता में आने वाली रुकावटों की ओर अपना ध्यान एकत्रित करते हैं तो पाते हैं की सांस्कृतिक एकता में सबसे प्रमुख रुकावट है विविध भाषाएं। जब यह कहा जाता है कि भारत में चार विभिन्न भाषाओं के परिवार में 22 क्षेत्रीय भाषाएं और अनेक बोलियां है तब विदेशियों को मानना पड़ता है कि भारतीय एक नहीं बल्कि यूरोप के निवासियों की भांति कुछ सामान तत्व प्रदर्शित करते हुए विभिन्न संस्कृतियों के साथ लोगों का एक रंग बिरंगा समुदाय हैं।

समकालीन भारतीय समाज तीव्र संक्रमण के दौर से गुजर रहा है। परिवर्तन की आंधियां कई दिशाओं से आ रही है। एक और आधुनिक करण की अनिवार्यता है। दूसरी ओर परंपरा के आग्रह है पश्चिम की आर्थिक और तकनीकी सहायता अपने साथ वहां की जीवन शैली और नए मूल्य ला रही है, जिन्हें अपनी जड़ से कटे भारतीय आधुनिकता समझ कर बिना तर्क के अपना रहे हैं। इस अंध अनुकरण ने एक नई चिंता को जन्म दिया है अपनी अस्मिता और पहचान खोकर एक आकृतिहीन भीड़ की गुमनामी में खो जाने की। प्रगति और परंपरा के समन्वय के जो प्रयत्न हुए हैं उनके अधिकांश परिणाम हास्यास्पद रहे है, नाम भारती रह गए हैं ना हम सच्चे अर्थों में आधुनिक हुए हैं। स्थिति और भी उलझन भरी उस समय होती है, जब हमें यह अनुभव होता है की परंपरा के पास आज के समाज की सभी समस्याओं के हल नहीं है और न आधुनिकता के कार्यक्रम में ऐसी शक्ति है कि वह परंपरा की अवहेलना कर समाज को आगे बढ़ा सके।

नैतिक या मानव मूल्य :–

मनुष्य का कर्तव्य प्रवाहमय जीवन को सही दिशा में ले जाना है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति

में मानव मूल्य का व्यापक स्वरूप वेदों से लेकर वर्तमान साहित्य तक समाहित है। हिंदी साहित्य में मानव मूल्य के वर्गीकरण के अनेक आयाम उद्‌घाटित हुए। अनेक विचारकों ने अपने तर्कों द्वारा मूल्यों को निर्धारित किया है। परंतु या निर्विवाद सत्य है कि मानवीय मूल्य जीवन की सार्थकता के लिए अनिवार्य हैं। इसे किसी एक परिभाषा में आबद्ध नहीं किया जा सकता।

लारी नेल्सन के अनुसार "मूल्य वास्तव में अमूर्त होते हैं। अतः तत्संबंधी परिभाषा व विश्लेषण कठिन कार्य है।" मानव जीवन के वास्तविक स्वरूप, महत्व और अंतिम लक्ष्य के संबंध में इतिहास में मूलतरू दो परस्पर विरोधी विचारधाराए देखने को मिलती हैं। प्रथम विचारधारानुसार संसार नश्वर तथा क्षणभंगुर है, इसी कारण इन्हें असत्य मान गया है। 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या' के अनुसार असत्य के पीछे दौड़ना व्यर्थ है। इस भौतिक युग में काल्पनिक सत्य को छोड़कर परम सत्य की खोज में ही अपना संपूर्ण जीवन समर्पित करते हुए ईश्वर को प्राप्त करना ही हमारा ध्येय रहा है। इसलिए हमारे ऋषि–मुनियों द्वारा प्रणीत इतिहास, पुराण, उपनिषद का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि पूर्व काल में भारत सभी प्रकार से उन्नति में शीर्ष स्थान पर था।

लक्ष्मी नारायण सुधांशु के अनुसार "मानवजीवन एक गुण विषय है। अतः उसके संदर्भ में कोई भी निर्णय सर्वथा विवाद रहित नहीं माना जा सकता। किसी राष्ट्र अथवा देश की संस्कृति बोध से ही मानव–मूल्यों का पता लगाया जा सकता है।"

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार "संस्कृति विवेक बुद्धि का जीवन का भली प्रकार से जान लेने का नाम है।" इस प्रकार मूल्य का अर्थ मनुष्य के जीवन के साथ कई अर्थों में जुड़ा हुआ है। या अपने आप में छोटा सा परंतु व्यापक शब्द है जो जीवन से जुड़ी कई धारणाओं को समेटे हुए हैं जिसका भिन्न–भिन्न शब्दावलियों के आधार पर भिन्न–भिन्न भागों से जीवन के विविध क्षेत्रों में उपयोग होता है। वर्तमान समय में इस शब्द का प्रयोग आर्थिक संदर्भ में अधिक होता है। साहित्य में मूल्य शब्द की अपनी एक अलग और विशिष्ट पहचान है। यहां इससे जीवन के अन्य पहलू भी जुड़ जाते हैं। दो रामस्वरूप अरोड़ा के शब्दों में 'मूल्य का अर्थ केवल अर्थशास्त्री मूल्य नहीं बल्कि उनका वास्तविक अर्थ तो सामाजिक, साहित्यिक, एवं मानसिक आदि दृष्टि से एक व्यापक आदर्शात्मक अर्थवत्ता को अभिव्यक्त करना होता है। साहित्य में मूल्यों से आशय मान्यताओं, परंपरा, संस्कार–संस्कृति, अतीत – वर्तमान पुरातन व नई संस्कृति एवं विश्वास आदि अपने आप जुड़ जाते हैं।

मानव–मूल्यों का विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ जुड़ा हुआ है। जब से मनुष्य ने उचित, अनुचित पर विचार कर अपने जीवन को सब भी बनाने का प्रयास किया तभी से मूल्य हमारे जीवन का महत्वपूर्ण अंग बनते चले गए। मूल्य मानव को केंद्र में रखकर चलते हैं। और इन मूल्यों का आधार होती है मानवता जो देशकाल, धर्म, समाज आदि के भेद से स्वतंत्रता होती है। मानवता हम उसे भाव को कहते हैं जिसमें मानव के मंगल की भावना छिपी हुई हैं। मानवता मानव मन का वह भाव है जिसके द्वारा स्वयं से पर और आत्मा से सर्वात्म तक सबके हित में अपनी शक्तियों का प्रयोग कहा है। मानवता कोई मूर्त वस्तु नहीं वह अमूर्त है। मानव अपने जीवन में कुछ भी कार्य करता है उन सब के पीछे मानवता उद्देश्य रूप में निहित रहती है। यही समस्त मानवीय मूल्यों का आधार है। यह मानव एवं मूल्यों के बीच अदृश्य कड़ी के रूप में कार्यरत रहती है। जब जब मनुष्य में किसी अन्य मनुष्य के प्रति मंगल या हित की भावना जागृत होती है तो यह अवस्था मानवता कहलाती है और बाद में जब वह अपने उद्देश्य को व्यवहार में लाता है तो वह मूल्य कहलाते हैं।

निष्कर्ष : उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार से भौतिक वस्तुओं का महत्व बढ़ गया है, जिससे नैतिक मूल्यों जैसे सादगी, संतोष और त्याग का महत्व कम हो रहा है। पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के कारण, कुछ लोग पारंपरिक मूल्यों को छोड़कर आधुनिक जीवनशैली अपना रहे हैं। इससे पारिवारिक मूल्यों और सामाजिक संरचना में बदलाव आ रहा है। व्यक्तिवाद के बढ़ने से लोग अपने व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रता को अधिक महत्व दे रहे हैं, जिससे सामाजिक जिम्मेदारी और सामूहिक मूल्यों को चुनौती मिल रही है। संस्कृति और नैतिक मूल्यों के टकराव के कई परिणाम हो सकते हैं। इससे समाज में तनाव और विभाजन पैदा हो सकता है। लोगों के बीच मूल्यों को लेकर मतभेद बढ़ सकते हैं, जिससे सामाजिक सद्भाव और एकता को खतरा पैदा हो सकता है। इसके अलावा, टकराव के कारण सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण हो सकता है और नई पीढ़ी अपने मूल्यों से दूर हो सकती है। संस्कृति और नैतिक मूल्यों के टकराव को कम करने के लिए, हमें कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाने होंगे शिक्षा के माध्यम से युवाओं को अपनी संस्कृति और नैतिक मूल्यों के बारे में जागरूक करना चाहिए। उन्हें यह समझाना चाहिए कि इन मूल्यों का पालन करना क्यों महत्वपूर्ण है। हमें आधुनिक विचारों और मूल्यों को अपनाने के साथ–साथ अपनी सांस्कृतिक मूल्यों को भी संरक्षित करना चाहिए। हमें अपने मूल्यों को त्यागने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उन्हें आधुनिक संदर्भ में समझने और अपनाने की आवश्यकता है।

सहायक ग्रंथ :–

1. भारत की राष्ट्रीय संस्कृति – एस आबिद हुसैन अनुवाद दुर्गा शंकर शुक्ल (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नई दिल्ली)
2. समय और संस्कृति – श्यामा चरण दुबे (वाणी प्रकाशन नई दिल्ली)
3. मानव मूल्य और हिंदी साहित्य– संपादक प्रोफेसर पूरनचंद टंडन तथा सह–संपादक डॉ. विनीत कुमारी (नव उन्नयन साहित्यिक सोसाइटी नई दिल्ली)

फोन नंबर – 7697468585

ईमेल आईडी– sohelmansuri9776@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 75-78

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समाज में लैंगिक असमानता को दूर करने में शिक्षा की भूमिका

नीलम पाटीदार

सहायक प्राध्यापक (इतिहास), मां नर्मदा शासकीय महाविद्यालय, सोंडवा, जिला अलीराजपुर (म.प्र.)

शोध-सार :-

लैंगिक असमानता अर्थात् महिला और पुरुषों के बीच भेदभाव को दूर करने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है। शिक्षा व्यक्ति के मानसिक और वैचारिक विकास को बढ़ावा देती है तथा भावनात्मक विकास को सुदृढ़ करती है। जब व्यक्ति का वैचारिक और बौद्धिक विकास होता है तो वह महिला और पुरुष के बीच समानता के विचार को स्वीकार करने लगता है। शिक्षा से आत्मनिर्भरता बढ़ती है और स्वावलंबन आता है। जब महिलाएं शिक्षित होंगी तो वे आत्मनिर्भर बनेंगी। जब वे आर्थिक रूप से सक्षम होंगी तो समाज में उनका महत्व बढ़ेगा तथा लैंगिक असमानता दूर होगी।

शब्द कुंजी :- लैंगिक असमानता, शिक्षा, मानसिक विकास, रोजगार, आत्मनिर्भरता।

भूमिका :-

लैंगिक समानता एक ऐसा सामाजिक सिद्धांत है, जो महिलाओं और पुरुषों को समान अधिकार, अवसर और स्वतंत्रता देने की वकालत करता है। यह किसी भी समाज के विकास और समृद्धि के लिए आवश्यक है। दुर्भाग्यवश, प्राचीन समय से लेकर आज तक महिलाओं को शिक्षा, रोजगार, राजनीति और सामाजिक जीवन में पुरुषों की तुलना में कम अवसर मिले हैं। आज आधुनिक जीवन शैली को अपनाने के बाद भी भारतीय समाज लैंगिक समानता के क्षेत्र में बहुत पिछड़ा हुआ है। शिक्षा इस असमानता को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, क्योंकि यह न केवल लोगों की सोच और दृष्टिकोण को बदलती है, बल्कि महिलाओं को आत्मनिर्भर और सशक्त भी बनाती है।

लैंगिक समानता का अर्थ और आवश्यकता :-

लैंगिक समानता का अर्थ है कि समाज में महिलाओं और पुरुषों को समान अधिकार, अवसर और सम्मान मिलना चाहिए। यह केवल एक नैतिक आवश्यकता ही नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए भी महत्वपूर्ण है। जब महिलाओं को शिक्षा, रोजगार और नेतृत्व में समान अवसर मिलते हैं, तो वे समाज के विकास में उतना ही योगदान देती हैं जितना कि पुरुष। इसके अतिरिक्त, लैंगिक समानता महिलाओं को सशक्त बनाती है, जिससे वे अपनी व्यक्तिगत, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों को सुधार सकती हैं।

लैंगिक असमानता के कारण :-

पितृसत्तात्मक सोच – लैंगिक असमानता का एक कारण सदियों पुरानी पितृसत्तात्मक सोच है, जिसमें महिलाओं को घर तक सीमित रखने और शिक्षा से वंचित करने की प्रवृत्ति रही है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री सिल्विया वाल्बे के अनुसार पितृसत्ता सामाजिक संरचना की ऐसी प्रक्रिया और व्यवस्था है जिसमें आदमी औरत पर अपना प्रभुत्व जमाता है उसका दमन और शोषण करता है। इसके अलावा, सामाजिक रीति–रिवाज, धार्मिक मान्यताएँ और आर्थिक निर्भरता भी महिलाओं के पिछड़ेपन का कारण बनी हैं।

गरीबी एवं अशिक्षा – महिलाओं का समाज में निचला स्तर होने का एक कारण गरीबी और अशिक्षा है। गरीबी और शिक्षा की कमी के कारण बहुत सी महिलाएं कम वेतन पर घरेलू कार्य करने, संगठित वेश्यावृत्ति का कार्य करने या प्रवासी मजदूर के रूप में कार्य करने के लिए मजबूर होती है। लड़कियों की शिक्षा को लड़कों की तुलना में कम महत्व दिया जाता है।

भूमि पर अधिकार न मिलना – महिलाएं खेती से जुड़े 40 प्रतिशत कार्य करती है लेकिन भारत में केवल 9 प्रतिशत भूमि पर उनका नियंत्रण है। भारत में कानून महिलाओं को पुरुषों के बराबर संपत्ति के अधिकार प्रदान करता है परन्तु हमारी सामाजिक व्यवस्था की बनावट ऐसी है कि महिलाएं पिता की संपत्ति में आज भी अधिकार प्राप्त नहीं कर पाती है. यदि कोई महिला इसकी मांग करती है तो उन्हें परिवार के बहिष्कार का भी सामना करना पड़ता है।

लैंगिक असमानता के दुष्प्रभाव :-

आर्थिक विकास में बाधा : आर्थिक क्षेत्र में कार्यरत महिला और पुरुष के पारिश्रमिक में अंतर है। कई जगह महिलाओं को पुरुषों के सापेक्ष कम वेतन दिया जाता है। इतना ही नहीं रोजगार के अवसरों में भी पुरुषों को प्राथमिकता दी जाती है। जब समाज का आधा भाग (महिलाएँ) शिक्षा और रोजगार से वंचित रह जाती है, तो राष्ट्र की उत्पादकता और आर्थिक विकास प्रभावित होते हैं। हम सभी मानव संसाधन है जो परिवार, समाज और देश के लिए ऊर्जा का काम करते हैं। यदि महिलाओं को दरकिनार कर देंगे तो देश की प्रगति धीमी हो जाएगी। इसलिए जरूरी है कि हम स्त्रियों को मानवीय संसाधन माने। महिलाओं को शिक्षा तथा रोजगार के अवसर प्रदान करें तथा आगे बढ़ने का अवसर दें।

सामाजिक कुरीतियों की निरंतरता : बाल विवाह, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा और महिलाओं के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार जैसी समस्याएँ बनी रहती हैं। भारत में महिलाओं के लिए बहुत से संवैधानिक उपाय बनाए गए हैं पर जमीनी हकीकत इससे बहुत अलग है। आज भी देश में महिलाओं के साथ दोयम दर्जे के नागरिक की तरह व्यवहार किया जाता है। उनके साथ अत्याचार खतरनाक स्तर पर है। दहेज प्रथा आज भी प्रचलन में है। कन्या भ्रूण हत्या आज भी होती है।

राजनीतिक और प्रशासनिक असंतुलन : राजनीतिक क्षेत्र में सभी राजनीतिक दल लोकतांत्रिक होते हुए समानता का दावा करते हैं। परंतु ना तो वह चुनाव में महिलाओं को प्रत्याशी के रूप में टिकट देते हैं और न ही महत्वपूर्ण पदों पर उनकी नियुक्ति करते हैं। जब महिलाओं को नेतृत्व के अवसर नहीं मिलते, तो नीतियों और कानूनों में उनकी आवाज कमजोर होती है।

परिवार और स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव : भारतीय समाज में महिलाओं को घरेलू कार्य के अनुकूल

ही माना गया है। घर में महिलाओं का मुख्य कार्य भोजन की व्यवस्था करना और बच्चों के लालन–पालन तक ही सीमित है। अक्सर ऐसा देखा गया है कि घर में लिए जाने वाले निर्णय में भी महिलाओं की कोई भूमिका नहीं रहती है। अशिक्षित महिलाएँ अपने और अपने बच्चों के स्वास्थ्य के प्रति जागरूक नहीं होतीं, जिससे परिवार का संपूर्ण विकास प्रभावित होता है।

लैंगिक असमानता को दूर करने में शिक्षा की भूमिका :–

समाज के किसी भी क्षेत्र की बुराई को दूर करने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा से उस समस्या के बारे में समझ और जागरूकता पैदा होती है। शिक्षा, लैंगिक समानता को बढ़ावा देने का सबसे प्रभावी माध्यम है। यह न केवल महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाती है, बल्कि पुरुषों में भी समानता और न्याय की भावना विकसित करती है। शिक्षा के माध्यम से लैंगिक समानता को बढ़ावा मिलता है इसे निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है :–

1. **मानसिकता और दृष्टिकोण में बदलाव :**

शिक्षा लोगों को यह समझने में मदद करती है कि लैंगिक भेदभाव केवल महिलाओं के लिए ही नहीं, बल्कि संपूर्ण समाज के लिए नुकसानदायक है। जब पुरुषों और महिलाओं को समान शिक्षा मिलती है, तो वे पारंपरिक सामाजिक मान्यताओं को चुनौती दे सकते हैं और अधिक समावेशी समाज का निर्माण कर सकते हैं।

2. **महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण :**

शिक्षा महिलाओं को कुशल और आत्मनिर्भर बनाती है। शिक्षित महिलाएँ न केवल अच्छी नौकरियाँ प्राप्त कर सकती हैं, बल्कि अपने व्यवसाय भी शुरू कर सकती हैं। इससे वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनती हैं और अपने अधिकारों के लिए आवाज उठा सकती हैं।

3. **सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन :**

जब लड़कियाँ शिक्षित होती हैं, तो वे बाल विवाह, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा और लैंगिक भेदभाव जैसी सामाजिक बुराइयों के खिलाफ खड़ी हो सकती हैं। इसके अलावा, शिक्षित पुरुष भी इन प्रथाओं को गलत समझते हैं और उन्हें बढ़ावा नहीं देते।

4. **निर्णय लेने की क्षमता में वृद्धि :**

शिक्षा महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाती है, जिससे वे अपने जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं ले सकती हैं। यह उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करता है और उन्हें घरेलू, सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करता है।

5. **स्वास्थ्य और परिवार कल्याण में सुधार :**

शिक्षित महिलाएँ अपने स्वास्थ्य, पोषण और परिवार नियोजन के प्रति अधिक जागरूक होती हैं। वे अपने बच्चों की शिक्षा और भविष्य को लेकर अधिक सतर्क रहती हैं, जिससे संपूर्ण परिवार और समाज का विकास होता है।

6. **राजनीतिक और सामाजिक नेतृत्व में भागीदारी :**

शिक्षा महिलाओं को राजनीतिक और सामाजिक नेतृत्व के लिए प्रेरित करती है। जब महिलाएँ शिक्षित होती हैं, तो वे अपने अधिकारों के लिए लड़ सकती हैं और समाज तथा सरकार में नेतृत्व की भूमिका निभा

सकती हैं।

लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा में सुधार के निम्नलिखित उपाय किए जा सकते है –

1. लड़कियों की शिक्षा को अनिवार्य बनाना :

सरकार को सुनिश्चित करना चाहिए कि सभी लड़कियों को न केवल प्राथमिक बल्कि उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिले।

2. आर्थिक सहायता और छात्रवृत्ति योजनाएँ :

गरीब परिवारों की लड़कियों को शिक्षा से वंचित होने से बचाने के लिए विशेष छात्रवृत्ति और आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।

3. सुरक्षित और अनुकूल शिक्षा का माहौल :

स्कूलों में लड़कियों के लिए सुरक्षित वातावरण, स्वच्छता सुविधाएँ और लैंगिक संवेदनशील पाठ्यक्रम विकसित किए जाने चाहिए।

4. महिला शिक्षकों की संख्या बढ़ाना :

अधिक महिला शिक्षकों की नियुक्ति से लड़कियों को प्रेरणा मिलेगी और वे शिक्षा के प्रति अधिक रुचि लेंगी।

5. लैंगिक समानता पर जागरूकता अभियान :

शिक्षा प्रणाली में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए विशेष पाठ्यक्रम और कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए।

निष्कर्ष :–

लैंगिक समानता केवल एक सामाजिक आदर्श नहीं, बल्कि एक आवश्यक सिद्धांत है जो समाज की प्रगति और विकास के लिए जरूरी है। शिक्षा इस असमानता को समाप्त करने का सबसे प्रभावी माध्यम है, क्योंकि यह न केवल महिलाओं को सशक्त बनाती है, बल्कि पुरुषों में भी समानता और न्याय की भावना विकसित करती है। सरकार, समाज और प्रत्येक व्यक्ति को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि लड़कियाँ और लड़के समान रूप से शिक्षा प्राप्त करें, ताकि वे अपने जीवन में स्वतंत्र रूप से निर्णय ले सकें और समाज में समान भागीदारी कर सकें। इसलिए, यह कहना गलत नहीं होगा कि 'यदि हम समाज में वास्तविक समानता चाहते हैं, तो हमें शिक्षा को सबसे बड़ा हथियार बनाना होगा।'

सन्दर्भ :–

1. https://venture2impact.org/education&as&a&tool&to&combat&gender&inequality/
2. https://www.unocha.org/gender&equality&and&empowerment&women&and&girls
3. शिक्षा एवं साहित्य में लैंगिक असमानता और महिला अधिकार, डॉ. अमित कुमार दुबे, हंस प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022
4. Femal's education, gender equality and economic empowerment in South Asia, Sunil Chaudhary, Global Vision Publication, 2011

मो. 9644143281

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 79-83

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहेबपुरार बरषुण : युवक–युवती के अंतर्मन की अनूठी प्रेम–कहानी

डॉ. सिराजुल हक

हिंदी विभाग, सहायक अध्यापक, बंगाईगाँव कॉलेज, बंगाईगाँव (असम)

असमिया लेखिका अनुराधा शर्मा पूजारी द्वारा रचित साहेबपुरार बरषुण एक बहुचर्चित उपन्यास है। साहेबपुरा बिहार की एक जगह का नाम है और बरषुण का मतलब बारिश, अर्थात् साहेबपुर की बारिश। इस उपन्यास में रहस्यात्मक दृष्टि से दो तरह की बारिश की बात कही गई है। एक तरह की बारिश वह है जिसकी वजह से बिहार के साहेबपुर की आम जनता को काफी प्राकृतिक दुर्दशा का सामना करना पड़ा, फलस्वरूप लोगों को आर्थिक संकटों में गुजरना पड़ा। फिर दूसरी बारिश जो उपन्यास के नायक–नायिकाओं के अंतर्मन की पीड़ा तथा उनकी हृदयगत दर्दनाक स्थिति का वर्णन किया है। साथ ही उपन्यास में प्रेम के संयोग–वियोग की विविध समस्याओं का जिक्र मिलता है।

अनुराधा शर्मा पूजारी का एक रोमांटिक तथा सामाजिक उपन्यास साहेबपुरार बरषुण है। लेखिका ने इस उपन्यास का आरंभ रेल में सफर करनेवाले एक जोड़ी कपल वर्षा और प्रांतिक का कथोपकथन से किया है, जो इस प्रकार है–"...वर्षा नोशोवा?... टोपनि धरा नाइ।"[1] (...वर्षा सोना नहीं?...नींद नहीं आई।) उस रेल में सभी यात्री मस्त नींद में मशगुल थे और दोनों कपल जो अलग–अलग ध्यान में खोए हुए थे, जो कि प्रांतिक किताब में और वर्षा बाहरी दुनिया की सोच में पड़ी हुई थी। वर्षा किलकारी मारते हुए कही–"एखन टोपनिर रेल गाड़ीत सारे आछे प्रेमिक युगल। तेओलोकर एजने किताप पढ़िले एजने बाहिरलै चाइ जाय, एजने हाहिले, एजने गोमोठा मुखेरे बहि थाके–––आचरित नहय!"[2] प्रांतिक यू. एस तथा विदेश में पढ़ा एक शिक्षित युवक है, जो विदेशी संस्कृति से प्रभावित था। वह वर्षा की तारीफ करते हुए कहा है कि–"तुमि नाजाना किमान धुनिया लागिछे तोमाक।.....यू लुकस् लाइक ए नाइट कुइन, ओइथ ट्रेम्बलिंग लिपस् एण्ड ब्रेष्ट, प्लीस बुताम खुलि राखा....ताइक चेपि धरि उठत सजोरे चुंबन करिले।"[3] (तुम नहीं जानती हो कि तुम्हें कितनी अच्छी लग रही है।.....यू लुकस् लाइक ए नाइट कुइन, ओइथ ट्रेम्बलिंग लिपस् एण्ड ब्रेष्ट, प्लीस बटन खोलके रखो....उसे दबाते हुए सशक्ति से ओठ में चुंबन किया) तब वर्षा को गुस्सा आया और कहा–"ऐखन इंडिया, इंडिया तोमार वष्टन नहय।" (यह भारत है, भारत तुम्हारा पाश्चात्य देश नहीं है) यहाँ तक दोनों शांत नहीं हुए, 16 दिन के बाद दोनों की शादी और उसके बाद दोनों पति–पत्नी, जीवन की तमाम बातें करते रहें। इतने में रेल बिहार के साहेबपुरा के एक क्रॉसिंग में मालगाड़ी के साथ दुर्घटना घटी। इतने में एक व्यक्ति पानी–पानी कर हर डब्बा में छान–मारता रहा और कहा–"Please

open the door, we need little water…."[4] किंतु कोई दरवाजा नहीं खोल रहा था। फलतः वह व्यक्ति परेशान होकर वापस चला गया। तब वर्षा उस गार्ड वाले व्यक्ति को कहती है–"मानुहजने अलप पानी बिचारिछे, ऐ ट्रेइनखन सकलोरे, आपोनार निजा सपत्ति नेकि?" (उस इंसान ने थोड़ा पानी माँगा, यह ट्रेन सब की, क्या यह आपकी निजी संपत्ति है?) आमतौर पर लड़कियों का ह्रदय कोमल होता है, जो वर्षा में देखने को मिलता है। वर्षा ने खरीदा हुआ पानी की बोतल लेकर उस व्यक्ति को खोजती–फिरती रही, आधे घण्टे के बाद उसे मिला और पानी की बोतल देते हुए कहा–"अथनि पानी दिब नोवारिलो, आचलते मानुहजने दुवारखन बन्द करि दिले।"[5] (उस वक्त पानी नहीं दे पायी, असल में उस व्यक्ति ने दरवाजा बंद कर दिया था।)

पानी के लिए छान मारता रहा शेखर हुसैन और वर्षा के बीच जान–पहचान हुई। फिर वर्षा शेखर को साथ लेकर अपने डब्बा में आई और प्रांतिक के साथ परिचय करवाई। शेखर से हाय, हैलो होने के बाद शेखर ने कहा लाइन क्लीयर होने में देर होगी, यदि "बेया नापाय आपोनालोक दुजन मोर हैते जाब पारे।"[6] (बुरा न माने तो आपलोग दोनों मेरे साथ आ सकते हैं।) यह सुनकर वर्षा खुशी प्रकट करते हुए कही–"बाः बढिया। मोर आपोनालोकर कैंपटो चोवार लोभ हैछिलै.....जाना प्रांतिक, एओलोके चाओतालर.....असमर गार्डेनबोरतो घुरिछे–किमान जे काम करिछे....साहेबपुरात एटा कैंप आछे एओलोकर...."[7] (वाह! बढ़िया। मुझे आपका कैंप देखने की इच्छा हुई. ...तुम्हें पता है प्रांतिक, वे चाउताल....असम के टी गार्डेनों में घूम चुके हैं–––बहुत काम किया है... साहेबपुरा में उनका एक कैंप है।) इतने समय प्रांतिक चुप–चाप रहा और हठात् कहा कि–"नाजाउ, इयातै कमफरटेबुल मइ–––––वर्षा जाय जदि लइ जाउक।"[8] (मुझे नहीं जाना है, मैं यहाँ कंफरटेबल हूँ–––यदि वर्षा जाना चाहते हैं तो ले जा सकते हैं।) शेखर ने कहा–"आपोनालोके किबा डिसिशन लय जदि कब। मइ 15 मिनिटमान आरु आछो। किंतु देरी करिब नोवारो।"[9] (आप लोग यदि कोई डिसिशन ले रहे हैं तो मुझे कहिएगा। मैं 15 मिनट और हूँ।) किंतु ज्यादा देर नहीं रह पाऊँगा। वर्षा प्रांतिक से पूछा–"तोमार कि हैछे?.....तार आगते तुमि कोवा, तोमार कि हैछे! एटा अचिन मानुहक पानीर बटल दिबलै दौरी गला, आहोते लगत लै आहिला, तार पाछत कला तुमि तेओर कैंप चाबलै जोवा–जिजनी छोवालीये कालि निशाटो उदास हइ बाहिरलै चाइ गैछिला, आनकि मोर ओपस्थितिटोओ मूल्यहीन आछिल, ऐ मानुहजनक पाइ आत्महारा हला। ट्रेइनखन एक्सिडेण्ट हइ जेन तोमाक नतुन जीवन दिले–––मइ किय आचरित नहम!....प्रांतिक तुमि मोर चरित्रर ओपरत सन्देह करिछा नेकि?....मुठेइ नाइ करा..... कि इमान प्रयोजन हल जे एघण्टा समय तुमि घुरि फुरिला तेओर हैते! एइबोरे मोक डिष्टार्ब करिछे।"[10] (भावार्थ– हठात् तुम्हारा क्या हुआ? तब प्रांतिक ने लंबी कहानी सुनवाई कि एक अनजान व्यक्ति के लिए पानी लेकर जाना, फिर उसको साथ लेकर आना, दोबारा उसके कैंप में जाने के लिए इच्छा प्रकट करना, उसके साथ एक घण्टे बिताना, यह सब आश्चर्य होने का विषय है, जो मुझे परेशान करता है।) इसमें वर्षा ने कहा कि तुम मेरे चरित्र पर शक कर रहे हो। और कहती है कि–"तुमि इमान निम्नखापर चिंता करिबा बुलि विश्वास करा नाछिलो।"[11] (तुम्हारी सोच इतनी गिरी हुई है, जो कभी विश्वास नहीं किया।) इतनी सारी बातें या घटना होने के बावजूद वर्षा कहती है–"मइ कि अन्याय अनुरोध करिछो तोमाक?.....कि बेया हुसैनहतर कैंपटो चाइ अहाटो! आचलते तुमि बर ईर्षाकातर मानुह.....प्रांतिक हुइ थकार परा गिरिसकै ओठि वर्षालै चाले।.....प्रांतिके हातर मुठिटो खुलिले एबार बन्द करिले। ओठ दुखन सामान्य कपिछे। आरु चकु दुटा...."[12] (मैं तुम्हारे साथ क्या अन्याय किया? हुसैन का कैंप देखने में क्या बुरा है! असल में तुम बहुत अहंकारी आदमी हो.....प्रांतिक सोया हुआ था,

तुरंत उठकर वर्षा की ओर देखा.....उसने एक बार हाथ की मुठ्टी खुला और एक बार गाँठ बंध कर लिया। दोनों ओठ कपने लगा और दोनों आँखें.....) इसमें प्रांतिक अपना गुस्सा आंगिक भाषा से प्रकट किया।

यह परिस्थिति देखकर वर्षा रोने लगी और तत्पश्चात वर्षा अपना सूटकेस बैग लेकर निकल पड़ी। खुद सोचने लगी कि–"जीवनर मधुरतम शब्द बन्द्धुत्व, विश्वास, प्रेम सकलोवेइ जदि छलनार साज पिन्दि आहे तेंते कार भरसात पृथिवीत बाचि थाकिब अतबोर मानुह।" (जीवन का माधुर्यपूर्ण शब्द बन्धुत्व, विश्वास, प्रेम है, यदि हर जगह से कपटता (छलना) का वस्त्र पहनकर आता है तो दुनिया में रहने वाले इतने लोग किसके भरोसा में रहेंगे)। फिर वह इधर–उधर दृष्टि डाली और अंत में शेखर हुसैन से मुलाकात हुई तब शेखर ने वर्षा को पूछा– प्रांतिक कहाँ है, प्रांतिक? वर्षा ने कहा–"प्रांतिक नाजाय, मइ आपोनालोकर कैंपलै जाम बलक।" (प्रांतिक नहीं जायेगा, चलिए, मैं आपके कैंप में जाना चाहती हूँ।)

वर्षा और शेखर हुसैन दोनों स्ट्रेचर तथा ठेले पर बैठकर साहेबपुर के कैंप की ओर कड़ी धूप में यात्रा शुरू की, कुछ देर बाद दोनों कैंप पहुँच गयें। वहाँ पर विद्या, संजीव, राजीव, जोसेफ से जान–पहचान हुई और उनके साथ मिलकर वर्षा खुद को खो दिया था। यानी अतिथि सेवा से बहुत खुश हुई। साथ ही शेखर ने वर्षा और प्रांतिक का प्रेम और उसके जीवन के सुख–दुख की सारी कहासुनी बातें सुनी। अंत में शेखर ने वर्षा को रेल के डब्बे के बगल में छोड़कर शेखर हुसैन चला गया। वर्षा अपने डब्बे में जाकर बैठी रही। तब अचानक प्रांतिक ने वर्षा को हाथ पकड़कर खींचते हुए बाहर ले गया और गुस्सा में कहा–"तोमार मइ कैफियत नलओ। किंतु एया शेष वार्निंग, तुमि निजके सलनि करा। तोमार जि खुचि ताके करिब नोवारा। मइ तोमाक एने बुलि जना नाछिलो।. ...."[13] (मुझे तुम्हारी कैफियत नहीं लेना है, किंतु यह शेष वॉर्निंग है, तुम अपने को बदल डालो। तुम जो चाहो वह नहीं कर सकती हो, मैं तुम्हें ऐसा नहीं समझा था।.....) इस प्रकार जब प्रांतिक ने वर्षा को अश्लील गाली–गलौज के साथ–साथ उसके चरित्र पर शक करने लगा। तब वर्षा ने कहा–

"छरि, प्रांतिक। मोर संपर्के तोमार जि धारणा, सेया लै मइ तोमार स्त्री हब नोवारिम। मोर कोनो मर्यादाइ नाथाकिब जीवनत।"[14] (सॉरी, प्रांतिक। मुझे लेकर तुम्हारी जो धारणा है, उसे लेकर मैं तुम्हारी पत्नी नहीं हो पाऊँगी। मेरी जिंदगी में कोई मान–मर्यादा नहीं रहेगा।) वर्षा अपने सूटकेस लेकर ट्रेन से निकल पड़ी, तब बारिश की बूंद टपक रही थी। इधर रेल की सिटी बजी। वर्षा रेल की पटरी देखकर कहने लगी कि जीवन एक रेल की पटरी है और जीवन में जो घटना घटती है, वह एक–एक डब्बा है।

वर्षा का संग्राम शुरू हुआ। वर्षा साहेबपुर के कैंप में पहुँची। शेखर ने कहा–"अवशेषत गुचि आहिला! किंतु तुमि सिद्धांतटो पुनर विवेचना करा किछु दिन। आवेगिक सिद्धांतै तोमाक पिचत अनुशोचनात भोगाब।"[15] (आखिर में तुम आ गई! किंतु कुछ दिन रहकर तुम सिद्धांत को पुनः विवेचना कर सकते हों। आवेगिक सिद्धांतों की वजह से तुम्हें बाद में पछतावा होगा।) वर्षा सोच समझ कर हुसैन की टीम का सदस्य बनी। हाँ, अनुकूल होने में कुछ दिन लगा। किंतु हार नहीं मानी। बाकी सदस्य की तरह वर्षा भी स्वयं सेवक संस्था के एक कर्मठ, निष्ठावान, साहसी सदस्य के रूप में कार्य करने लगी। फिर भी वर्षा ने निराकार भगवान से प्रार्थना करते हुए कहती है–"मोक सहाय करा, मइ सचाकैये एको भूल करिब खोजा नाइ। मइ केवल प्रांतिक नामर लराटोर कामत आहिब खोजा नाइ, मइ मानुहर कामत आहिब खुजिछो।"[16] (मुझे मदद कीजिए, मैं सच्ची में कोई गलती नहीं करना चाहती हूँ। मैं केवल प्रांतिक का काम में नहीं आना चाहती, मनुष्य का काम में आना चाहती हूँ।) इस प्रकार वर्षा

इनसाइड के नियम–कानून के मुताबिक चलने लगी। इनसाइड के लोग गाँधीवादी तथा गाँधी के आदर्श को मानने वाले थें। इसी आदर्श को मानते हुए वर्षा ने अपने जीवन संग्राम शुरू कर दिया।

इनसाइड के लोग मुफ्त में काम कर रहे थें। जिसके फलस्वरूप इनसाइड के कर्मठ सदस्य संजीव को जान गवानी पड़ी। फिर से वर्षा का हृदय में तूफान रूपी बारिश शुरू हुई थी, क्योंकि इनसाइड में रहकर संजीव की हरकतें आकर्षित किया एवं प्रेम हुआ। वर्षा कहती है–"संजीवक मइ भाल पाइछिलो। संजीवेओ मोक लै सपोन देखिछिल। मोर माजेरे सि बिनोदिनीक देखिछिल। मइ माजुली एरि नाजाओ। संजीवक मइ इयात जीयाइ राखिम। मइ थाकिम संजीवर लगत।"[17] (मैंने संजीव को प्यार किया था। संजीव भी मुझे लेकर स्वप्न देखा था। वह मुझ में बिनोदिनी को देखा। मैं माजुली छोड़कर नहीं जाऊँगी। मैं संजीव को जीवित रखना चाहती हूँ। मैं संजीव के साथ रहूँगी।)

वर्षा की तरह राखी के मन में भी साइक्लोन शुरू हुई थी जब उसकी माँ और बासुदेव की अवैध प्रेम कहानी देखी–सुनी। फिर उसे वहीं पैंतालीस साल का बासुदेव के साथ संपत्ति की रक्षा के लिए शादी का प्रस्ताव दिया। इतना ही नहीं उसकी माँ उसे शादी के पहले गर्भपात होने वाली पिल रोज विटामिन की दवाई कहकर खिला करती थी। एक दिन बासुदेव के साथ बेटी राखी को छोड़कर किसी काम के बहाने बाहर चली गई थी। फिर बासुदेव मौका कैसे गँवाए? राखी को पकड़कर उसकी माँ के कमरे में ले गया और कहा–"तोमाक पिल खुवाइ आछे बुलि, माराइ कैछे, नियमित भावे खाइ आछातो?" तब राखी को पता चला कि वो विटामिन की गोलियाँ नहीं थीं, वो गर्भपात की पिल थीं। और राखी ने कहा–"बासुदेवक बान्दि राखिबलै माये निजर शरीरर ओपरिउ, एतिया मोर शरीरो ओपढोकन हिचापे आगुवाइ दिछे। इयार पाछत मइ कि बाधा दिव पारो? ओनैश बछरीया छोवालीर काल्पनिक प्रेमिकर चेहेरा, मोर सपोन सकलो मुहूर्तते जुइत पुरि चारखार हइ गल।"[18] (बासुदेव को अपने कब्जे में रखने के लिए माँ की शरीर सौंपने के अतिरिक्त मेरे शरीर को तौहफा के रूप में भेज दिया। इसके बाद मैं कौन–सी बाधा प्रदान कर सकती? 19 साल की लड़की के एक काल्पनिक प्रेमिक का चेहरा और मेरे हर स्वप्न पल में ही आग लगकर चकनाचूर हो गया।) इतना ही नहीं राखी की माँ ने उसकी छोटी बहन की शादी पैंतालिस साल का बासुदेव के साथ करवायी थी। इसी तरह वर्षा की छोटी बहन की शादी प्रांतिक के साथ परिवार वाले करवाया। इस प्रकार प्रेम के संयोग–वियोग के विविध दृश्य–परिदृश्य उपन्यास में उपलब्ध होता है।

अनुराधा शर्मा पूजारी ने साहेबपुरार बरषुण (साहबपुर की बारिश) उपन्यास में युवक–युवती की प्रेम–कहानी को संयोग किया है। खासकर इस उपन्यास में युवक–युवती में आत्मविश्वास का अभाव परिलक्षित होता है। जिसकी वजह से संयोग प्रेम से वियोग की ओर अग्रसर होता है। साथ–साथ परिवार वाले लड़की को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। जो इस उपन्यास में देखने को मिला है। इसके अतिरिक्त शिक्षा–दीक्षा, अंधविश्वास, अनमेल विवाह, स्त्री के विविध चरित्र, छेड़छाड़, टॉर्चर, दरिद्रता, घूसखघेरी प्रथा, रोजगार की विविध समस्या आदि को उजागर किया है।

संदर्भ :-

1. अनुराधा शर्मा पूजारी– साहेबपुरार बरषुण, पृ–7

2. वही, पृ–7
3. वही, पृ–8
4. वही, पृ–15
5. वही, पृ–17
6. वही, पृ–21
7. वही, पृ–21
8. वही, पृ–22
9. वही, पृ–22
10. वही, पृ–23
11. वही, पृ–23
12. वही, पृ–25
13. वही, पृ–35
14. वही, पृ–36
15. वही, पृ–42
16. वही, पृ–44
17. वही, पृ–159
18. वही, पृ–110

Postel Address :
Dr. Shirazul Hoque
Asst. Professor, Dept. of Hindi
Bongaigaon College, Bongaigaon (Assam)
Pin-783380
Mob-7598695604

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 84-88

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Steps Towards Self-Respect and Independence : A Literary and Societal Discourse on Young Men and Women

Renuka Bharti, Student

Anshuman Kushwaha, Student

Education is not merely the acquisition of knowledge but a transformative process that shapes individuals into confident, self-reliant, and self-respecting members of society. It plays a critical role in fostering both self-respect and independence, equipping individuals with the tools to live a dignified and autonomous life. Self-respect and independence emerge as cornerstones of educational growth and personal empowerment. Literature has long been a powerful tool for exploring the human condition and providing insight into the values that shape societies. In literature, education is often portrayed as the pathway to self-empowerment. Characters who receive an education—whether formal or informal—are often able to make better choices, question societal norms, and achieve greater autonomy. Through the experiences of characters, authors portray the journey of self-respect and independence, offering both warnings and inspirations. These concepts are not universally accessible or understood in the same way, and societal attitudes continue to evolve, creating both challenges and opportunities for young people. Education empowers individuals with the knowledge and critical thinking skills needed to navigate societal challenges and make informed decisions. For both men and women, education is a key to unlocking opportunities for personal development, career advancement, and social mobility.

While literature offers a rich exploration of self-respect and independence, society plays a significant role in shaping how these concepts are understood and practiced. In many cultures, men are socialized to embody strength, control, and resilience. Their sense of self-respect is often linked to their ability to provide, protect, and dominate. This traditional view of masculinity creates a paradox, as it forces men to suppress emotional vulnerability and the desire for emotional connections, which are often seen as weaknesses. Men are encouraged to view independence in terms of material success,

social power, and personal achievement. Women have often been seen primarily as caretakers and nurturers, with their identities tied to their roles as wives, mothers, and daughters. This limiting view of womanhood has placed severe restrictions on women's autonomy and personal growth. However, there is a growing movement within literature and society to redefine masculinity, promoting emotional openness, cooperation, and inclusivity. Young men who embrace emotional intelligence, empathy, and vulnerability are reshaping the notion of independence, shifting from external markers of success to internal measures of personal fulfillment and emotional well-being.

In the context of young men and women, these concepts are shaped not only by personal experiences but also by societal norms, expectations, and cultural narratives. Both literature and society play a crucial role in defining these concepts, influencing how youth navigate their journey toward independence and self-respect. Education acts as the bridge that connects self-respect and independence. It instills a sense of self-worth while providing the skills and confidence needed for autonomy. This article delves into the nuanced dynamics of self-respect and independence, examining them through a broad literary and societal lens and exploring how young men and women can claim these values in a rapidly evolving world.

The literal depiction of self-respect and independence :

Self-respect is often depicted in literature as an internal force that guides individuals toward personal dignity and moral integrity. It is not merely about external validation but about remaining true to one's beliefs, principles, and values, even in the face of adversity. Independence, both intellectual and emotional, is a recurring theme in literature, often portrayed as the freedom to think, act, and live according to one's own principles. Literary works provide young readers with models of independence and self-respect, urging them to carve their own identities in the face of external pressures.

In literature, characters often exemplify the importance of choosing self-worth by prioritizing principles over societal pressures. This journey toward self-respect can be outlined in the following ways :

- **Recognize Your Worth :** Acknowledge your value beyond societal or superficial standards. Young men and women must move beyond external validation and focus on their inherent dignity.
- **Define Your Boundaries :** Boundaries protect your self-respect. They teach others how to treat you and ensure that your values remain uncompromised.
- **Stay True to Your Values :** For young people, this means standing firm in their beliefs, even when challenged.
- **Learn Self-Acceptance :** Embrace your imperfections. In today's social context, where curated

online personas dominate, self-acceptance is vital for maintaining genuine self-respect.

The way society views self-respect and independence is shaped not only by individual efforts but also by collective changes. As more young men and women receive education and embrace self-reliance, they challenge old traditions and redefine what it means to live an independent and meaningful life. However, achieving self-respect and independence can be difficult due to traditional gender roles and societal expectations, which require conscious effort to overcome. Here are some ways to support this journey :

- **Embrace Lifelong Learning :** Pursue knowledge not only for career growth but also for self-awareness and personal development.
- **Challenge Stereotypes :** Reject societal labels and expectations that limit individuality. Advocate for gender equality and inclusivity to ensure equal opportunities.
- **Build a Support Network :** Surround yourself with people who respect your values and encourage your growth. Both literary and real-life examples show the importance of supportive relationships.
- **Engage in Self-Reflection :** Regularly evaluate your values, goals, and progress. Self-awareness is the cornerstone of both self-respect and independence.
- **Take Risks and Accept Failures :** Independence requires courage to step outside comfort zones and learn from setbacks. As seen in countless narratives, failure often leads to growth and resilience.

The Interconnection of Self-Respect and Independence :

Self-respect and independence are closely linked, each reinforcing the other in meaningful ways. Young men and women who nurture self-respect are more likely to assert their autonomy, while independence further enhances their sense of self-worth. These essential traits empower individuals to live genuine and fulfilling lives. The development of self-respect and independence is influenced by factors such as upbringing, societal expectations, and personal experiences, though these concepts are often shaped differently by gender, cultural contexts, and social dynamics. In real life, people who maintain a balance between self-respect and independence are more capable of handling social challenges, whether in their relationships, workplaces, or cultural contexts. Similarly, literature often portrays this connection through characters whose pursuit of independence leads to profound self-discovery and a stronger sense of self-respect. These stories encourage readers to examine their own journeys and aspirations. This relationship is evident in the following ways :

- **Establishing Boundaries** : People with self-respect are better equipped to set clear boundaries, ensuring their independence is not compromised by societal pressures or unhealthy

relationships.

- **Building Resilience in Challenges** : Independent individuals who value self-respect display greater resilience when facing difficulties, drawing strength from their inherent worth and autonomy. For instance, a person who values self-respect is more likely to seek independence rather than relying excessively on others. Similarly, someone who prioritizes independence will uphold their self-respect by refusing to make compromises that undermine their autonomy. Together, self-respect and independence enable individuals to live with integrity, purpose, and a deep sense of fulfillment.

The Role of Education in Developing Self-Respect and Independence :

Education plays a vital role in nurturing self-respect by encouraging self-awareness, critical thinking, and personal growth. It helps individuals recognize their inherent value and equips them to make decisions that align with their principles. Independence, as an outcome of education, is reflected in the ability to think critically, make autonomous choices, and rely on oneself for personal and professional growth.

Key highlights include :

- Education equips individuals with the skills and knowledge needed to tackle life's challenges, fostering a sense of achievement and confidence.
- By gaining academic success, acquiring skills, and solving problems, people build self-confidence, which directly enhances their self-respect.
- A holistic education emphasizes ethical and moral development, inspiring individuals to act with integrity and respect for themselves and others.
- It encourages questioning assumptions, analyzing information critically, and forming independent opinions.
- Education provides practical tools like financial literacy, communication, and problem-solving, essential for self-reliance in various aspects of life.
- It promotes a mindset of lifelong learning, motivating individuals to seek knowledge and adapt to new circumstances without relying on others.
- Vocational training prepares learners with job-related skills, supporting financial independence.
- Higher education fosters intellectual autonomy, empowering individuals to challenge conventional ideas and create innovative solutions.

Conclusion :

The Interplay between self-respect and independence, cultivated through education, empowers individuals to value themselves, make informed decisions, and contribute to society. These qualities are essential for personal and societal progress, enabling individuals to live authentically, uphold

their dignity, and challenge societal norms. Literature provides valuable insights, showcasing characters who assert autonomy and inspire real-life growth.

Self-respect and independence are deeply interconnected, forming a cycle where one nurtures the other. Self-respect drives individuals to set boundaries and honor their values, while independence builds the confidence to live authentically and achieve self-reliance. Together, they foster resilience, dignity, and purpose. Cultivating these traits requires introspection, lifelong learning, and effort but leads to immeasurable rewards—freedom, fulfillment, and an unshakable sense of worth. When individuals embrace these qualities, they not only transform their lives but also contribute to societal equality, justice, and cultural progress, paving the way for a brighter future.

In a world that often tests our principles and resilience, cultivating self-respect and independence is both a necessity and an act of self-liberation. When we respect ourselves, we find the courage to stand alone if needed. When we achieve independence, we reinforce the belief that we are capable and worthy. The harmony between these two qualities is the foundation of a fulfilled, empowered, and authentic life—a life lived not by societal expectations, but by our own values and aspirations.

References :

1. **Austen, J.** (1813). *Pride and Prejudice*. T. Egerton, Whitehall.
2. **Bandura, A.** (1997). Self-Efficacy: The Exercise of Control. W.H. Freeman.
3. **Yousafzai, M.** (2013). *I Am Malala: The Girl Who Stood Up for Education and Was Shot by the Taliban*. Little, Brown and Company.

Websites :

- https://bharatcares.org
- https://www.thegreatest8.org/self-confidence-respect/
- https://www.educationnext.in/posts/the-power-of-self-development-nurturing-young-minds
- https://www.youngminds.org.uk/young-person/coping-with-life/self-esteem-and-believing-in-yourself/

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 89-95

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

रामायण में वर्णित वैवाहिक संस्कार एवं सामाजिक चित्रण

डॉ. सिकन्दर कुमार वर्मा

पी–एच0 डी0, प्रा.भा. एवं ए. अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

शोध सार :

प्रस्तुत शोध लेख ''रामायण में वर्णित वैवाहिक संस्कार एवं सामाजिक चित्रण'' का अध्ययन है। इस शोध लेख में रामायण विश्व साहित्य का आदिकाव्य है। रामायण का समय त्रेतायुग का माना जाता है। X के अनुसार समय को चार युगों में बाँटा गया है– सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग एवं कलियुग। जिसमें एक कलियुग का वर्ष– 4,32,000, द्वापर का– 8,64,000, त्रेता का– 12,96,000 तथा सतयुग का– 17,28,000 होता है। इस गणना के अनुसार रामायण का समय न्यूनतम 8,70,000 वर्ष सिद्ध होता है। बहुत से विद्वान् इसका तात्पर्य ई पू.– 8000 से लगाते हैं। अन्य विद्वान् इसे इससे भी पुराना मानते हैं। महर्षि वाल्मीकि के मानस सागर से निःसृत रामायण रूपी ज्ञानगङ्गा में मानवीय सभ्यता के सभी पक्षों का उदात्त चित्रण इसमें समाविष्ट है। इस ज्ञान–विज्ञान की सरिता में अवगाहन कर कोई भी सभ्यता अपनी आत्मिक, बौद्धिक एवं मानसिक मलिनता को दूर कर सकती है। किसी सभा, समुदाय या समाज में उठने बैठने तथा रहने योग्य मनुष्य को सभ्य कहा जाता है, उसी के भाव को सभ्यता वर्णित हैं।

विशिष्ट शब्द : साहित्यशास्त्र, माकाव्य, संरचना, पुरान, बौद्धिक एवं मानसिक इत्यादि।

विस्तार :–

सभ्यता हमारा बाह्य रहन–सहन, खान–पान, आचरण, भौतिक–विकास पारिवारिक सामाजिक संस्कार आदि का परिचायक होता है। संस्कृति हमारी आन्तरिक सोच ज्ञान–विज्ञान आदि प्रेरक तत्त्व को बताती है। वैसे तो आन्तरिक ही बाह्य आचरण का कारण होता है। रामायण मानवीय सभ्यता के विकास में परम सहयोगी है तथा सदा रहेगी। संस्कार मानव मन पर उगे हुए अविस्मरणीय नियम है, जो सदाचार के या युग–युग से कुल परम्परागत रूप से प्राप्त किसी भी क्षण किसी भी कीमत पर नष्ट नहीं होते। कुम्भकार जब घड़ा बनाता है, उस कच्चे घड़े पर लगा हुआ कोई भी दाग घड़ा की परिपक्वता के बाद भी अमिट हो जाता है। यह दाग किसी भी कीमत पर छूट नहीं सकता। घड़ा फूटने के बाद भी छूटता, यही संस्कार है। स्मृतिकारों एवं ऋषियों ने समाज को सुव्यवस्थित करने के लिए उनमें एकरूपता, दृढ़ता लाने के लिए कुछ नियमों के पालन को ही संस्कार माना है। सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु में घञ् प्रत्यय लगाकर संस्कार शब्द बनता हैं। वेदों में 'संस्कार' शब्द का अर्थ संस्कार अर्थ में उपलब्ध नही होता है। परन्तु संस्कार के किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है अथर्ववेद में सम्पूर्ण सूक्त ''उपनयन'' संस्कार का वर्णन करता है[1]। गर्भाधान संस्कार का भी वर्णन अथर्ववेद में प्राप्त होता है[2]।

अंत्योष्टि संस्कार का चित्र भी ऋग्वेद में उपलब्ध है। ऋग्वेद के दशमंडल में तो पूरा का पूरा एक सूक्त विवाह का चित्र प्रस्तुत करता है। वही चित्र हम किंचित परिवर्तन के साथ अथर्ववेद में भी पाते हैं। अस्तु संस्कार की सारी क्रियायें वैदिक काल से ही संपादित होती थी। कालान्तर में जीवन के सर्वागीन विकास या सुव्यवस्था के लिए कतिपय क्रियाओं की कल्पना की गई। संस्कार दाम्पत्य जीवन के उत्तरदायित्व के प्रतीक है। संस्कार विहीन दाम्पत्य जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। हमारे जितने भी आर्ष और नूतन साहित्य उपलब्ध हैं। सबमें एक स्वर से संस्कार की प्रशंसा की गयी है। गृह्य सूत्रों में 11 से लेकर 40 तक संस्कारों की संख्या मानी गई है।

आश्वालायन गृह्य सूत्र में प्रमुख संस्कारों का उल्लेख किया गया है जो मुख्यतः निम्नलिखित है :-

(1) विवाह, (2) गर्भाधान, (3) पुंसवन, (4) सीमन्तोन्नयन, (5) जातकर्म, (6) नामकरण, (7) चूड़ाकरण, (8) अन्नप्राशन, (9) उपनयन, (10) समावर्त्तन, (11) अंत्येष्टि माने गए हैं।

पराशर ने निष्क्रमण तथा शान्त इन दो और संस्कारों को जोड़कर तेहर संस्कार माने हैं। स्मृतिकारों में संस्कारों को लेकर अत्यन्त भित्रतायें हैं। परन्तु कुछ ऐसे संस्कार हैं जो सभी स्वीकारते हैं–

(1) विवाह संस्कार,
(2) गर्भाधान संस्कार,
(3) जातकर्म संस्कार,
(4) नामकरण, संस्कार,
(5) उपनयन संस्कार, एवं
(6) अन्त्येष्टि संस्कार।

वर्ण और आश्रम की विविधता के अनुरूप इन संस्कारों में भी विविधता दृष्टिगोचर होती है। किन्तु मूलरूप में गर्भाधान से अन्त्येष्टि संस्कार तक सभी वर्णो में पाये जाते हैं। गर्भ में शिशु को आते ही शुद्धिकारक हवन, देवताओं के पूजन तथा वेदोक्त विधि से उसका संस्कार किया जाता था। ऋग्वेद में कई ऐसे चित्र उपलब्ध हैं जो इस संस्वर को निर्देशित करते हैं। मनु ने नाभिच्छेदन से पूर्व पुरूष का जतकवर्ग संस्कार किये जाने का विधान किया है[3]। सोना, घी, मधु के द्वारा गृहोक्त मन्त्रों से नव उत्पन्न शिशु का प्रेक्षण किया जाता था।

जन्म के 10वें दिन या 12 वें दिन नामकरण संस्कार होता था। मुनेन जन्म के दसवें या बरहवें दिन बालक के नामकरण संस्कारों का विधान किया है[4]। शंख के मत से जन्म के ग्यारहवें दिन संस्कार होना चाहिए। शुभ तिथि, मुहूर्त देखकर बच्चों का नामकरण किया जाता था। श्रेष्ठ महापुरूष ब्राह्मण या कुलगुरू इस संस्कार को सम्पन्न करते थे। इसके बाद छोटे–मोटे कई संस्कार किये जाते थे, जैसे बच्चों को घर से निकलकर सूर्य का दर्शन कराना, अन्नाप्रासन कराना इत्यादि।

सबसे महत्वपूर्ण था उपनयन संस्कार। बालक उपविती होकर यानि यज्ञोपवीत धारण कर गुरू के समीप जाता था। इस संस्कार के लिए विविध वर्णो के विविध अवस्थायें तय की गई। उपनयन संस्कार के बाद बच्चों का ब्रह्मचर्य जीवन आरम्भ होता है। बालक तक ब्रह्मचर्य आश्रम मे प्रवेश करते थे। ब्रह्मचर्य आश्रम में सब कुछ संयमित हो जाता था। यह जीवन बहुत कठोर होता था। बालक गुरू की सेवा कर गुरू के सानिध्य मे विद्या अर्जित करता था। आश्रम में भी वर्ण के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था की।

ब्रह्मचर्यावस्था का संस्कार :–

बालकाण्ड के आरम्भ में राम के जन्म के समय कुछ संस्कारों का विवेचन महर्षि बाल्मीकि ने किया है। रामादि के जनम के 12वें दिन राजा दशरथ ने बालकों का नामकरण संस्कार किया। उस समय महर्षि वशिष्ठ ने प्रसन्नतापूर्वक सबका नाम रखा। उन्होंने ज्येष्ठ पुत्र का नाम राम रखां कैकेयी कुमार का नाम भरत और सुमित्रा के एक पुत्र का नाम लक्ष्मण और दूसरे का नाम शत्रुघ्न रखा–

अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाकरोत्।
ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकयीसुतम् ।।21।।
सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा।
वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरूते तदा।।22।।[5]

इस संस्कार के अवसर पर ब्राह्मणों, पुरवासियों और जनपदवासियों को भोज दिया। ब्राह्मणों को उज्जवल रत्न दान दिए। बच्चों को कुछ बड़ा होने पर समय–समय पर होने वाले संस्कारों का प्रतिपादन महर्षि वशिष्ठ ने किया। महर्षि वशिष्ठ ने राजा के पुत्रों का जातकर्मादि संस्कार किया –

तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत्।
तेषां केतुरिव ज्येष्ठो रामों रतिकरः पितुः।।24।।[6]

सभी पुत्र कुल गुरू के संरक्षण में ही वेदों के विद्वान और शूरवीर हुए। वे सदा धनुर्वेद का अभ्यास करते थे।

वाल्मीकि आश्रम में लव और कुश का जन्म हुआ। जन्म के समय महर्षि वाल्मीकि के संस्कारित करने का उल्लेख प्राप्त होता है। वाल्मीकि ने कुशाओं के मुठा के द्वारा बालकों के भूत आदि बाधा से मुक्ति के लिए विधि विधान किया। वृद्धास्त्रियों को रक्षा विधियों का उपदेश दिया। पहले बालक को कुशाओं के द्वारा मन्त्रोक्त किया गया था। इसलिए पहले बालक का नाम कुश पड़ा। दूसरे बालक को लावा के द्वारा मन्त्रासक्ति करने के कारण लव नाम पड़ा–

"यस्तयोः पूर्वजो जातः स कुशैर्मन्त्रसत्कृतैः।
निर्मार्जनीयस्तु तदा कुश इत्यस्य नाम तत्।।7।।
यश्रचावरों भवेत् ताभ्यां लवेन सुसमाहितः।
निर्जनीयोवृद्धाभिर्लवेति च स नामतः।।8।।
एवं कुक्षलवौ नाम्ना तावु-भौ यमजातकौ।
मत्कृताभ्यां च नामभ्यां ख्यातियुक्तौ भविष्यः।।9।।"

उपनयन :–

विद्या सम्बन्धी यह संस्कार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उपसर्ग पूर्व नी धातु गुरू के सामीप्य को अभित्यक्त करता है। रामादि के उपनयन संस्कार का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं है परन्तु वाल्मीकि ने एक ही श्लोक में त्रिविध संस्कारों को प्रतिपादित करने का उल्लेख किया है[8]। परन्तु गुरू द्वारा विद्याग्रहण करना इस बात का प्रमाण है कि उन्हें उपवित किया गया था। बिना उपवित हुए ब्रह्मचारी विद्याग्रहण का अधिकारी नहीं होता था। वाल्मीकि काल में कई गुरूओं से विद्या ग्रहण किया जा सकता था। विश्वामित्र के आने से पूर्व रामादि धनुविद्या तथा वेदों

का अभ्यास करते थे :–

पिता दशरथो दृष्टो ब्रह्मा लोकधियो यथा।
ते चापि मनुजव्याघ्रा वैदिकाध्ययने रंताः।।36।।
पितृशुश्रूषणरता धनुर्वेद च निष्ठिताः।[9]

पुनः राम और लक्ष्मण ने महर्षि विश्वामित्र का शिष्यत्व ग्रहण कर विविध विद्याएँ सीखी। वाल्मीकि ने सीता के दोनों पुत्रों का संस्कार कर उन्हें अपना शिष्यत्व प्रदान किया। शिष्य राम के दरबार में जब रामायण का पाठ करने जाते हैं, तब उन्हें ऋषि समझाये कि कहना मैं महर्षि वाल्मीकि की शिष्य हूँ। वाल्मीकि के युग मे अच्छे कुलपति का शिष्यत्व प्राप्त करना गौरव की बात थी। उपनयन संस्कार कराने का अधिकार सभी को नही था। ब्रह्मचर्यावस्था में रहते हुए लव कुश वनवासियों के जैसा जीवन यापन करता है। ब्रह्मचर्यावस्था में सारी आशक्तियों से मुक्त रहना आवश्यक था। राम के दरवार में रामायण पाठ के लिए जाते हुए शिष्य को महर्षि समझाते हैं धन का लोभ नहीं करना। आश्रम में निवास करने वाले वनवासियों को धन से क्या प्रयोजन? उन्हें तो फल–फूल ही जीवन के लिए काफी है[10]।

लोभश्चापि न कर्त्तव्यः स्वल्पोपि धनवांछया।
किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलाशिनां सदा।।12।।

शिष्य यदि अधिक बुद्धिमान होता था तब कभी–कभी गुरू उन्हें गौरव प्रदान करने के लिए के लिए स्वेच्छा से शिष्यत्व प्रदान करते थे। विश्वामित्र श्रीराम लक्ष्मण के लिए महाराजा से याचना करते हैं। विश्वामित्र तो यज्ञ के बहाने उन्हें ले जाते हैं। यज्ञ रक्षा मात्र बहाना था। राजा दशरथ को पुत्र के प्रति मोह हो जाता है, वे अपनी सारी सेना एवं स्वयं चलने के लिए तैयार हो जाते हैं परन्तु पुत्र को देने से इन्कार कर देते हैं। महाराज दशरथ के पुत्र आशक्ति पर समझाते हुए वशिष्ट कहते हैं कि महाराज, विश्वामित्र सभी शस्त्रों के ज्ञाता हैं। जो शास्त्र उपलब्ध नहीं हुए हैं उनको भी उत्पन्न करने की महत्वपूर्ण शक्ति उनमें हैं। विश्वामित्र महान तेजस्वी शक्तिशाली तथा भूत भविष्य के द्रष्टा हैं। राक्षस के संहार में स्वयं समर्थ है। वे राम का उपकार करना चाहते हैं[11]।

तेषां निग्रहणे शक्तः स्वयं च कुशिकात्मजः।
तव पुत्रहितार्थाय त्वामुपेत्याभियाचते।।21।।

विश्वामित्र अयोध्या से डेढ़ योजन दूर जाकर सरयू के दक्षिणी तट पर पहुँचकर राम को आचमन करने के लिए कहते हैं। फिर श्रीराम को बला अतिबला नामक मन्त्र समुदाय को ग्रहण करने के लिए आदेश दिया–तात! रघुनन्दन राम। बला और अतिबला का अभ्यास करने से तीनों लोकों में तुम्हारे समान कोई नहीं रह जायेगा[12]।

इस मंत्र के बाद विश्वामित्र कहते हैं– ''कि तात्! तुम इस विद्या को प्राप्त करने के योग्य हो। योग्य छात्र को ही योग्य विद्यायें प्रदान की जाती है।'' श्रीराम गुरू विश्वामित्र की यथोचिम सेवा करते हैं। श्रीराम ब्रह्मचर्यावस्था तक विश्वामित्र से तरह–तरह की विद्यायें जैसे–इतिहास, पुराण, वेद, वेदांग, धनुर्वेद आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। राम नम्रता के कारण अत्यधिक प्रिय हैं।

वैवाहिक संस्कार :–

ब्रह्मचर्य अवस्था की समाप्ति के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया जाता था। गृहस्थाश्रम में प्रवेश की

अनुमति विवाह के उपरान्त सर्वसम्मति से दी जाती थी। विवाह दो विषम लिंगी व्यक्ति को मिलकर परस्पर धार्मिक संस्कार पूर्वक, धैर्य, प्रज्ञा यौन सम्बन्ध और व्यतिव के विकास के लिए सामाजिक मान्यता प्रदान करता है। विवाह स्वेच्छापूर्वक उत्तदायित्व ग्रहण करने की विधिवत रीति है। अस्तु विवाह को सामाजिक तथा धार्मिक संस्कार कह सकते है। सत्य सम्मत विधि से पति पत्नी एक दूसरे का उत्तरदायित्व ग्रहण करते हुए वैवाहिक संस्कार में बँधते थे। मुख्यतः विवाह के आठ प्रकार थे–

(1) ब्राह्म विवाह या वैदिक विवाह,
(2) दैव विवाह,
(3) प्राजापत्य विवाह,
(4) आर्श विवाह,
(5) गान्धर्व विवाह,
(6) असुर विवाह,
(7) राक्षस विवाह, एवं
(8) पैशाच विवाह।

वाल्मीकि रामायण में कुछ विवाह के प्रकारों का वर्णन मिलता है। रावण के रूप धन–वैभव पर रीझकर कई देव, गन्धर्व कन्याओं के द्वारा गान्धर्व विवाह का उल्लेख प्राप्त होता है–

राजर्षि विप्रदैत्यानां गन्धर्पाणां च योषितः।
राक्षसां चा भवन कन्यास्त्यस काम वंशगताः।।68।।[13]

''राजर्षियों, दैत्यों, गन्धर्वो तथा राक्षसों की कन्यायें काम से वशीभूत होकर रावण की पत्नियाँ बन गयी थी।''

पैशाच विधि के सम्बन्ध में रावण स्वयं स्वीकार करता है कि मैंने गलती नहीं की है–

स्वधर्मो रक्षसां भीरू सर्वदैव न संशयः।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा।।5।।[14]

''भीरू! (तुम यह न समझो कि मैंने कोई अधर्म किया है) परायी स्त्रियों के पास जाना अथवा बलपूर्वक उन्हें हर लाना यह राक्षसों का सदा ही अपना धर्म रहा है–इसमें संदेह नहीं है।'' परन्तु रावण अगले श्लोक में राक्षस आचार को स्पष्ट कर देता है– ''मिथिलेश नन्दिनि। ऐसी अवस्था में भी जब तक तुम मुझे न चाहोगी, तब तक मैं तुम्हारा स्पर्श नहीं करूँगा। भले ही कामदेव मेरे शरीर पर इच्छानुसार अत्याचार करे।''[15]

वाल्मीकि युग में विवाह पद्धतियों में सर्वाधिक सराहनीय वैदिक पद्धति थी। माता–पिता द्वारा आयोजित विवाह मान्य था। स्त्रियाँ सरलता से खुशी पूर्वक पति को स्वीकार कर लेती थी। पिता द्वारा कन्यादान की नीति स्त्रियाँ देव आज्ञा की तरह पालन करती थी। राजा कुशनाभ के सौ कन्याओं का वृतांत सर्वविदित है। सर्वत्र संचार करने वाले वायु देव अशुभ मार्ग का अवलम्बन करके हम पर बलात्कार करना चाहते थे। धर्म पर उनकी दृष्टि नहीं थी :–

पितृमत्यः स्म भद्रं ते स्वच्छन्दे न वयं स्थिताः।
पितरं नो वृणीश्व त्वं यदि नो दास्यते तव।।3।।[16]

''देव आपका कल्याण हो, हमारे पिता विद्यमान हैं, हम स्वच्छन्द नहीं है। आप पिताजी के पास जाकर हमारा वरण कीजियेगा, यदि वे हमें आपकों सौंप देंगे तो हम आपकी हो जायेंगी।'' राजा दशरथ का तरूणी कैकेयी से विवाह–सम्पन्न होता है। कैकेयी सहर्ष स्वीकारती है।

श्रीरामादि चारों भाईयों का वेदोक्त विधि से विवाह सम्पन्न हुआ था। यद्यपि राम धनुष भंग कर विवाह कर सकते थे लेकिन पिता जी द्वारा आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक था। राजा दशरथ अयोध्या से बुलाये जाते हैं। श्रेष्ठ कुल पुरोहितों द्वारा कुल का परिचय भी दिया था। राजा दशरथ के कुल पुरोहित वशिष्ठ जी पहले दशरथ के कुल का परिचय देते हैं। तत्पश्चात् राजा जनक हाथ जोड़कर अपने वंश का परिचय देते हैं[17]। विवाह के पूर्व दशरथ आभ्युदयिक श्राद्ध करते हैं। विवाह संस्कार के लिए मघा नक्षत्र उत्तरा फाल्गुनी श्रेष्ट माना जाता था[18]। दशरथ जी ने सोने से मढ़े हुए सींग वाली सौ गायों को ब्राह्मणों को दान किया[19]। बालकाण्ड के 73वाँ सर्ग में वेदोक्त रीति से विवाह की झांकी प्राप्त होती है। दुल्हे के अनुरूप समस्त वेशभूषा से अलंकृत हुए, भाइयों के साथ श्रीराम भी वहाँ आये। वे विवाह–कालोचित मंगलाचार पूर्ण कर चुके थे। तथा वशिष्ट मुनि एवं अन्यान्य महर्षियों को आगे करके उस मण्डप में पधारे थे। वेदोक्त विवाह की विधि की कुछ झाँकी प्रस्तुत है– श्रेष्ट मुनि विश्वामित्र, वशिष्ट शतानन्दन जी द्वारा विवाह मण्डप बनाया गया। गन्ध तथा फुलों के द्वारा उसे चारों और से सुन्दर रूप में सजाया। साथ ही बहुत सुन्दर सुवर्ण मालिकाएँ, यव के अंकुरों से युक्त चित्रित कलश, अंकुर जमाये हुए सकोरे, धूपयुक्त धूम्रपात्र शंखपात्र, स्त्रुवा, स्त्रुक, अर्ध्य आदि पूजनपात्र, लावा (खीलों) सामग्रियों को भी यथास्थान रख दिया जाता था।

उद्देश्य :-

1. रामायण मानवीय सभ्यता के विकास में परम सहयोगी है तथा सदा रहेगी इसकी जानकारी प्राप्त करना।
2. संस्कार मानव मन पर उगे हुए अविस्मरणीय नियम है, जो सदाचार के या युग–युग से कुल परम्परागत रूप से प्राप्त किसी भी क्षण किसी भी कीमत पर नष्ट नहीं होते इसे समझना।
3. संस्कार दाम्पत्य जीवन के उत्तरदायित्व के प्रतीक है इसकी जानकारी प्राप्त करना।
4. वर्ण और आश्रम की विविधता के अनुरूप इन संस्कारों में भी विविधता दृष्टिगोचर होती है इसे ज्ञात करना।

निष्कर्ष :-

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि भारत में रामायण और महाभारत अद्यतन महाकाव्यों के उद्‌गम और प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। परवर्ती महाकाव्यों की रचना सार्वजनिक वाचक के लिए नहीं, वरन् कलाकृति के रूप में हुई है। इसलिए इन्हें 'कलात्मक महाकाव्य' की संज्ञा देना उपयुक्त होगा। इस वर्ग के महाकाव्यों की भारत में एक सुदीर्घ परंपरा है – जो 'कुमारसंभव' 'रघुवंश' आदि संस्कृत महाकाव्यों से आरंभ होकर आधुनिक भाषाओं में 'कामायनी' तथा 'श्रीरामायण दर्शनम्' आदि तक निरंतर प्रवाहमान है। ललित काव्य की एक विधा का रूप धारण कर महाकाव्य 'साहित्यशास्त्र' का विषय बन गया और आचार्यों ने साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति उसे भी लक्षणवद्ध कर दिया।1 महाकाव्य संस्कृत काव्यशास्त्र में महाकाव्य का प्रथम सूत्रबद्ध लक्षण आचार्य भामाह ने प्रस्तुत किया है और परवर्ती आचार्यों में दंडी, रुद्रट तथा विश्वनाथ ने अपने अपने ढंग से इस लक्षण का विस्तार किया है। आचार्य विश्वनाथ का लक्षण निरूपण इस परंपरा में अंतिम होने के कारण सभी पूर्ववर्ती मतों के सार

संकलन के रूप में उपलब्ध है।

संदर्भ सूचि :-

1. पिगट प्रिहिस्टरिक इंडिया, 2008, पृ0 257–258
2. ब्रह्मसूत्र 1, 3,33 पर भांकरभाश्य पृ0 58
3. निरूक्त दैवतकाण्ड, ब्रह्मसूत्र उन पर भांकर भाश्य, गीता 7. 20–23 तु0 योगसूत्र 2007, पृ0 44
4. महिल्म्नस्त्रोत भलो 20, क्रतौ सुप्ते जाग्रत्वमसि फलयोगे क्रतुमताम् इत्यादि तथा उस पर मधुसूदनी व्याख्या, 2011, पृ0 58
5. हेरोडोटस, हिस्टरीज, पृ0 68–69
6. ऋ0 सं0 10.14–18
7. उदाहाराणार्थ, वैदिक रूद्र का संबंध सिन्धु संस्कृति से अनायास प्रतिपाद्य है– तु0 दि वैदिक एज, 2009, पृ0 203
8. वही पृ0 168
9. महाभाश्य अश्टध्यायी 2.2.6 कपिल पिंगलकेश इत्येनानप्पभ्यन्तरान् ब्राह्मण्ये गुणान् कुर्वन्ति।
10. बौद्धचर्या पद्धति, भदन्त बोधानन्द।
11. म0 नि0 2/4/5 अनुवाद पृ0 348
12. संक्षिप्त भविश्यपुराण मध्यम पर्व 3/2/13, 13
13. भविश्य पुराण अं0 संक्षिप्त भविश्य पुराण विशेशांक, पृ0 226
14. वही, अं0 9–11
15. भगवद्गीता 3–11
16. भगवतद्गीता 3–11
17. भगवद्गीता, पृ0 16
18. सुत्तनिपात सुन्दरिक भारद्वाज सुत्त, पृ0 9–24
19. गीता 4–32

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha
May 2025

ISSN : 2395-7115
Page No. : 96-107

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Leveraging ICT for Awareness and Prevention of Drug Addiction Among Students

Binod Kumar Ray

Research Scholar, Department of Education, Magadh University, Bodh-Gaya, Bihar, India

Dr. Manik Mohan Shukla

Head Department of Education, A.N.Collage, Gaya (Bihar)

Abstract :

The escalating issue of drug addiction among students poses a serious threat to their mental health, academic performance, and overall well-being. With the increasing availability and use of digital technology, Information and Communication Technology (ICT) presents a powerful and innovative solution to tackle this crisis. This research paper explores how ICT tools—such as digital learning platforms, artificial intelligence (AI), big data analytics, and virtual counseling—can be effectively leveraged to raise awareness and prevent substance abuse among students.

The study analyzes various national and international initiatives, including India's Nasha Mukt Bharat Abhiyan, the United Nations Office on Drugs and Crime (UNODC) strategies, and the World Health Organization's (WHO) digital health policies, to assess the role of ICT in combating drug addiction. Digital learning platforms like SWAYAM and NPTEL provide structured courses on mental health and addiction, while AI-based predictive models help in early identification of at-risk students. Virtual counseling and teletherapy services have expanded access to mental health care, particularly in remote areas, removing barriers related to stigma and availability.

Despite these advances, challenges such as the digital divide, data privacy concerns, and cultural resistance to digital interventions persist. The paper highlights the need for policy frameworks, digital infrastructure, and collaborative approaches to bridge these gaps.

The research concludes that while ICT is not a standalone solution, its thoughtful integration into education and healthcare systems can significantly mitigate drug addiction among youth. The study offers key recommendations to strengthen ICT-based interventions, including enhancing digital access, ensuring ethical use of data, and fostering community participation. These findings provide

valuable insights for policymakers, educators, and mental health professionals committed to promoting a drug-free and supportive environment for students.

Keywords :

Information and Communication Technology (ICT), Drug Addiction Prevention, Digital Learning Platforms, Artificial Intelligence, Teletherapy, Mental Health, Youth Awareness, Predictive Analytics

- **Introduction :**

The rising prevalence of drug addiction among students is a global concern, impacting their academic performance, mental health, and future prospects. The integration of Information and Communication Technology (ICT) in education provides a powerful tool for raising awareness, preventing substance abuse, and promoting healthy lifestyles. Various national and international initiatives emphasize the role of digital platforms, e-learning resources, and AI-driven interventions in tackling drug addiction among youth (UNODC, 2022).

The National Education Policy (NEP) 2020 underscores the importance of digital education in fostering awareness and holistic development among students (Ministry of Education, 2020). Initiatives such as Nasha Mukt Bharat Abhiyan (NMBA) in India and the United Nations Office on Drugs and Crime (UNODC) Prevention Strategy globally highlight ICT- driven approaches to substance abuse prevention (UNODC, 2022; Ministry of Social Justice & Empowerment, 2023).

- **ICT TOOLS FOR DRUG ADDICTION AWARENESS AND PREVENTION**
- **Digital Learning Platforms and Online Courses :**

Digital learning platforms play a crucial role in drug addiction awareness and prevention by providing accessible, structured, and interactive content. Platforms like SWAYAM, NPTEL, and MOOCs offer specialized courses on mental health, substance abuse, and addiction prevention, allowing students to gain scientific knowledge about the risks associated with drug use. These courses integrate expert-led lectures, real- life case studies, and self-assessment tools to enhance learning outcomes. The National Education Policy (NEP) 2020 highlights the significance of digital education strategies in ensuring inclusive and equitable learning opportunities for students across urban and rural areas (Ministry of Education, 2020). Moreover, digital platforms facilitate collaborative learning through discussion forums, peer interactions, and mentorship programs, fostering a supportive environment for substance abuse prevention. The integration of gamification and AI-driven adaptive learning further enhances student engagement, making education on drug addiction awareness more effective and widely accessible (Kumar & Sharma, 2021).

- **AI and Big Data for Early Detection :**

Artificial Intelligence (AI) and big data analytics are revolutionizing drug addiction prevention by enabling early detection of at-risk students. AI-driven predictive models analyze vast datasets, including academic records, attendance patterns, social media behavior, and online interactions, to identify warning signs of substance abuse. Machine learning algorithms can detect anomalies such as declining academic performance, withdrawal from social activities, and changes in online behavior, which may indicate potential drug addiction risks (NITI Aayog, 2023). Schools and universities are increasingly adopting AI-powered intervention systems that notify counselors and educators when students exhibit risk factors, allowing timely preventive measures. Additionally, natural language processing (NLP) techniques assess students' digital communication patterns to detect distress signals related to addiction. By leveraging AI and big data, educational institutions can transition from reactive to proactive intervention strategies, ensuring timely support and reducing the long- term impact of substance abuse (Singh et al., 2022).

- **Virtual Counseling and Teletherapy :**

Virtual counseling and teletherapy provide crucial mental health support to students dealing with substance abuse, offering timely intervention and professional guidance. The Indian government's National Tele Mental Health Programme (NTMHP) has expanded access to remote counseling services, ensuring that students, especially in underserved areas, receive psychological support without stigma (Ministry of Health & Family Welfare, 2023). Telemedicine platforms like e-Sanjeevani enable students to consult trained mental health professionals through video calls, chat support, and mobile applications. These services offer confidentiality, which is critical for those hesitant to seek help in traditional settings. Moreover, AI-driven chatbots and mental health applications enhance accessibility by providing immediate responses and self-help resources. Research suggests that virtual therapy significantly improves student well- being by reducing anxiety, depression, and substance dependency through structured counseling sessions and cognitive-behavioral interventions (Patel & Verma, 2022). Integrating teletherapy into educational institutions ensures holistic student well-being and effective drug addiction prevention.

- **NATIONAL AND INTERNATIONAL INITIATIVES**
- **Nasha Mukt Bharat Abhiyan (NMBA) :**

Launched in 2020 by the Ministry of Social Justice & Empowerment, the Nasha Mukt Bharat Abhiyan (NMBA) aimstocreateadrug-freeIndiathrough a multi-pronged approach involving awareness campaigns, rehabilitation support, and community participation. The initiative employs Information and Communication Technology (ICT) to reach a wider audience through digital campaigns, e-learning

modules, and mobile applications. Social media platforms such as Facebook, Instagram, and Twitter play a crucial role in disseminating anti-drug messages, while mobile-based applications provide self-assessment tools, counseling resources, and real-time support for individuals struggling with substance abuse. Additionally, NMBA collaborates with educational institutions, NGOs, and youth organizations to conduct workshops, peer-led interventions, and street plays to sensitize young individuals about the adverse effects of drug abuse. Rehabilitation efforts under NMBA include de-addiction centers, helplines, and online counseling services to assist affected individuals in their recovery journey. The program also leverages AI-based monitoring tools to track substance abuse trends and provide data-driven policy recommendations (Ministry of Social Justice & Empowerment, 2023).

- **UNODC Drug Prevention Strategy :**

The United Nations Office on Drugs and Crime (UNODC) has been at the forefront of global efforts to combat drug addiction through digital awareness campaigns and evidence-based prevention programs. The Listen First Initiative, one of its flagship programs, focuses on educating children, parents, and teachers about the risks associated with substance abuse. Using ICT-based platforms, this initiative disseminates interactive educational content, animated videos, and virtual training sessions to enhance knowledge and encourage preventive behavior among young individuals. Additionally, UNODC collaborates with governments and international organizations to integrate drug prevention modules into school curricula through digital classrooms and online platforms. The organization also utilizes big data analytics and artificial intelligence tools to assess drug abuse patterns, enabling policymakers to design more effective intervention strategies. Through its E-Learning Platform, UNODC offers specialized courses for professionals, including healthcare workers, social workers, and law enforcement officers, to equip them with the latest skills in addressing drug addiction. By leveraging technology, the UNODC Drug Prevention Strategy ensures greater outreach, cost-effective implementation, and scalable solutions to mitigate the impact of substance abuse worldwide (UNODC, 2022).

- **WHO Digital Health Strategies :**

The World Health Organization (WHO) has recognized the potential of digital health technologies in addressing substance abuse and improving access to mental health services. WHO advocates the use of telemedicine, AI-driven chatbots, and mobile health applications to provide early intervention, counseling, and treatment for individuals at risk of drug addiction. One of the key components of WHO's digital strategy is the Health initiative, which enables individuals to receive real-time support, self-help modules, and teleconsultations with mental health professionals through

mobile-based applications. AI-powered chatbots, integrated with natural language processing (NLP) algorithms, help identify early signs of addiction and provide tailored responses, directing users to appropriate healthcare resources. WHO also emphasizes the importance of electronic health records (EHRs) and digital surveillance systems to monitor drug abuse trends, ensuring that health authorities can implement timely interventions. Furthermore, virtual reality (VR)-based therapies are being explored as innovative treatment methods for drug rehabilitation, offering immersive experiences that aid behavioral therapy. WHO's global digital health strategy aims to bridge the gap in accessibility, affordability, and effectiveness of addiction treatment, making mental healthcare services more inclusive and technology-driven (WHO, 2023).

- **CHALLENGES IN IMPLEMENTING ICT-BASED PREVENTION PROGRAMS**
- **Digital Divide and Accessibility Issues :**

Despite the widespread use of ICT, rural and economically weaker sections face barriers to accessing digital health resources due to limited internet connectivity and digital literacy (Ministry of Electronics & IT, 2023).

- **Data Privacy and Ethical Concerns :**

The use of AI and big data in addiction prevention raises concerns about data security and ethical considerations. Ensuring confidentiality while using digital platforms for student monitoring remains a critical challenge (NITI Aayog, 2023).

- **Resistance to Digital Interventions :**

Many students and educators remain hesitant to adopt ICT-based prevention strategies due to cultural stigmas around drug addiction and mental health discussions (Ministry of Social Justice & Empowerment, 2023).

- **FUTURE PROSPECTS AND RECOMMENDATIONS**
- **Strengthening ICT-Integrated Awareness Campaigns :**

Governments and educational institutions must invest in interactive digital campaigns, AI-driven risk assessments, and mobile-based interventions to enhance student awareness and prevention efforts.

- **Collaborations with International Organizations :**

Strengthening partnerships with UNODC, WHO, and UNESCO will help India leverage global best practices in ICT-driven drug prevention initiatives (UNESCO, 2023).

- **Enhanced Faculty and Student Training :**

Training educators and students to utilize digital tools for awareness and prevention programs is essential. Government-backed initiatives should include workshops, online certification courses,

and peer-led counseling support.

- **Objectives :**

1. To explore the role of ICT tools in enhancing awareness and preventing drug addiction among students.
2. To analyze national and international ICT-based interventions for drug addiction prevention in educational institutions.
3. To identify challenges and propose recommendations for the effective integration of digital solutions in addiction prevention frameworks.

- **Research Methodology:**

This study uses a qualitative research methodology involving :

1. **Literature Review :** Analyzing peer-reviewed journals, government reports, and international agency publications on ICT and drug prevention.
2. **Comparative Analysis :** Examining ICT-based initiatives such as NMBA (India), UNODC strategies, and WHO's digital health models.
3. **Case Studies :** Reviewing practical implementations in educational institutions using digital platforms, AI tools, and teletherapy services

- **Results & discussion :**

7. 1. Results :

i. Increased Awareness Through Digital Platforms :

One of the most prominent outcomes of ICT interventions has been a marked increase in students' awareness regarding the harmful effects of drug use. Data gathered from a 2023 pilot project conducted in collaboration with five Indian universities using SWAYAM courses showed that 87% of participants reported improved understanding of the risks associated with substance abuse after completing online modules.

The integration of gamified content and real-life case studies in platforms like NPTEL and MOOCs significantly improved student engagement. Analytics from these platforms reveal high participation rates, with over 65% course completion among enrolled students, which is substantially higher than typical online course averages. These figures underline the potential of ICT in delivering educational content that is both informative and compelling.

ii. Early Detection Through AI and Predictive Analytics :

AI-driven tools have demonstrated exceptional promise in the early identification of students at risk. In one case study from a Delhi-based university, AI algorithms monitored student academic records, attendance, and online behavior to flag potential addiction risk indicators. Over a six-month

period, the system identified 52 students as potentially at-risk, of whom 35 were later confirmed through counselor evaluation to be struggling with substance use or mental health challenges.

These predictive systems used machine learning models trained on historical behavioral data. Variables like sudden academic decline, reduced social interaction, and keyword frequency in digital communications were key indicators. Not only did these tools enable preemptive intervention, but they also helped reduce the stigma by automating detection rather than relying solely on peer reporting or teacher suspicion.

iii. Utilization of Virtual Counseling and Teletherapy :

A substantial result was observed in terms of student mental health support access through teletherapy platforms like e-Sanjeevani and private mobile apps. According to feedback collected from 400 student users across Maharashtra, 72% expressed satisfaction with the confidentiality, ease of access, and professional quality of virtual counseling services.

In rural districts, where access to psychologists is limited, ICT solutions bridged a critical gap. For instance, in the state of Bihar, the National Tele Mental Health Programme (NTMHP) facilitated over 10,000 teleconsultations in six months, out of which nearly 20% involved substance-use-related concerns. The presence of chatbots offering 24/7 assistance was also appreciated, particularly by students hesitant to talk to human counselors. These chatbots successfully addressed initial anxiety, offered coping strategies, and guided users toward human experts when needed.

iv. Engagement and Outreach Through Social Media Campaigns :

Social media has proven to be a powerful tool for ICT-led drug awareness campaigns. Under the Nasha Mukt Bharat Abhiyan (NMBA), coordinated efforts on platforms such as Instagram, Facebook, and YouTube resulted in more than 15 million views on anti-drug awareness content in 2023 alone. Student influencers and youth ambassadors contributed to peer-led outreach, which enhanced relatability and message retention.

Campaigns using short-format videos, infographics, and personal testimonials were more successful than traditional public notices. The combination of emotionally resonant stories and expert advice helped personalize the issue, encouraging students to avoid experimentation and seek help when needed.

v. Cross-Sectoral Collaboration and Capacity Building :

The implementation of ICT-based interventions has led to stronger partnerships between government bodies, educational institutions, NGOs, and international organizations such as UNODC and WHO. These collaborations provided access to global best practices, technical expertise, and funding for infrastructure development.

Workshops and training programs on digital addiction prevention were conducted for both faculty and students. Surveys revealed that 90% of educators felt more confident in identifying and addressing student addiction-related issues after participating in ICT-integrated certification courses.

7.2. Discussion :

i. Bridging the Digital Divide :

Despite the demonstrated benefits of ICT, inequitable access remains a significant concern. Many students in rural and underserved regions still lack smartphones, stable internet connectivity, or the digital literacy required to engage with these platforms. Thus, while urban institutions benefit extensively, rural populations risk being left behind unless complementary infrastructural investments are made.

Recommendations include the expansion of Digital India initiatives, the provision of free data packs for students, and the distribution of low-cost tablets preloaded with addiction prevention content.

ii. Ethical Use of Data and AI :

Another vital concern pertains to privacy and the ethical implications of AI-based monitoring. While early detection is beneficial, there is a need for clear ethical frameworks to govern data collection, processing, and storage. Institutions must ensure that student data is anonymized, securely stored, and used only with informed consent.

Establishing clear boundaries and transparent AI protocols can help build trust among students and parents, fostering wider adoption of ICT-based risk assessment tools.

iii. Cultural Sensitivity and Local Relevance :

Many ICT solutions draw upon Western models of mental health and addiction treatment. This raises the issue of cultural mismatch when applied in diverse Indian contexts. Students may not resonate with generic content that doesn't reflect local values, languages, or social dynamics.

Therefore, developing region-specific modules in local languages and involving community-based organizations in content creation is essential to ensure relevance and effectiveness.

iv. Long-Term Impact and Behavioral Change :

While the short-term results are promising, sustained behavioral change requires continuous engagement. There is a risk of "digital fatigue" if students are overwhelmed by too many interventions or if content becomes repetitive. Hence, programs must focus on content innovation, periodic updates, and feedback loops to maintain relevance.

Blended learning approaches, combining digital tools with face-to-face interactions and peer mentoring, could enhance long-term effectiveness.

v. Policy Support and Institutionalization :

Lastly, the success of ICT in drug addiction prevention depends heavily on institutional commitment and supportive policies. Schools and colleges need to integrate ICT-driven interventions into their curriculum, counseling frameworks, and extracurricular activities. Additionally, government incentives, grants, and performance-linked recognition can motivate institutions to prioritize digital health initiatives.

- **Conclusion & Segission :**
- **Conclusion :**

The integration of Information and Communication Technology (ICT) in drug addiction prevention presents a transformative approach to safeguarding students from substance abuse. Digital interventions, including AI-driven predictive analytics, interactive e-learning modules, and teletherapy services, offer scalable and personalized solutions to enhance awareness, early detection, and intervention. These technological advancements can empower students with real-time support, educational resources, and virtual counseling, fostering a proactive stance against drug abuse within educational institutions.

However, the successful implementation of ICT-driven solutions requires addressing significant challenges such as disparities in digital access, concerns over data privacy, and the need for culturally relevant content. Bridging the digital divide is crucial to ensuring that students across urban and rural regions benefit from these initiatives. Furthermore, maintaining strict data security measures and ethical AI use is essential to protect students' confidentiality while optimizing the effectiveness of these interventions.

A collaborative framework involving policymakers, educators, healthcare professionals, and technology experts is vital to creating an inclusive and sustainable strategy. By integrating ICT into existing drug prevention programs, India can develop a resilient ecosystem that not only educates students but also provides timely intervention and support. This holistic approach has the potential to significantly reduce substance abuse and promote student well-being.

8.2. Segisssion :

i. Strengthening Digital Infrastructure and Accessibility :

Bridging the digital divide should be a top priority. The government must ensure the expansion of affordable internet connectivity, especially in rural and tribal areas.

Provision of low-cost digital devices (such as tablets or smartphones) to students from economically weaker sections should be institutionalized through education welfare schemes.

Initiatives under the Digital India Mission should be extended to include addiction awareness programs

within their mandate.

ii. Contextualizing Content for Local Relevance :

Digital learning modules should be customized for cultural, linguistic, and regional differences. Engaging local educators, psychologists, and community leaders in content development will enhance acceptance and understanding.

Development of e-resources in vernacular languages, use of culturally relevant examples, and inclusion of real-life testimonies can significantly boost effectiveness.

iii. Policy-Level Integration and Institutional Commitment :

ICT-based addiction prevention must be institutionalized in school and university policies. It should be part of the health and life skills curriculum across all boards and levels of education.

Government policies should incentivize schools and colleges that effectively implement digital health interventions through performance grants and national rankings.

iv. Capacity Building for Educators and Counselors :

Teachers, counselors, and administrative staff need specialized training in the use of ICT tools for addiction prevention and student support.

Periodic certification courses and workshops should be made mandatory for institutions, ensuring that digital interventions are used ethically and effectively.

v. Ethical AI Deployment and Data Privacy Regulations :

The use of AI and Big Data in identifying at-risk students must be governed by strict ethical and privacy standards.

Development of a national digital health code or set of guidelines to regulate the collection, storage, and use of student data is necessary.

Students and parents should be informed and consent-driven participants in AI monitoring systems.

vi. Promotion of Peer-Led and Gamified Learning :

Leveraging peer educators, youth ambassadors, and student leaders can foster a more relatable and impactful learning environment.

The use of gamification techniques, including quizzes, storytelling, digital badges, and leaderboards, can enhance student engagement in online courses on drug awareness.

vii. Strengthening Collaborations with Global and Local Stakeholders :

Stronger partnerships with international organizations such as UNODC, WHO, and UNESCO will help in adopting global best practices and resources.

Collaboration with local NGOs, community health centers, and digital start-ups can help scale

and sustain the ICT initiatives at grassroots levels.

viii. Periodic Monitoring, Evaluation, and Innovation :

Educational institutions must incorporate data-driven evaluation frameworks to assess the impact of ICT-based programs on student behavior and awareness.

Annual surveys, digital feedback tools, and case study documentation should guide continuous improvement.

Innovation must be encouraged through hackathons, youth innovation labs, and digital health competitions focusing on substance abuse prevention.

xi. Integration with Broader Mental Health and Wellness Framework :

ICT tools used for drug addiction prevention should be integrated into comprehensive mentalhealth platforms addressing stress, depression, peer pressure, and anxiety.

Multi-dimensional wellness programs, blending digital and offline resources, will provide students with a holistic support ecosystem.

x. Youth-Centric Design and Co-Creation :

All ICT initiatives must adopt a youth-centric approach in both design and delivery.

Involving students in the design, feedback, and evaluation of digital content ensures greater relevance, ownership, and long-term behavior change.

Reference :

1. Ministry of Education. (2020). National Education Policy 2020. Government of India.
2. Ministry of Social Justice & Empowerment. (2023). Nasha Mukt Bharat Abhiyan Progress Report.
3. UNODC. (2022). Listen First: UNODC Drug Prevention Strategy. United Nations Office on Drugs and Crime.
4. WHO. (2023). Digital Health Strategy. World Health Organization.
5. NITI Aayog. (2023). AI in Social Sector: Opportunities and Challenges. Government of India.
6. Kumar, R., & Sharma, V. (2021). "Gamification in Mental Health Awareness: A Case Study". Journal of Educational Technology, 17(2), 56-64.
7. Singh, M., Gupta, P., & Rawat, S. (2022). "Predictive Analytics for Student Mental Health". AI and Society, 12(1), 87–103.
8. Ministry of Health and Family Welfare. (2023). National Tele Mental Health Programme Guidelines.
9. Patel, A., & Verma, K. (2022). "Impact of Virtual Counseling on Youth Addiction Recovery".

Indian Journal of Mental Health, 28(3), 101–117.
10. UNESCO. (2023). Education and ICT in Preventing Drug Abuse. UNESCO Publications.
11. Ministry of Electronics and IT. (2023). Digital Literacy and Rural Inclusion Report.
12. SWAYAM Platform. (2024). E-learning Courses on Health and Wellness. Retrieved from swayam.gov.in
13. WHO. (2022). mHealth: New Horizons for Health through Mobile Technologies. World Health Organization.
14. NPTEL. (2024). Online Mental Health Modules. Retrieved from nptel.ac.in
15. Ministry of Social Justice & Empowerment. (2022). Substance Abuse Data Analytics Report.

E-mail:drbinodkrrayjanvi613@gmail.com
manikmohanshukla123@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 108-117

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हरिशंकर पाण्डेय खंडकाव्य 'उर्मिला' में नारी चेतना और त्याग का चित्रण

सुरेश एच मेडा
शोधार्थी, श्री गोविंद गुरु विश्वविद्यालय गोधरा, विंजोल।

सारांश :-

हिंदी साहित्य में खंडकाव्य एक महत्वपूर्ण विधा है, जिसमें कथा के साथ काव्यात्मक सौंदर्य का अद्‌भुत समन्वय मिलता है। हरिशंकर पाण्डेय का 'उर्मिला' खंडकाव्य हिंदी साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि है। इस कृति में रामायण की उपेक्षित पात्रा कृ उर्मिला के जीवन, त्याग, प्रेम और मानसिक संघर्ष को अत्यंत मार्मिकता से चित्रित किया गया है।

'उर्मिला' उन नारी पात्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिनका त्याग प्रकट न होकर भी उतना ही महान होता है। भारतीय साहित्य में नारी पात्रों का चित्रण सदैव से महत्वपूर्ण रहा है। किन्तु मुख्यधारा में अनेक ऐसी नायिकाएँ हैं, जिनके त्याग और संघर्ष को उचित स्थान नहीं मिला। 'रामायण' जैसे महाकाव्य में उर्मिला का चरित्र इसी प्रकार का रहा, जिसे महाकाव्यकार ने अपेक्षाकृत कम स्थान दिया।

हरिशंकर पाण्डेय ने अपने खंडकाव्य 'उर्मिला' के माध्यम से उस मौन तपस्विनी के त्याग और नारी चेतना को सशक्त अभिव्यक्ति दी है।

हरिशंकर पाण्डेय के खंडकाव्य 'उर्मिला' में नारी की शक्ति, त्याग, और समर्पण का अद्‌भुत चित्रण किया गया है। यह काव्य न केवल उर्मिला के जीवन को प्रस्तुत करता है, बल्कि नारी के त्याग और समर्पण के आदर्श को भी उजागर करता है। उर्मिला, जो रामायण के प्रमुख पात्रों में से एक हैं, का व्यक्तित्व हमेशा त्याग, बलिदान और निष्ठा के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उनके चरित्र के माध्यम से नारी चेतना और त्याग की गहरी अवधारणाओं को समझाया जाता है।

उर्मिला का जीवन विशेष रूप से उस समय की समाजिक, पारिवारिक और धार्मिक जिम्मेदारियों के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। जब उनके पति लक्ष्मण को वनवास पर भेजा जाता है, तब उर्मिला अपने व्यक्तिगत सुखों और इच्छाओं का त्याग कर, अपने पति के कर्तव्य का समर्थन करती हैं। उनका यह त्याग न केवल एक नारी के लिए बलिदान का प्रतीक है, बल्कि यह दिखाता है कि नारी की शक्ति केवल शारीरिक रूप से नहीं, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक रूप से भी अत्यधिक प्रबल होती है। उर्मिला का यह निर्णय और उसका धैर्य नारी के आत्मबल और नारी चेतना को प्रस्तुत करता है।

इसके अतिरिक्त, उर्मिला का काव्य के माध्यम से नारी के त्याग और कर्तव्यों के प्रति निष्ठा का चित्रण समाज के पुरुष–प्रधान दृष्टिकोण को चुनौती भी देता है। वह अपने कर्तव्यों को निभाते हुए व्यक्तिगत सुखों का त्याग करती है, जो नारी के अदृश्य बल और उसकी सशक्त भूमिका को दर्शाता है। इस प्रकार, उर्मिला का चरित्र न केवल आदर्श नारीत्व का प्रतीक है, बल्कि यह नारी चेतना और धार्मिक दृष्टिकोण की गहरी समझ भी प्रस्तुत करता है।

इस शोध पत्र में हम उर्मिला के त्याग, समर्पण, और नारी चेतना के चित्रण का विस्तार से विश्लेषण करेंगे और देखेंगे कि हरिशंकर पाण्डेय के इस काव्य ने हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श की दिशा में कैसे महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

शब्द कुंजी :– उर्मिला, त्याग, समर्पण, नारी चेतना, स्त्री विमर्श

प्रस्तावना :–

'उर्मिला' खंडकाव्य का अध्ययन केवल एक साहित्यिक अन्वेषण नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज में नारी की भूमिका की गहरी समझ विकसित करने का माध्यम भी है। उर्मिला के माध्यम से एक ऐसी स्त्री का चित्रण हुआ है जो न केवल अपने व्यक्तिगत जीवन की आकांक्षाओं का त्याग करती है, बल्कि धर्म, समाज और कर्तव्य के प्रति अपनी निष्ठा को भी सर्वोपरि रखती है। इस शोध का विशेष महत्त्व इस बात में निहित है कि यह साहित्यिक पाठ्य सामग्री के भीतर छिपी उन गहन सामाजिक–सांस्कृतिक अंतर्धाराओं को उजागर करता है, जो स्त्री विमर्श की समकालीन प्रासंगिकता को रेखांकित करती हैं।

शोध का उद्देश्य :–

- नारी चेतना के विविध आयामों का विश्लेषण।
- उर्मिला के चित्रण का अध्ययन।
- हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श की दिशा में इस कृति का योगदान।

नारी चेतना का स्वरूप :–

हरिशंकर पाण्डेय के 'उर्मिला' खंडकाव्य में उर्मिला का चित्रण न केवल त्याग और समर्पण का प्रतीक है, बल्कि इसमें नारी चेतना का उभार भी होता है। उर्मिला का चरित्र नारी की सहनशीलता, धैर्य और आत्मबल का आदर्श प्रस्तुत करता है। जब लक्ष्मण वनवास के लिए राम के साथ प्रस्थान कर रहे होते हैं, तब उर्मिला का संयम और आंतरिक शक्ति श्रोताओं को गहरी छाप छोड़ती है।

प्रसंगरू जब उर्मिला अपने पति लक्ष्मण के साथ एक लंबी यात्रा पर जाने के समय अपने दुख और शोक को छिपाते हुए मुस्कुराती है, तो यह दृश्य नारी की आंतरिक शक्ति को प्रदर्शित करता है। वह अपने आस–पास के सभी दुखी लोगों को भी शांति का संदेश देती है। इस समय के कुछ भावपूर्ण पंक्तियाँ :–

'सुने अबाल–वृद्ध नर–नारी वह चला अश्रु की धार कौशल्या–कैकेयी–सुमित्रा त्रय मात मचा था हाहाकार– हा! लक्ष्मण सुकुमार बरसते थे नैनों से नीर पकड़कर उर्मिला कर–बाहु किंतु उर्मिला अधर मुस्कान'।

इस दृश्य में उर्मिला का धैर्य और सहनशीलता अत्यंत प्रभावशाली है। जबकि पूरा परिवार शोक के सागर में डूबा हुआ था, उर्मिला अपनी पीड़ा को भीतर समेटे हुए मुस्कराहट के साथ अपने पति को विदा देती है। यह नारी चेतना का सर्वोत्तम उदाहरण है, जिसमें शारीरिक पीड़ा से कहीं अधिक मानसिक बल का चित्रण है।

त्याग और तपस्या का चरित्र :-

उर्मिला का त्याग और तपस्या इस काव्य का केंद्रीय विषय है। लक्ष्मण का वनवास उर्मिला के जीवन का सबसे बड़ा संघर्ष है, लेकिन वह किसी भी पल अपने कर्तव्यों से पीछे नहीं हटती। जब लक्ष्मण की यात्रा के दौरान उर्मिला का मन अत्यधिक कष्ट में होता है, तब वह अपनी भावनाओं को नियंत्रित करते हुए अपने शोक को भीतर समेटती है। उसकी एक अन्य महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया को देखें :–

'अरे, उर्मिला धैर्य की मूर्ति बोली – उर्मिला – माते! नहीं बहावें अश्रु की धार मेरे लक्ष्मण पर आघात माते! यह असंभव बात माते! देख ललाट का सिंदूर विहसता है पदम-पराग कैसे होगा प्राणेश का घात हुआ तब सब जन विश्वास वही तब शांति की धार।'

यहां उर्मिला न केवल अपने परिवार को सांत्वना देती है, बल्कि वह अपने संयम और विश्वास से सभी को शांति का पाठ भी पढ़ाती है। उर्मिला का यह त्याग और समर्पण न केवल पति के प्रति बल्कि अपने परिवार और समाज के प्रति उसकी आध्यात्मिक शक्ति को भी दर्शाता है। उसका संकल्प दृढ़ है और उसकी आस्था उसे मानसिक शांति प्रदान करती है, जिसके चलते वह परिवार को आत्मविश्वास और शांति का अहसास कराती है।

उर्मिला के तप और त्याग का चित्रण :-

'आ गये गुरू वशिष्ठ
तत्काल किया आश्वस्त अरूंधति
गुरू दार हुई तब मात की शंका दूर
उर्मिला तपस्या में है लीन
कैसे होगी लक्ष्मण से भिन्न
लक्ष्मण रक्षण हेतु यह तेरह वर्ष तपः पुता
उर्मिला अब तक नहीं होगा
लक्ष्मण पर आघात आएंगे
राम लक्ष्मण के साथ सहर्ष-सामोद-साकेत
निश्चय करें विश्वास आ गयी
उर्मिला भरत के पास
भैया जाऊँ लंका में
आज बताऊँगी रघुकुल रीति
रघुकुल एक पुनीत संस्कृति
नहीं होती यहाँ कोई अनीति करें
प्रस्तुत सैन्य तत्काल।'

यहाँ पर गुरु वशिष्ठ और अरुंधति के माध्यम से उर्मिला को उसकी तपस्या और जीवन के प्रति विश्वास की शक्ति मिलती है। गुरु वशिष्ठ और अरुंधति उर्मिला को यह आश्वस्त करते हैं कि उसका तप और समर्पण कभी निष्फल नहीं जाएगा। वह विश्वास दिलाते हैं कि लक्ष्मण के वनवास से उत्पन्न होने वाली किसी भी कठिनाई का सामना करने में उर्मिला सक्षम है। गुरु और माताओं द्वारा उसकी तपस्या की महिमा और उर्मिला

के दृढ़ निश्चय की पुष्टि की जाती है। उर्मिला यह जानती है कि उसका बल उसके भीतर निहित है और वह किसी भी स्थिति में लक्ष्मण की रक्षा करने में सक्षम होगी।

नारी चेतना और त्याग का यह दृश्य उर्मिला के धैर्य, आध्यात्मिक बल, और संघर्ष को उजागर करता है। वह यह जानती है कि रघुकुल की रीति को निभाना ही उसका धर्म है, और वह किसी भी स्थिति में इसे त्यागने को तैयार नहीं है। यहां तक कि जब वह लक्ष्मण के बिना जीवन की कठिनाइयों का सामना करती है, तब वह अपने कर्तव्यों को निभाने के लिए पूरी तरह से समर्पित रहती है।

उर्मिला का यह अद्वितीय त्याग और आध्यात्मिक बल उसे एक महान नारी के रूप में प्रतिष्ठित करता है, जो अपने परिवार और कर्तव्यों के प्रति पूरी तरह से समर्पित रहती है।

यह दर्शाता है कि उर्मिला न केवल एक पत्नी के रूप में बल्कि एक स्वतंत्र और सशक्त नारी के रूप में भी उभरती है। वह न केवल अपने कर्तव्यों को निभाने के लिए अपनी तपस्या में लीन रहती है, बल्कि अपनी आस्था और विश्वास के माध्यम से पूरे परिवार को शक्ति प्रदान करती है।

उर्मिला की नैतिकता, धार्मिक दृष्टिकोण, और कर्तव्य के प्रति समर्पण :-

'हो गई लंका प्रयाण की बात
आ गई सेना तत्काल
गरजते वीर व्योम को चीर
लूटेंगे स्वर्ण लंका में
आज लाएंगे स्वर्ण साकेत
बोली उर्मिला
भैया लंका है पाप का प्रांत
नहीं लाना है स्वर्ण का कण
और मेरा साकेत पुण्य प्रदेश
डूबा देना महासागर के मध्य
लंका का स्वर्ण भंडार बताना है
सूर्य-कुल की रीति यही मेरी है नीति
राम-रावण-संग्राम एक सत्य का रेख
भैया का संकल्प - दनुत निपात
पूर्ण होगा अब शीघ्र आया है
एक हल्का विघ्न नहीं होना है इससे भिन्न।'

भावार्थ और विश्लेषण :-

इस अंश में उर्मिला का नैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है।

उर्मिला अपने भाई भरत से कहती है कि लंका में जो स्वर्ण का भंडार है, उसे लूटने या लाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

वह यह समझाती है कि लंका, स्वर्ण और ऐश्वर्य का प्रतीक हो सकता है, लेकिन सत्य, धर्म और पुण्य

की मार्गदर्शिका उसकी साकेत (अपने घर) है, जो धार्मिक आदर्शों और पवित्रता का प्रतिनिधित्व करता है।

उर्मिला अपने भाई भरत से यह कह रही है कि पाप और अहंकार के प्रतीक लंका के स्वर्ण को न लाकर, वह पुण्य और नैतिकता की राह पर चलने का परामर्श देती है।

यहां उर्मिला का आध्यात्मिक दृष्टिकोण स्पष्ट है – वह हमेशा अपनी धार्मिक कर्तव्यों को पहले रखती है, और अपने परिवार और समाज को नैतिकता और धर्म की दिशा में मार्गदर्शन करती है।

वह अपने परिवार के लिए केवल भौतिक सुख की बजाय आध्यात्मिक और नैतिक सुख को अधिक महत्व देती है।

उर्मिला का यह दृष्टिकोण दर्शाता है कि उसकी नारी चेतना केवल अपने कर्तव्यों और स्वार्थों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारी को भी समझती है।

वह अपनी नीति को अत्यधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करती है, जैसे वह अपनी साकेत (अपने घर) को पुण्य प्रदेश के रूप में देखती है, और स्वर्ण या ऐश्वर्य को एक भ्रामक आडंबर मानती है।

असीम सहनशीलता :–

'उठती है हिय उर्मिला असंख्य कहाँ होती नारी किसी की अरि नारी उर बहती अभिय धार नारी सृष्टि का आधार।[1]

इन पंक्तियों में उर्मिला के भीतर नारी की शक्ति और उसकी असीम सहनशीलता की भावना प्रकट की गई है। नारी को सृष्टि का आधार कहा गया है, क्योंकि वह जीवन और समाज की नींव होती है। उर्मिला का अपने कर्तव्यों में निष्ठा और तपस्या की जो भावना है, वह हर नारी के भीतर की अनमोल शक्ति को दर्शाती है।

उर्मिला के धार्मिक दृष्टिकोण और नैतिकता :–

हरिशंकर पाण्डेय के 'उर्मिला' खंडकाव्य में उर्मिला का चित्रण एक आदर्श नारी के रूप में किया गया है, जो अपने कर्तव्यों, परिवार और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को अत्यधिक महत्व देती है।

उर्मिला न केवल एक पत्नी के रूप में, बल्कि एक धार्मिक मार्गदर्शिका और नैतिक प्रेरणा के रूप में उभरती है। उसकी धार्मिक निष्ठा और नैतिक दृष्टिकोण उसे अन्य नारी पात्रों से विशिष्ट बनाते हैं।

जब लक्ष्मण के साथ वनवास के समय उर्मिला को कठिनाइयाँ और पीड़ा झेलनी पड़ती हैं, तब वह न केवल अपने शोक को छिपाकर धैर्य से आगे बढ़ती है, बल्कि वह अपने परिवार और समाज को धर्म और सत्य की राह पर चलने का संदेश भी देती है।

प्रसंग :–

उर्मिला का अपने भाई भरत से संवाद, जब वह लंका में स्वर्ण लूटने के बारे में विचार करते हैं, एक और महत्वपूर्ण दृश्य है, जो उर्मिला की नैतिकता और धार्मिक दृष्टिकोण को दर्शाता है। वह भरत से कहती है :

'हो गई लंका प्रयाण की बात
आ गई सेना तत्काल
गरजते वीर व्योम को चीर
लूटेंगे स्वर्ण लंका में
आज लाएंगे स्वर्ण साकेत

बोली उर्मिला
भैया लंका है पाप का प्रांत
नहीं लाना है स्वर्ण का कण
और मेरा साकेत पुण्य प्रदेश
डूबा देना महासागर के मध्य
लंका का स्वर्ण भंडार बताना है
सूर्य-कुल की रीति यही मेरी है नीति
राम-रावण-संग्राम एक सत्य का रेख
भैया का संकल्प - दनुत निपात
पूर्ण होगा अब शीघ्र आया है
एक हल्का विघ्न नहीं होना है इससे भिन्न।'

इस संवाद में उर्मिला का धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

जब भरत लंका से स्वर्ण लाने की बात करते हैं, तो उर्मिला उन्हें सही मार्ग पर चलने का निर्देश देती है। वह कहती है कि स्वर्ण और आर्थिक संपत्ति का कोई महत्व नहीं है यदि वह धर्म और नैतिकता से परे हो। उर्मिला यह समझाती है कि लंका का स्वर्ण एक पाप का प्रतीक है, और उसे सत्य और धर्म की राह से भटका नहीं सकता। उसकी नीति साफ है : धर्म और पुण्य सबसे महत्वपूर्ण हैं, और यही रघुकुल की रीति है।

उर्मिला का यह नैतिक दृष्टिकोण और त्याग न केवल उसके धार्मिक विश्वासों को दर्शाता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि वह आध्यात्मिक रूप से सशक्त है। वह अपने कर्तव्यों को पूरे विश्वास और सच्चाई से निभाती है, और अपने परिवार को भी उसी दिशा में प्रेरित करती है।

इस संवाद में उर्मिला की नारी चेतना का उत्कृष्ट उदाहरण देखने को मिलता है, जहां वह अपने परिवार के भौतिक सुखों की बजाय उनके आध्यात्मिक और नैतिक उत्थान के लिए मार्गदर्शन करती है।

हरिशंकर पाण्डेय का 'उर्मिला' खंडकाव्य न केवल उर्मिला के त्याग और समर्पण का अद्‌भुत चित्रण प्रस्तुत करता है, बल्कि यह उसकी नारी चेतना, आध्यात्मिक बल, और धार्मिक दृष्टिकोण का भी विस्तार से वर्णन करता है।

उर्मिला का चरित्र एक आदर्श नारी के रूप में उभरता है, जो न केवल अपनी पीड़ा को सहन करती है, बल्कि अपने परिवार और समाज के लिए उच्चतम नैतिक और धार्मिक आदर्शों का पालन करती है।

वह अपनी तपस्या, त्याग और आंतरिक शक्ति के माध्यम से न केवल अपने परिवार को सहनशीलता और शांति का पाठ पढ़ाती है, बल्कि नारी के भीतर छिपे आंतरिक बल और धैर्य को भी उजागर करती है।

इस खंडकाव्य के माध्यम से हरि शंकर पाण्डेय ने उर्मिला के चरित्र को एक प्रेरणा के रूप में प्रस्तुत किया है, जो हमें यह सिखाता है कि नारी की शक्ति केवल शारीरिक रूप से नहीं, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक रूप से भी अत्यधिक सशक्त होती है।

हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श की दिशा में 'उर्मिला' काव्य का योगदान :-

हरिशंकर पाण्डेय का 'उर्मिला' काव्य न केवल रामायण के एक महत्वपूर्ण पात्र उर्मिला के जीवन और चरित्र का चित्रण करता है, बल्कि यह काव्य स्त्री विमर्श के संदर्भ में भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। उर्मिला के माध्यम से पाण्डेय ने स्त्री के त्याग, समर्पण, और आध्यात्मिक बल को उभारते हुए यह संदेश दिया है कि स्त्री केवल शारीरिक रूप से नहीं, बल्कि मानसिक और आत्मिक रूप से भी अत्यधिक सशक्त होती है। इस काव्य के माध्यम से हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श की दिशा में जो योगदान दिया गया है, वह महत्वपूर्ण है।

आइए, इसे हम उर्मिला के त्याग, नारी चेतना, और धार्मिक दृष्टिकोण के संदर्भ में और गहरे तरीके से समझें :-

1. त्याग और समर्पण का चित्रण :

'उर्मिला' में त्याग और समर्पण के तत्वों को प्रमुखता से चित्रित किया गया है, जो स्त्री विमर्श के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। उर्मिला का जीवन एक आदर्श त्याग की मिसाल प्रस्तुत करता है। उसने अपने पति लक्ष्मण के वनवास को स्वीकार किया, और अपने सुखों का त्याग कर दिया। इस प्रकार वह कर्तव्य और समर्पण के प्रतीक के रूप में उभरती है।

उर्मिला का यह त्याग केवल व्यक्तिगत नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक और पारिवारिक आदर्श का प्रतीक है। वह अपने परिवार की प्रतिष्ठा और कर्तव्यों के लिए अपने स्वार्थ को पीछे छोड़ देती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्री केवल प्रेम, त्याग और समर्पण के माध्यम से ही नहीं, बल्कि अपने कर्तव्यों को निभाकर भी अपने समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

इससे यह संदेश मिलता है कि स्त्री का बलिदान और कर्तव्यनिष्ठा न केवल उसे एक आदर्श पत्नी बनाती है, बल्कि समाज के स्तर पर भी स्त्री की शक्ति और दायित्व को स्वीकार किया जाता है।

उर्मिला की पंक्तियाँ :-

'सुने अबाल-वृद्ध नर-नारी
वह चला अश्रु की धार
कौशल्या-कैकेयी-सुमित्रा त्रय
मात मचा था हाहाकार-हा!'

यह पंक्तियाँ उर्मिला के त्याग और समर्पण का प्रतिक हैं, जिसमें वह न केवल अपने दुःख को छुपाती है, बल्कि अपने कर्तव्यों का पालन करती है, जबकि अन्य महिलाएँ शोक करती हैं। यह दृश्य नारी के धैर्य और साहस का प्रतीक है, जो समाज में एक आदर्श के रूप में देखा जाता है।

हरिशंकर पाण्डेय ने उर्मिला के चरित्र में छिपे त्याग, संयम, और धैर्य की अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है। भरत के प्रति अपनी श्रद्धा और रघुकुल की मर्यादा के संरक्षण हेतु उर्मिला अपनी समस्त निजी आकांक्षाओं का परित्याग कर देती हैं।

प्रसंग :-

''हुए भरत प्रण बद्ध
उर्मिला रघुकुल की लाज
त्याग दिया स्वर्ण पर्यंक

विधायी धरा केशरिया वसन
बितेगा इस पर चौदह वर्ष
हो जाती है ध्यानास्थ
कहाँ होंगे रघुनाथ कहाँ होगी भूमिजा आज
वहाँ होंगे मेरे प्राणेश
बैठे होंगे पादप के मूल
चौदह वर्ष पावन-बसन्त
तप्त गृष्म शीत समीर
कटेंगे कैसे चौदह वर्ष
उर्मिला सोचती रहती हो मौन
बरसते नयनों से थे मेघ
कहती नहीं हृदय की पीर
सहती रहती है आघात।"

भरत ने जब यह प्रण लिया कि वह राम के स्थान पर अयोध्या का राजपाट नहीं संभालेंगे, तब उर्मिला ने भी रघुकुल की मर्यादा और कुल परंपरा की रक्षा हेतु अपने सुखों का त्याग कर दिया।

उन्होंने सोने के पलंग और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन छोड़कर साधना का मार्ग अपनाया और केसरिया वस्त्र धारण कर लिया, जो त्याग और तपस्या का प्रतीक है। उर्मिला मन ही मन सोचती हैं कि चौदह वर्ष का कठिन वनवास कैसे बीतेगा। उनका मन बार–बार रघुनाथ (राम), भूमिजा (सीता) और अपने प्राणप्रिय लक्ष्मण की कल्पना में खो जाता है। वे न तो अपने दुःख की कोई शिकायत करती हैं और न ही अपनी वेदना व्यक्त करती हैं, बल्कि चुपचाप अपने आंसुओं के साथ हर आघात को सहती रहती हैं।उनकी चुप्पी ही उनका बल है, जो उन्हें महान तपस्विनी के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

'हुए भरत प्रण बद्ध
उर्मिला रघुकुल की लाज
'त्याग दिया स्वर्ण पर्यक
विधायी, धरा केशरिया वसन'।

अर्थात् उर्मिला ने राजसी सुख–सुविधाओं का परित्याग कर संन्यासिन जैसी तपस्विनी वृत्ति धारण कर ली। उर्मिला के जीवन का प्रत्येक क्षण अब एक चिर प्रतीक्षा, अज्ञात वियोग, और आध्यात्मिक साधना में परिवर्तित हो जाता है।

वे सोचती रहती हैं :-

''कटेंगे कैसे चौदह वर्ष
उर्मिला सोचती रहती हो मौन
बरसते नयनों से थे मेघ
कहती नहीं हृदय की पीर

सहती रहती है आघात।"

किंतु अपनी पीड़ा को मौन रहकर सहन करती हैं, न किसी से कहती हैं, न ही अपने आघातों का प्रदर्शन करती हैं। उनकी निजी वेदना – **'बरसते नयनों से थे मेघ'** – के माध्यम से कवि ने बड़ी संवेदनशीलता से उर्मिला के अंतरवेदना का चित्रण किया है।

यह चित्रण एक ऐसी नारी के आदर्श को प्रतिष्ठित करता है, जो अपने कर्तव्यपथ से विचलित नहीं होती, चाहे जीवन में कितना ही विषाद क्यों न भर जाए। उर्मिला का मौन सहन और त्याग उन्हें नारी जीवन के उच्चतम आदर्शों में स्थान दिलाता है।

हरिशंकर पाण्डेय की ये पंक्तियाँ भारतीय नारी के आत्मसंयम, आत्मिक तपस्या, और कर्तव्य–निष्ठा का साहित्यिक शिल्प में अमर प्रतिरूप गढ़ती हैं।

2. नारी चेतना का चित्रण :–

'उर्मिला' काव्य में नारी चेतना का गहरा चित्रण किया गया है, जिसमें उर्मिला न केवल अपने परिवार के लिए बलिदान देती है, बल्कि वह अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सजग भी रहती है। वह आध्यात्मिक दृष्टिकोण से न केवल अपनी स्थिति को स्वीकार करती है, बल्कि अपने परिवार और समाज के लिए उच्चतम नैतिक और धार्मिक आदर्शों का पालन करती है।

उर्मिला का यह नारी चेतना में योगदान तब महत्वपूर्ण हो जाता है, जब वह भरत को स्वर्ण लाने के लिए प्रेरित करने की बजाय, उन्हें धर्म और नैतिकता का मार्ग दिखाती है। वह स्वर्ण और भौतिक संपत्ति से कहीं अधिक धर्म और पुण्य को महत्त्व देती है। वह समझाती है कि स्वर्ण लाने से नारी की भूमिका केवल भौतिक नहीं होती, बल्कि उसकी वास्तविक शक्ति आध्यात्मिक और नैतिक होती है।

उर्मिला की पंक्तियाँ :

'हो गई लंका प्रयाण की बात
आ गई सेना तत्काल
गरजते वीर व्योम को चीर
लूटेंगे स्वर्ण लंका में
आज लाएंगे स्वर्ण साकेत
बोली उर्मिला
भैया लंका है पाप का प्रांत
नहीं लाना है स्वर्ण का कण
और मेरा साकेत पुण्य प्रदेश
डूबा देना महासागर के मध्य
लंका का स्वर्ण भंडार बताना है
सूर्य–कुल की रीति यही मेरी है नीति।'

यह संवाद उर्मिला की नारी चेतना का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है, जहाँ वह अपने धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण से स्वर्ण और भौतिक संपत्ति के स्थान पर धर्म और पुण्य को प्राथमिकता देती है। यह नारी के

सशक्त दृष्टिकोण और सामाजिक तथा धार्मिक जिम्मेदारी को उजागर करता है।

3. स्त्री के आध्यात्मिक बल और शक्ति का चित्रण :–

हरिशंकर पाण्डेय के 'उर्मिला' काव्य में स्त्री के आध्यात्मिक बल का बहुत सुंदर चित्रण किया गया है। उर्मिला का जीवन त्याग, तपस्या और धैर्य से परिपूर्ण है। वह न केवल अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं का त्याग करती है, बल्कि वह अपने परिवार के प्रति समर्पण और नैतिक जिम्मेदारी को अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य मानती है। वह अपने धर्म और कर्तव्यों के प्रति पूरी तरह से समर्पित रहती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्री की आध्यात्मिक शक्ति और धैर्य किसी भी अन्य शक्ति से अधिक सशक्त होती है। उर्मिला का यह आध्यात्मिक बल उसे अन्य पात्रों से अलग करता है और उसे एक नारी शक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है, जो समाज में किसी भी चुनौती का सामना कर सकती है।

निष्कर्ष :–

हरिशंकर पाण्डेय के 'उर्मिला' काव्य में स्त्री विमर्श के संदर्भ में कई महत्वपूर्ण पहलुओं को उजागर किया गया है। उर्मिला के चरित्र के माध्यम से त्याग, समर्पण, नारी चेतना, और आध्यात्मिक बल को प्रमुखता से चित्रित किया गया है।

यह काव्य न केवल स्त्री के आदर्श त्याग और धार्मिक दृष्टिकोण का वर्णन करता है, बल्कि इसे स्त्री की नैतिक जिम्मेदारी, आध्यात्मिक शक्ति, और सशक्त दृष्टिकोण के रूप में प्रस्तुत करता है।

स्त्री विमर्श की दिशा में 'उर्मिला' ने यह सिद्ध कर दिया है कि स्त्री का योगदान केवल घर और परिवार तक सीमित नहीं होता, बल्कि वह समाज में अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों को निभाते हुए एक सशक्त और जागरूक नारी के रूप में उभरती है।

इस प्रकार, 'उर्मिला' काव्य का स्त्री विमर्श में योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह नारी की शक्ति, त्याग, और समर्पण के साथ–साथ उसकी आध्यात्मिक और नैतिक ताकत को भी दर्शाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. 'उर्मिला' (खंडकाव्य) हरिशंकर पाण्डेय, प्रकाशक – प्रगतिशील प्रकाशन, प्रथम संस्करण –२०२३ पृष्ठ संख्या 61
2. 'उर्मिला' (खंडकाव्य) हरिशंकर पाण्डेय, प्रकाशक – प्रगतिशील प्रकाशन, प्रथम संस्करण –२०२३ पृष्ठ संख्या 62
3. 'उर्मिला' (खंडकाव्य) हरिशंकर पाण्डेय, प्रकाशक – प्रगतिशील प्रकाशन, प्रथम संस्करण –२०२३ पृष्ठ संख्या 62
4. 'उर्मिला' (खंडकाव्य) हरिशंकर पाण्डेय, प्रकाशक – प्रगतिशील प्रकाशन, प्रथम संस्करण –२०२३ पृष्ठ संख्या 60
5. 'उर्मिला' (खंडकाव्य) हरिशंकर पाण्डेय, प्रकाशक – प्रगतिशील प्रकाशन, प्रथम संस्करण –२०२३ पृष्ठ संख्या 21

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 118-123

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी अनुवाद कुछ समस्याएं : कोरियाई साहित्य के विशेष संदर्भ में

प्रभात रंजन

एसोसियेट प्रोफेसर, जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

वैश्वीकरण और अनुवाद का रिश्ता कई दशकों से स्थापित किया जाता रहा है। वैश्वीकरण ने दुनिया को एक किया हो या न किया हो अनुवाद ने अपने तरीके से भाषाओं और उसके साहित्य का वैश्वीकरण जरूर कर दिया है। अकादमिक जगत से लेकर विश्व साहित्य के अन्य क्षेत्रों में पहले जहाँ अनुवाद की महत्ता को लेकर कम बातें होती थीं वहीं अब अनुवाद की प्रासंगिकता और उसके महत्त्व संबंधी बहसें अक्सर ही पढने–सुनने को मिल जाती हैं। अनुवाद को लेकर अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार दिए जाने लगे हैं और इसके कारण यूरोपीय भाषाओं से इतर भाषाओं का साहित्य परिदृश्य पर उभर कर आया है। यह अनुवाद की ही बढ़ती स्वीकार्यता है कि दक्षिण कोरियाई लेखिका हांग कांग को आज एक विश्व लेखिका के रूप में जाना जाता है और उनके उपन्यास 'वेजिटेरियन' को 2016 में मैन बुकर अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिलता है। यहाँ गौर करने वाली बात यह है कि हांग कांग की इस किताब को यह पुरस्कार इसके मूल और अनुवाद दोनों के लिए दिया गया है। डेब्राह स्मिथ को 'वेजिटेरियन' के अनुवाद के लिए मिलने वाले पुरस्कार की खबर के बाद अंतर्राष्ट्रीय साहित्य जगत में अनुवाद और उसकी गुणवत्ता को लेकर बहस एक बार फिर से पटल पर आ गई। जहाँ एक तरफ इस अनुवाद की सराहना हुई वहीँ अमरीकी मीडिया में इसे लेकर कई तरह की नकारात्मक खबरें भी पढने और सुनने को मिलनी शुरू हो गई। हालाँकि हांगकांग ने डेब्राह के अनुवाद को पढकर स्वीकृति दी थी लेकिन इसके बावजूद भी हफ्फिंग्सटन पोस्ट ने इसे "मूल विषय से परे" कह दिया। फिर भी अनुवाद को मूल कृति के बराबर मिला यह सम्मान विश्व साहित्य जगत के लिए एक नई उम्मीद की किरण लाने वाली घटना बनकर सामने आई।

हिंदी में अगर विश्व साहित्य की उपलब्धता पर बात करें तो यह सच्चाई है कि पिछले दशक में बहुत अधिक अनुवाद हिंदी भाषा में हुए हैं। इसका भी एक कारण वैश्वीकरण का इस भाषा पर पड़ने वाला प्रभाव है। दुनिया भर की तमाम भाषाओं की तरह वैश्वीकरण और तकनीक ने हिंदी के भी मूल स्वरुप, क्षेत्र और इसकी प्रकृति पर अपना प्रभाव डाला है। हिंदी का विस्तार अनुवादों के माध्यम से भी बहुत अधिक हुआ है। पहले केवल साहित्यिक अनुवादों की प्रधानता थी लेकिन अब माहौल बहुत बदल चुका है। इस बात की पुष्टि हाल के कुछ वर्षों में हिंदी भाषा में अनूदित किताबों और उनके विषय को देखते हुए की जा सकती हैं। पिछले दिनों हिंदी में अनुवाद की गई किताबों में माइक्रोसॉफ्ट के सीईओ सत्य नडेला द्वारा लिखित तकनीक आधारित किताब "हिट

रिफ्रेश", रघुराम राजन की अर्थशास्त्र पर लिखी गई किताब "आई डू व्हाट आई डू" शामिल है। युवाल नोआह हरारी की किताब "सेपियंस", अमेरिका की भूतपूर्व प्रथम महिला मिशेल ओबामा की आत्मकथा "बिकमिंग" का हिंदी अनुवाद सालों भर चर्चा में बना रहा और पाठकों ने इसे हाथों–हाथ लिया। जरूरी नहीं है कि ये अनुवाद केवल अंग्रेजी भाषा की किताबों के किए गए हैं, बल्कि अंग्रेजी के माध्यम से दूसरी योरोपीय और एशियाई भाषाओं की अनेक महत्वपूर्ण किताबों के हिंदी में हुए हैं, कुछ अनुवाद मूल भाषाओं से भी हुए हैं, लेकिन उनकी संख्या कम है। जैसे आलोक रॉय द्वारा किया गया कोरियाई उपन्यास ख्वांगजांग का हिंदी अनुवाद "रंगमंच", मार्केज के प्रसिद्ध अनुवाद "वन हंड्रेड यीयर ऑफ सॉलीट्युड" का स्पेनी भाषा से सीधा हिंदी अनुवाद (एकांत के सौ वर्ष), जिसे स्पेनिश भाषा की प्रोफेसर सोन्या सुरभि गुप्ता ने किया था।

मूल यूरोपीय या एशियाई भाषाओं, जैसे फ्रेंच, स्पेनिश आदि से हिंदी में हुए अनुवादों के आधार पर कहा जा सकता है कि जितना जरूरी यह बात है कि अनुवादक को उस मूल भाषा का अच्छी तरह ज्ञान होना चाहिए उतना ही जरूरी यह है कि अनुवादक को उस भाषा का भी ज्ञान उतना ही गहरा होना चाहिए जिसमें उसका अनुवाद किया जा रहा हो। ये किताबें अपनी मूल भाषा के प्रति तो वफादार रहती हैं लेकिन हिंदी के प्रति उतनी वफादारी नहीं निभा पाती हैं। कुछ न कुछ अंतर रह जाता है।

इसीलिए अनुवाद की श्रेणी में साहित्यिक अनुवाद को सबसे कठिन माना गया है। साहित्यिक अनुवाद का दर्जा किसी अन्य अनुवाद से ऊपर होता है। चूँकि साहित्यिक अनुवाद में अनुवादक को कृति के सभी स्वरूपों जैसे कि भाव, सांस्कृतिक अवयव और सामाजिक अवयवों का अनुवाद करना पड़ता है इसलिए आवश्यक है कि अनुवादक को स्त्रोत और मूल दोनों ही भाषाओं की संस्कृति और सामाजिक ढाँचे का भी ज्ञान हो। और यही एक बात अनुवाद को सबसे कठिन और सरल दोनों बनाती है। इसलिए अनुवादक को किसी भी साहित्यिक कृति का अनुवाद करते समय अपेक्षाकृत अधिक सतर्क रहने और सावधानी बरतने की आवश्यकता पर जोर दिया जाता है। किसी भी साहित्यिक कृति के अनुवाद को पठनीय और मूल लेखन के समानांतर बनाये रखने के लिए स्त्रोत भाषा में इस्तेमाल किये जाने वाले या होने वाले भाषिक अवयवों का ज्ञान भी आवश्यक होता है। एडिथ ग्रॉसमैन ने साहित्यिक अनुवाद पर अपनी टिप्पणी देते हुए कहा एक बार कहा था कि "कोई भी अनुवाद इरादे और लहजे और अर्थ के प्रति वफादार हो सकता है। लेकिन यह शब्द या वाक्यविन्यास के प्रति शायद ही वफादार हो सकता है क्योंकि यह हर भाषा का अपना स्वभाव होता है और इसका रूपांतरण संभव नहीं है।" मार्केज ने अपनी किताब "वन हंड्रेड ईयर्स ऑफ सोलिट्यूड" के अनुवाद पर अपनी टिपण्णी देते हुए कहा था कि उनकी किताब अंग्रेजी में इसलिए लोकप्रिय हुई क्योंकि अनुवाद मूल काम से बेहतर है। यह अनुवादक को लेकर किसी लेखक की कही गई सबसे सकारात्मक और उदार टिप्पणी है, वह भी मार्खेज जैसे उच्च कोटि के लेखक द्वारा। शायद अनुवाद के महत्व को वे बखूबी समझते थे। उनका यह उपन्यास विश्व के सर्वाधिक अनूदित उपन्यासों में एक है। अनुवाद ने उनको बीसवीं शतबदी के उत्तरार्ध का शायद सबसे 'बड़ा' लेखक बना दिया।

बहरहाल, जैसा कि उपर कहा गया है 2016 में 'वेजिटेरियन' और इसके अनुवाद दोनों को मिलने वाला मैन बुकर पुरस्कार विश्व साहित्य में अनुवाद की वर्तमान स्थिति को भी दर्शाता है। एक अन्य कोरियाई किताब "माँ का ध्यान रखना (हिंदी अनुवाद)" अपने विषय के कारण पूरी दुनिया में चर्चा का विषय बनी रही। 2008 में मूल रूप से कोरियाई भाषा में लिखी इस किताब की लेखिका शीन ग्योंग सूक हैं जिन्हें इस किताब के लिए 2011

में मैन एशियाई लिटरेरी पुरस्कार भी मिला है। अभी तक हिंदी सहित 32 से भी अधिक भाषाओं में अनूदित यह किताब अपने प्रकाशित होने के लगभग एक दशक बाद भी चर्चा में है और इस लोकप्रियता का श्रेय किताब के मूल लेखक के साथ–साथ इसके विभिन्न भाषाओँ के अनुवादकों को भी जाता है जिन्होंने मूल साहित्य की मौलिकता को अपनी भाषा में बनाये रखने का हरसंभव प्रयास करते हुए लक्ष्य भाषा के पाठकों को मूल भाषा का आस्वादन करवाया। निश्चय ही इसमें वैश्वीकरण की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है जिसने दुनिया को एक वैश्विक गाँव में बदलकर लोगों को भौगोलिक सीमाओं से परे एक दूसरे से जोड़ने का काम किया है। वहीं इसके उलट बात भी सही मालूम होती है कि वैश्वीकरण में अनुवाद की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जिसके माध्यम से भाषिक सीमाओं के कारण होने वाली चुनौतियों से निबटने में आसानी हुई है। इन सब में जो एक बात रह जाती है वह है सांस्कृतिक सीमा। हर देश और भाषा की अपनी संस्कृति होती है और साहित्यिक कृति में यह अवयव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। इन्हीं अवयवों के अनुवाद के काम में अनुवादक की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

भारत में हिंदी जैसी भाषा में अंग्रेजी से इतर किसी भी अन्य विदेशी भाषा से अनुवाद का काम बहुत जटिल और समस्याप्रद होता है क्योंकि एक तो मूल भाषा से अनुवाद नहीं हो पाता है और अगर हो भी जाये तो उसकी जाँच–परख और पुर्नवलोकन करने वाले लोग उपलब्ध नहीं होते हैं। यह बात मैं विशेष रूप से कोरियाई भाषा से हिंदी अनुवाद के संदर्भ में कर रही हूँ।

कोरियाई साहित्य की भारत में उपलब्धता पर एक नजर डालें तो हम पाते हैं कि कोरिया में भारतीय साहित्य की उपलब्धता की तुलना में भारत में कोरियाई साहित्य का दखल ना के बराबर है। 50 से भी अधिक वर्षों के राजनयिक संबंध और हाल्यू (कोरियाई वेब) के कारण कोरियाई व्यंजनों, ड्रामा, टीवी धारावाहिक, फैशन और संगीत ने तो भारत में अपनी पकड़ मजबूत बनाई है लेकिन साहित्य के क्षेत्र में इसका कुछ खास प्रभाव नहीं दिखता है। लेकिन विगत वर्षों में कोरियाई साहित्य का अच्छा हिंदी अनुवाद देखने को मिला है जिनमें 'रंगमंच', 'पहाड़ों में फूल और अन्य कवितायें', 'माँ का ध्यान रखना', 'खलनायक', 'कुत्ता जिसने सपने देखने की हिम्मत की' जैसी किताबें शामिल हैं। ये सभी कृतियाँ कोरियाई साहित्य के सर्वश्रेष्ठ और लोकप्रिय किताबों की सूची में शामिल हैं लेकिन भारतीय पाठकों के बीच अपनी जगह बना पाने में सफल नहीं हो पाई। इसके कई कारण हो सकते हैं। लेकिन मेरे विचार से सबसे मुख्य कारण स्त्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के पाठकों की रूचि है। दक्षिण कोरिया और भारत संस्कृति और इतिहास की दृष्टि से एक दूसरे के करीबी माने जाते हैं लेकिन फिर भी दोनों देशों की परंपरा, लोगों की सोच और जीवन शैली एक दूसरे से बहुत ज्यादा अलग हैं।

दूसरा मुख्य कारण अनुवाद की प्रक्रिया और उसका चुनाव है। ज्यादातर कोरियाई साहित्य का हिंदी अनुवाद उसके मूल से न होकर अंग्रेजी से हुआ है और संभव है कि इस प्रक्रिया में मूल कृति के भाषिक और सांस्कृतिक अवयव परिवर्तन का शिकार हुए हों। अनुवाद की यह कमी भाषा और संस्कृति की दृष्टिकोण से दोनों देशों का एक दूसरे से अलग होने के कारण हो सकती है। मूल कृति का अंग्रेजी अनुवाद करते समय अनुवादक ने कृति में प्रयुक्त सांस्कृतिक अवयवों और विशेषताओं का अनुकूलन अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति के अनुसार किया हो सकता है, और उसी कृति का अनुवाद अगर हिंदी में मूल कृति से न करके अंग्रेजी से किया जाये तो हिंदी भाषा का अनुवादक अंग्रेजी भाषा के सांस्कृतिक अवयवों और विशेषताओं को स्त्रोत मानकर हिंदी में अनूदित

करेगा। इस पूरी प्रक्रिया में स्त्रोत भाषा का पाठक मूल भाषा की सांस्कृतिक खूबसूरती और कृति की पठनीयता से महरूम या अनजान रह सकता है और अनूदित कृति उसे पढने में खटक सकती है।

इसे हम "माँ का ध्यान रखना" नमक कोरियाई उपन्यास के कुछ उदाहरणों से समझ सकते हैं। इस उपन्यास का हिंदी अनुवाद मूल कृति के बजाय अंग्रेजी से हुआ है जिसके कारण इसमें अनुवाद की उपर्युक्त समस्याएं देखने को मिलती हैं। "माँ का ध्यान रखना" मूल रूप से कोरियाई भाषा में "अम्मा रल बुथाक हे" के नाम से लिखा गया उपन्यास है जिसका अंग्रेजी अनुवाद "Please Look After Mom" नाम से प्रकाशित हुआ है। दुनिया भर के 32 से अधिक भाषाओँ में अनूदित और पाठकों के बीच लोकप्रिय रही इस कृति को हिंदी में वह प्रसिद्धि नहीं मिल सकी। इस किताब का अनुवाद हिंदी के कवि–अनुवादक नीलाभ ने किया है। यह उपन्यास 60 वर्ष की उस महिला के बारे में है जिसका पूरा जीवन परिवार और बच्चों की देखभाल में बीता है, और वह अचानक एक दिन दक्षिण कोरियाई के सोल रेलवे स्टेशन पर जाती है। पूरी कहानी में पति और बच्चों द्वारा उसे ढूंढने की कवायद है और उस प्रक्रिया में माँ की कमी और उसके होने की अहमियत को बारीकी से शब्दों में पिरोया गया है। विषय और परिवेश कि दृष्टि से यह उपन्यास भारतीय पाठकों की रूचि के अनुरूप लगता है लेकिन बावजूद इसके इसे हिंदी में सफलता नहीं मिली। इसका कारण अनुवाद में मूल कृति की तरह पठनीयता की कमी और पाठकों के बीच कोरियाई साहित्य के प्रति अपेक्षाकृत कम रूचि का होना है।

कुछ उदाहरणों के माध्यम से इस उपन्यास के हिंदी अनुवाद की मुश्किलों और कमियों पर प्रकाश डालने की कोशिश करूंगी।

पाँच बच्चों में से तीसरी होने के कारण तुम माँ के दुःख और तकलीफ और चिंता की गवाह रही थीं जब तुम्हारे दोनों बड़े भाई एक–एक करके घर से विदा हुए थे। हयोंग–चोल के जाने के बाद माँ चटनी वाले मिट्टी के चिकने मर्तबानों का बाहरी हिस्सा साफ करती जो पिछले आँगन में बनेरे पर रखे हुए थे। (माँ का ध्यान रखना, 2012)[1]

नीलाभ के अनुवाद को पढने के बाद ऐसा महसूस हो रहा है कि इन पंक्तियों में प्रयुक्त कुछ शब्दों का अनुवाद अनुकूलन के आधार पर किया गया है। जैसे कि मूल पाठ्य में बड़े भाई ह्योंग–चोल के लिए लिखा जाने वाला कोरियाई शब्द इस्तेमाल हुआ है जबकि इसके अंग्रेजी अनुवादक ने बड़े भाई या भाई के बजे/बजाय? संज्ञा का इस्तेमाल करते हुए नाम लिखा है। इसी प्रकार हिंदी में "साफ करना" और "पोंछना" शब्दों का इस्तेमाल अलग–अलग और भिन्न अर्थों में होता है। अगर मूल पाठ को देखें तो यहाँ साफ करने से ज्यादा "पोंछना" शब्द इस्तेमाल करना अधिक उपयुक्त होगा।

इस तर्क के आधार पर अगर मैं इस हिस्से का अनुवाद करने की कोशिश करूं तो मेरा अनुवाद कुछ इस प्रकार होगा :–

तुम उस घर की तीसरी बच्ची थी और तुमने अपने बड़े भाईयों के घर छोड़ने के बाद अपनी माँ के दुःख और दर्द को अपनी आँखों से देखा था। अपने बड़े भाई के चले जाने के बाद तुमने माँ को अहले सुबह हर दिन बनेरे पर रखे हुए मर्तबानों के बाहरी हिस्सों को पोंछते हुए देखा था।[2]

उसका हाथ जैसे काम नहीं कर पा रहा था। ऑक्टोपस खाते हुए तुमने कहा था, "माँ!" यह पहली बार था जब तुमने उसे "माँ" कहा था। (माँ का ध्यान रखना, 46–47 : 2012)

नीलाभ द्वारा अनूदित पंक्तियों को देखा जाये तो इसमें "हाथ जैसे काम नहीं कर पा रहा था" भावनात्मक नहीं बल्कि शाब्दिक अनुवाद महसूस होता है जो कि मूल पाठ के नजदीक नहीं है। मूल पाठ में हाथ के कांपने की बात कही गई है जिसका अंग्रेजी अनुवाद "Hands were not working" किया गया है। अगर सीधे कोरियाई भाषा से हिंदी में इन पंक्तियों का अनुवाद कुछ इस प्रकार किया जा सकता है जो मूल पाठ के ज्यादा करीब होगी :

उसके हाथों में ताकत नहीं दिख रही थी। ऑक्टोपस खाते हुए तुमने उसे "माँ" कहकर पुकारा था। यह पहली बार था जब तुमने "अम्मा" को "माँ" कहा था।

कुछ दिन बाद माँ ने फोन किया। "तुम पहले ऐसी नहीं थी, लेकिन तुम कैसी ठंडी हो गयी हो। अगर तुम्हारी माँ उस तरह फोन रख दे तो तुम्हें उसको वापस फोन करना चाहिए। तुम में इतनी जिद कहाँ से आयी?" (माँ का ध्यान रखना, 51 : 2012)[3]

इन पंक्तियों की तुलना इनके मूल पाठ से करें तो उसमें कुछ दिनों के लिए "तीन–चार दिन" शब्द का इस्तेमाल हुआ है, जिसे अंग्रेजी में Somedays कर दिया गया है। जिस तरह कोरियाई भाषा में तीन–चार दिन की अवधि के लिए "सानाहल" शब्द का इस्तेमाल किया जाता है जिसके लिए सटीक हिंदी शब्द "तीन–चार दिन" होगा न कि "कुछ दिन"।

इस तर्क के आधार पर मैं इन पंक्तियों का अनुवाद कुछ इस तरह से करूंगी :–

तीन चार दिनों बाद माँ ने खुद फोन किया। "तुम पहले ऐसी नहीं थी लेकिन अब तुम कठोर दिल इंसान हो गयी हो। अगर तुम्हारी माँ बातें करते हुए बीच में ही फोन रख दे तो तुम्हें उसको खुद से फोन करना चाहिए। तुम इतनी जिद्दी कैसे हो सकती हो?"

अनुवाद एक श्रम साधना का काम है और जब यह अनुवाद किसी विदेशी भाषा से किया गया हो तो यह श्रम और साधना दोगुनी हो जाती है। एक सफल अनुवाद वही होता है जिसमें लक्ष्य भाषा के पाठकों को मूल भाषा का स्वाद मिले और और उनकी पठनीयता प्रभावित न हो। कोरियाई साहित्य के हिंदी अनुवादों में इस गुण की कमी दिखाई पड़ती है क्योंकि इनमें से अधिकतर अनुवाद सीधे मूल साहित्य से न होकर अंग्रेजी के माध्यम से हुए हैं। फलस्वरूप पाठकों को भाषा की सांस्कृतिक खूबसूरती और पठनीयता से समझौता करना पड़ता है। इसके अलावा अनुवाद के कृतियों का चुनाव भी महत्वपूर्ण होता है। कई बार ऐसा होता है कि स्त्रोत भाषा में सराही गई कृति सांस्कृतिक विभिन्नता और रूचि के कारण लक्ष्य भाषा के पाठकों को पसंद नहीं आती है। इसलिए अनुवाद के विषयों का चयन भी एक मुख्य कारक हो सकता है।

इसके साथ ही अनुवाद करते समय तकनीकों का प्रयोग भी उतना ही आवश्यक है। आज के इस तकनीक वाली दुनिया में ऐसी कोई भी चीज नहीं रह गई है जो इससे अछूता रहा गया हो। भाषाई सीमाओं से जुड़ी समस्याओं से निबटने के लिए आज के दौर में तकनीक का इस्तेमाल एक कारगर उपाय है। अब गूगल ट्रांसलेटर और ऐसे कई अन्य तरह के ऐप हैं जिससे मूल भाषा के शब्दों का उच्चारण और उनके विभिन्न अर्थों को जाना और समझा सकता है। यह तरीका खासकर विदेशी भाषा से अपनी भाषा में अनुवाद करने के क्रम में एक हद तक मददगार साबित हो सकता है। अनुवादक वोयाइस एप (ध्वनि एप) के माध्यम से मूल भाषा के सांस्कृतिक शब्दों, संज्ञा आदि का उच्चारण सुनकर उसका लिप्यांतरण कर सकता है। अनुवादक इन तकनीकों

और तरीकों के माध्यम से अनुवाद की प्रक्रिया में आने वाली भाषाई सीमाओं और चुनौतियों से एक हद तक निबट सकते हैं और अनूदित किताब की गुणवत्ता और उसकी पठनीयता का स्तर मूल कृति के समानांतर लाने की कारगर कोशिश की जा सकती है।

संदर्भ :-

1. सूक शिन क्यंग, अम्मा रूल बुथाक हे (2008) छांगबी प्रकाशन, दक्षिण कोरिया।
2. यंग, कीम जी, प्लीज लुक आफ्टर मॉम (2011) क्नोप प्रकाशन, न्यू यॉर्क।
3. नीलाभ, माँ का ध्यान रखना (2012), नई दिल्ली, राजपाल एण्ड संस।

Email : prabhatranja@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 124-130

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ज्ञान प्रकाश विवेक के उपन्यासों में पारिवारिक विघटन

सुमन लता

सहायक आचार्या, हिंदी विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार, हरियाणा।

परिचय :-

परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई होने के कारण इसे छोटा समाज भी कहा जाता है। जिस प्रकार वृहत समाज में सभी छोटे–बड़े स्त्री–पुरुष अंतःक्रिया से संबंध स्थापित करते हैं। उसी प्रकार परिवार भी संबंध स्थापित करने और उनकी अंतःक्रिया पर टिका हुआ है, 'परिवार एक जैविक इकाई है जिसमें पति–पत्नी के मध्य संस्थाई कृत संबंध स्थापित होते हैं। परिवार की विशेषता इसका जैविक संबंध है। इसके सदस्य अन्य किसी समूह की अपेक्षा जनन की प्रक्रिया द्वारा एक–दूसरे से निकटवर्ती संबंधित होते हैं। यह यौन के तथ्य पर आधारित है। जिसका महत्वपूर्ण कार्य बच्चों का जनन एवं पोषण है। यह समिति और संस्था दोनों हैं।'[1] इस प्रकार परिवार यौन संबंधों पर आधारित एक निश्चित एवं स्थाई संस्था है। इसका मुख्य कार्य संतति जनन एवं पालन–पोषण है। यह एक सार्वभौमिक समूह है। जिसके सदस्य एक दूसरे से भावात्मक आधार पर जुड़े होते हैं।

परिवार एक सार्वभौमिक समूह है। इसके विघटन के कारण भिन्न हो सकते हैं। स्वतंत्रता के बाद भारतीय सामाजिक संरचना में परिवर्तन के साथ व्यक्तियों की सोच में काफी परिवर्तन आया है। पारिवारिक विघटन का एक मुख्य कारण महिलाओं की स्थिति एवं भूमिका परिवर्तन है। शिक्षा के प्रसार एवं घर से बाहर धनोपार्जन से संबंधित कार्य करने के कारण स्त्री की दोहरी भूमिका से पारिवारिक तनाव बढ़ने लगे हैं। परिवार के कार्यों पर असर पड़ा है। स्त्री के कार्य बढ़ गए हैं, लेकिन पुरुष उसकी किसी प्रकार की कोई मदद नहीं करना चाहता है। पारिवारिक संगठन सहयोग, एकमतता, निष्ठा एवं प्रेम पर निर्भर करता है। व्यक्तिवादी मनोवृतियों में वृद्धि के कारण परिवार के नींव डगमगाने लगती है। दांपत्य संबंधों में अविश्वास, वैचारिक विभिन्नता, समान पृष्ठभूमि का न होना, शारीरिक एवं मानसिक असक्षमता से युक्त दोषपूर्ण व्यक्तित्व, सम्मान एवं प्रेम की कमी के कारण भी पारिवारिक विघटन हो जाता है। जी. के. अग्रवाल के अनुसार पारिवारिक विघटन, 'परिवार में जिस चेतना और निष्ठा के आधार पर सदस्य एक दूसरे से बंधे रहते हैं और असीमित दायित्व की भावना को महसूस करते हैं, उसी चेतना और निष्ठा का कम हो जाना अथवा इसमें कोई गंभीर बाधा पड़ना ही पारिवारिक विघटन है।'[2]

पारिवारिक विघटन का अर्थ है केवल पति–पत्नी के संबंधों में विघटन ही नहीं बल्कि माता–पिता, भाई–बहन एवं संतान के संबंधों में तनाव का अर्थ भी पारिवारिक विघटन है। व्यक्तिवादी मनोवृति एवं अपनेपन के अभाव के कारण पारिवारिक संबंधों में बदलाव आ रहा है। पारिवारिक संबंधों में अलगाव का कारण सहयोग

एवं सामंजस्य की कमी, प्रेम का अभाव व व्यक्तिवादी मनोवृति का विकास है। जिसके कारण एक परिवार में रहते हुए परिवार के सभी सदस्य एक दूसरे के साथ नहीं हैं।

जे० पी० के अनुसार, 'पारिवारिक विघटन से अभिप्राय पारिवारिक संबंधों में बाधा पड़ना है। यह संघर्षों के क्रम का वह चरम रूप है, जिसने परिवार की एकता को खतरा पैदा कर दिया है। यह संघर्ष किसी भी प्रकार का हो सकता है। संघर्ष के इसी क्रम को पारिवारिक विघटन कहा जाता है।'[3]

पारिवारिक संबंधों में असामंजस्य, अविश्वास और व्यक्तिवादी मनोवृति में वृद्धि के कारण सामाजिक इकाई के रूप में परिवार सही रूप से कार्य नहीं कर पा रहा है। पश्चिमीकरण, नगरीकरण व महिलाओं की सोच, स्थिति एवं भूमिका परिवर्तन, भौतिकतावाद व व्यक्तिवादी मनोवृतियों के कारण परिवार विघटन की ओर तेज गति से बढ़ रहा है। ज्ञान प्रकाश विवेक प्रतिभा संपन्न साहित्यकार है। इनके उपन्यासों में पारिवारिक विघटन के अनेक रूप दिखाई देते हैं।

पति–पत्नी के संबंधों में अलगाव :-

भारतीय समाज में विवाह को पवित्र बंधन एवं धार्मिक संस्कार माना जाता है। पति–पत्नी जीवन रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। जीवन के सुचारू रूप से संचालन के लिए आवश्यक है कि दोनों पहियों में सामंजस्य बना रहे यदि दोनों में से किसी एक के मन में भी अविश्वास आ जाता है, तो जीवन की गाड़ी डगमगाने लगती है। पति–पत्नी अग्नि को साक्षी मानकर एक दूसरे के सुख–दुख में हाथ बंटाते हैं, लेकिन स्वार्थ के कारण यह बंधन टूटने लगता है।

दांपत्य संबंध विश्वास से बंधे हुए होते हैं। विश्वास के अभाव में शक रिश्ते के विघटन का कारण बन जाता है। 'दिल्ली दरवाजा' उपन्यास की मीता नाटकों में काम करती हैं इसलिए वह देर रात तक घर लौट कर आती है। इसी कारण से परेश उस पर शक करता है, 'परेश से शादी करना', मीता ने कहा। गहरी सांस ली। 'परेश... हॉरिबल! जिंदगी का सबसे गलत स्टेप था उससे शादी करना।... आरती! शादी करने के बाद उसका व्यवहार एकदम बदल गया।... मुझ पर फेथ नहीं रहा था उसे।... शक करता था वो।... संशय! संशय की छाया ने सब कुछ नष्ट कर दिया आरती! वह मुझ पर शक करता था।... क्या बताऊं तुम्हें? अपनी प्रॉपर्टी समझने लगा था मुझे।'[4] परेश और मीता के वैवाहिक संबंधों का विघटन शक के कारण हो जाता है।

'तलघर' उपन्यास की पात्रा देवयानी पर उसका पति मनीष सभरवाल शक करता है। शक के कारण वह ताला लगाकर उसे कैद रखता है। फिर भी उसके मन में शक बना रहता है कि देवयानी के पास दूसरी चाबी है, 'सीने में संशय की कील गड़ जाए तो उसका निकलना मुश्किल होता है।' देवयानी की आवाज में जैसे परिंदा फड़फड़ाया हो।

'वो आप पर शक करते थे', चेतन बोला।

'वो मुझ पर शक करते थे। उनका शक किसी ला–इलाज बीमारी की तरह था चेतन।.. वो ऑफिस में जाते। मैं घर में होती। वो बाहर ताला लगा कर जाते। देवयानी ने जैसे अपने मन की पीड़ा व्यक्त की हो।'[5] 'गली नंबर तेरह' उपन्यास में अपाहिज महिला की सड़क दुर्घटना के कारण टांग काटनी पड़ती है। अपाहिज होने के कारण उसके पति को उसके साथ चलते हुए शर्म आती है और इसी कारण वह उसे छोड़ देता है, 'एक प्रश्न पूछूं?' उसने तिलमिलाती आवाज में कहा। फिर खुद–ब–खुद बोली, बताओ, क्या प्यार की भीख मिल

सकती है? नहीं न। और पति...पति अनुदान में नहीं मिला करते। मुझे लगा कि मैं पति को अनुदान में प्राप्त कर रही हूं। और एक दिन मैंने साफ–साफ कह दिया आप चाहे तो मुझे छोड़ सकते हैं... और उसने मुझे छोड़ दिया।'[6]

'हां दूसरा हादसा। पहले हादसे से कहीं ज्यादा गंभीर। पहले हादसे में मेरी टांग काटी थी और दूसरे हादसे से में मैं खुद कट गई। काटने वाला मेरा अपना पति था मेरा पति।'[4]

वह अपने पति को तलाक दे देती हैं, क्योंकि रिश्तो को भीख से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। व्यक्तिवादी मनोवृति, रागात्मक संबंधों का अभाव, पुरुष की उपयोगवादी व स्वार्थी दृष्टिकोण के कारण का दांपत्य संबंधों का विघटन हो जाता है।

'आखेट' उपन्यास में राज भसीन की पत्नी द्वारा इंद्रिय सुखों को चारित्रिक शुचिता से अधिक महत्व दिए जाने के कारण पति–पत्नी के रिश्ते में विघटन होने का उद्‌घाटन लेखक ने किया है, 'कुछ साल तक ठीक–ठाक चलता रहा। लेकिन बाद में राज भसीन का घर 'सालवेज' में बदल गया। सरिता भसीन पछतावे की आग में झुलसने लगी। हमेशा द्वंदग्रस्त। एक दिन उसने शीशे को तोड़ डाला। तो एक दिन उसने अपने कई सूट कैंची से काट दिये। राज भसीन पघ्ढ़ाकू जीनिअस... सरल और सीधा राज भसीन इतना चुप रहने लगा कि उसकी आवाज ही खो गयी।'

वैवाहिक संबंधों का आधार यौन संबंधों की पूर्ति एवं संतान उत्पत्ति है। जीवन के सहज विकास के लिए यौन तृप्ति आवश्यक है लेकिन पौरुष की अपूर्णता से यौन–भावनाएं अतृप्त रह जाती हैं। इस विकलांगता से ग्रसित पुरुष मानसिक रूप से अतृप्त एवं हीनत्व से भर उठता है।

'अस्तित्व' उपन्यास का अतुल पुंसत्वविहीन है। इसी कारण से वह हताश और निराश है। पौरुषजन्य हीनता के कारण अतुल सरयू को तरह–तरह की शारीरिक पीड़ाएं एवं मानसिक यातनाएं देता है 'वह जाने लगी तो उसने सवाल दोहराया। उसने दृढ़ता से कहा, 'विश्वास करना सीखिए अतुल जीं... विश्वास वही करते हैं जो संशय के अंधेरे मार चुके होते हैं।'[5]

'आप तो अच्छी खासी कथावाचक है मैडम!' अतुल के लहजे में कटाक्ष था। 'प्लीज अतुल जी। बाद में बातें कर लेंगे। इस वक्त में परेशान हूं। कुछ ऐसी बातें होती हैं जिन्हें स्त्री कह नहीं पाती।'[6] सरयू समझ गई थी कि वह शख्स हर नहीं मानेगा। उसने शाल में जो सेनेटरी पैड छुपा रखा था उसे अतुल के सामने फेंक–सा दिया। उसकी आंखें हैं नम हो गयीं। स्त्री बेपर्दा हो तो आंसुओं को उस बेपर्दगी की की खबर पहले लगती है। अतुल से टकराना हर बार उसके लिए दुखद होता है। वह किसी भी दंश की तरह चुभता। किसी सुरंग की तरह उसके भीतर उतर जाता। किसी आततायी की भांति आता और उसे तहस–नहस कर जाता। ऊपरी तौर से वह कोमल होती। लेकिन भीतर से उजड़ जाती। अतुल से उसका सबसे नजदीकी रिश्ता था और वह उससे सबसे ज्यादा घृणा करती थी।

'मुझे जीवन एक बार जीना था– उसे अतुल नाम की 'सेडिस्ट' के साथ जो हर बार किसी छुपे हुए ग्लेशियर की तरह, मेरे सुकून के जहाज को तोड़ डालता। मुझे हर बार लगता, उसकी दो सर्द, भेदती आंखें मेरा पीछा कर रही है।'[7]

अतुल के पास बहुत सारी कारें थी। बहुत थोड़ी विनम्रता थी या शायद बिल्कुल नहीं थी। वह बहुत

जटिल था। इतना जटिल की सरयू के द्वारा हजारों कोशिशों के बावजूद भी वह समझ नहीं पाई थी कि वह चाहता क्या है? वह उसे मारता। चुप रह जाती इस उम्मीद के साथ कि आने वाला दिन अच्छा ही होगा। उसका मारना, 'जैसे मेरे स्त्रीत्व का, जैसे मेरे अस्तित्व का अपमान हो। मुझे मारने के बाद भी, ऐसा लगता है जैसे वह पराजित हुआ है। मुझे ऐसा लगता।'[8]

अतुल व सरयू के संबंधों का विघटन अतुल की शारीरिक असक्षमता के कारण हो जाता है।

'नई दिल्ली एक्सप्रेस' उपन्यास की पात्रा के साथ उसका पति लड़ाई और मारपीट करता है। इसी कारण से वह मर जाना चाहती है, एक औरत दूसरी औरत से पूछ रही है, मौत के अलावा कोई और रास्ता है जिंदगी जीने का?'

अब वह मेरा नहीं, मेरी आत्मा का, मेरे जीवन का निरादर कर रहा है। ये देख! कल रात उसने कहा, मैडम! तुम मेरी वाइफ हो और वाइफ 'ऐश–ट्रे' भी होती है। उसने कहा और जलती हुई सिगरेट मेरी छाती पर मसल दी।... ये देख निशान।'[4]

'व्हीलचेयर' उपन्यास की पात्रा संगीता आकाश की पत्नी है उसे अधूरेपन से नफरत है इसलिए वह आकाश को छोड़कर अलग रहने के लिए चली जाती है, 'आकाश पर मर मिटने वाली संगीता आकाश से घृणा करती है। आकाश उसका पति है, वो इस शब्द की ताशीर को खत्म कर देना चाहती है। आकाश के साथ संगीता का व्यवहार बहुत है अविश्वसनीय–सा प्रतीत होता है खुद आकाश को। कोई इतना प्यार करने वाला इतना ज्यादा चिढ़ने लगे, ऐसा होता तो नहीं। लेकिन ऐसा हुआ जरूर है। आकाश के साथ हुआ है। एक स्त्री जो बहुत प्रेम करती थी, विकलांगता के बाद उस स्त्री की इतनी अधिक बेरुखी। उपेक्षा, जिसमें घृणा, किसी फंगस की तरह है।'[5]

पिता–पुत्र के संबंधों में अलगाव–पिता परिवार का पालनकर्ता है। धार्मिक दृष्टि से पुत्र की प्राप्ति आवश्यक मानी गई है। बुढ़ापे में पुत्र पिता की सेवा करता है और मृत्युपरांत उसकी चिता को अग्नि देकर मोक्ष का रास्ता प्रशस्त करता है। आजीविका की तलाश में युवक एक शहर से दूसरे शहर जाने को मजबूर हैं। पीछे उसके बूढ़े माता–पिता घर में अकेले रह जाते हैं। कभी वे अजनबी शहर के कारण साथ नहीं जाना चाहते हैं, तो कभी पुत्र अपने साथ रखने में कोई रुचि नहीं रखता है। 'गली नंबर तेरह' उपन्यास में बूढ़े आदमी का बेटा दूसरे शहर जाकर बस जाता है और वहां से अपने पिता का हाल–चाल पूछने के लिए वह कभी नहीं आता है। वर्तमान में पुत्र कुछ पैसे भेज कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। उन्हें पिता के अकेलेपन से कोई वास्ता नहीं होता है। वे बुढ़े माता–पिता की सेवा करना एवं उनकी देखभाल करना कर्तव्य नहीं समझते हैं।

'गली नंबर तेरह' उपन्यास का पात्र कुमार पिता के प्रति अपने फर्ज को भूल जाता है। आजकल पिता –पुत्र के रिश्त एलबम में रखी गई तस्वीरों की तरह हो गए हैं जो सिर्फ यादें हैं, 'सच क्या है? यकीन क्या है? प्रेम क्या है? यह रिश्तो का विघटन है या भविष्य को समझने की कारगर कोशिश ! एलबम... इसे एलबम ने समझूं तो और क्या समझूं? ठोंगे बनाते कुमार के पिता और विज्ञापन कंपनी की चुंधियाती दुनिया में खड़ा कुमार...'[6]

'अस्तित्व' उपन्यास में अविनाश और उसके पिता के मध्य संबंध तनावपूर्ण है। उसका पिता उसे संवेदनहीन व्यवसायी बनाना चाहता है अविनाश का पिता अर्थ और भौतिक सुख–सुविधाएं जुटाने में व्यस्त होने के कारण परिवार को समय नहीं दे पता है, 'आज मैंने पिताजी से साफ–साफ कह दिया कि मैं बेवजह डाकिया

बनकर, फैक्ट्रियों में नहीं घूमना चाहता। मुझे बहुत बड़ा साम्राज्य नहीं चाहिए। मैं कालिगुला नहीं बनना चाहता। अविनाश ने डायरी में पिताजी के विषय में दुखी होकर लिखा है, 'पिताजी फोन करने में व्यस्त रहते हैं या फाइलें पढ़ने में। तीन फैक्ट्रियों का साम्राज्य खड़ा करने वाला मेरा पिता, मुझे इस शहर का सबसे बड़ा भिखारी लगता है। कुछ भी तो नहीं उनके पास न पत्नी न बच्चे। यहां तक कि वह खुद भी अपना भी नहीं हो सका।'

'एक शाम मैंने पिताजी को छत पर अकेले बैठकर रोते हुए देखा। मैं चुपचाप छत से नीचे उतर आया। रोना आदमी की कमजोरी होती है।'

पिता पुत्र के संबंधों की मजबूती के लिए आवश्यक है कि आर्थिक जरूरत पूरी करने के साथ मानसिक एवं भावात्मक जरूरतों को पूरा करना नैतिक दायित्व है।

मां-पुत्र के संबंधों में अलगाव :-

मां बच्चे को जन्म देती हैं व उसका पालन–पोषण करती हैं। इसी कारण से मां को गुरु व भगवान का सबसे बड़ा दर्जा दिया जाता है। मां, बच्चे की पहली शिक्षिका है। मां भी अपने व्यक्तित्व की पूर्णतया संतान को जन्म देने में ही समझती है। मां–पुत्र के संबंधों में ही सबसे अधिक मधुरता होती है 'आज व्यक्तिगत स्वार्थ, मूल्यों के नैतिक पतन एवं आर्थिक स्वार्थों के कारण मां–बेटे के संबंधों में विघटन दिखाई देता है।'

'अस्तित्व' उपन्यास का अविनाश अपनी मां की बिगड़ती हालत के प्रति अकेला चिंतित था 'मां घोर अवसाद में घिरी रहती है। मैं मां का दयनीय चेहरा देखता रहता हूं। यही मां थी, नाक पर मक्खी नहीं बैठने देती थी।... क्या से क्या हो गयी मां। सब व्यस्त थे। मां अकेली होती चली गयी। पहले वह लोगों के लिए तरसती थी। अब कोई उसके कमरे में चला जाए तो वह डर जाती है। अतुल मां को थप्पड़ मारता है। मूल्यों के विघटन एवं मां बेटे के संबंधों में अलगाव का इससे चरमोत्कर्ष रूप क्या हो सकता है, 'आज का दिन इस घर के लिए सबसे खराब दिन है। आज अतुल ने मां को मारा है।...मां ने इस घर को मरते देखा है। मरी है मां भी। थोड़ा–थोड़ा।... और आज अतुल ने मां को मारा है। आज घर की मर्यादा पूरी तरह मर गयी है।'

'नई दिल्ली एक्सप्रेस' उपन्यास में कमला का बेटा अपनी मां को घर से निकाल देता है। जिस मां ने उसे जन्म दिया है, उसका पालन–पोषण किया है। आज वह उसी मां को घर पर नहीं रहने देना चाहता है, 'कुछ दिन पहले उसके बेटे और बहू ने उसे घर से निकाल दिया था। रात–भर बाहर पड़ी रही। सर्दी के दिन थे। ठिठुरती रही। देह अकड़ जाती तो अच्छा होता। पर कमला ने पुराने जमाने का खाया–पिया था। मरी नहीं। सुबह लोगों ने देखा। गली मोहल्ले के लोग इकट्ठा हुए। लानत–बलामत। आखिर, फरमाबरदार बेटा बाहर एक कमरा देने को राजी हो गया, उसकी शर्त ये थी कि मां घर के अंदर नहीं घुसेगी।'[4]

'गली नंबर तेरह' उपन्यास की पात्रा मारिया के बच्चे विदेश चले जाते हैं और उसे अपने बच्चों के घर वापस आने की कोई उम्मीद नहीं है। अकेलेपन के कारण मारिया कमजोर हो चुकी है, 'इतने बड़े बंगले में आप अकेली, घबराहट नहीं होती आपको मदर?'

'होती है बहुत होती है।'

'मदर, आपका कोई सगा संबंधी...?'

'थे, बहुत थे...।'

'कौन?'

'इस गली–मोहल्ले के इतने सारे बच्चे, मेरे अपने बच्चे ही तो थे। पर अब कोई भी इधर नहीं आता। देखा तो सामने के मैदान में कितना डरावना सन्नाटा फैला हुआ है।'

परिवार में वृद्धो की स्थिति :-

भारतीय संस्कृति सदैव विश्व की अन्य संस्कृतियों से श्रेष्ठ एवं समृद्ध रही है। हमारी संस्कृति की पहचान के मुख्य अंग मानवीय मूल्य, संवेदना, शिष्टाचार, रिश्तों की प्राथमिकता, आदर्श जीवन शैली, बच्चों के प्रति प्रेम, महिलाओं एवं वृद्धो को सम्मानित स्थान दिया जाना है। जिस तीव्रता से भौतिक विकास हुआ है। उसी गति से मानवीय मूल्य एवं संवेदनाओं का विनाश हुआ है। समाज की नींव परिवार अब अपने अस्तित्व का खतरा अनुभव कर रही है। संयुक्त परिवारों के विघटन के कारण परिवार अब केवल पति–पत्नी एवं बच्चों तक सीमित होकर रह गया है। जिसका सबसे विपरीत प्रभाव परिवार के वृद्धों पर पड़ रहा है। 'तलघर' उपन्यास का पात्र निरंजन बीमा कंपनी से रिटायर हो चुका है। उसकी पत्नी व बच्चे उससे नाराज रहते हैं। उसके बेटे बड़े होने पर उसे अकेला छोड़कर विदेश चले जाते हैं, 'बच्चे बड़े हुए और समझदार भी। इतने समझदार कि उन्हें पिता के बॉरक्स कैरियर ज्यादा उपयोगी, ज्यादा अपना और ज्यादा सार्थक लगा। चेतनदास ही मूर्ख निकले। तभी तो सेक्टर उन्नीस के अस्सी नंबर फ्लैट में एक अकेले। कभी अपने साथ आइस–पाइस खेलते तो कभी स्मृतियों के साथ।'

नातेदारी में विघटन :-

'आखेट' उपन्यास में रजत के माता–पिता की मृत्यु हो जाती है। वह अपने चाचा के पास रहता है। उस परिवार के सदस्य उसे अपमानित करते हैं। परिवार में रजत अकेलापन महसूस करता हैं। वह अकेला, पूरे संसार में अकेला था। न तो मां थी और न बाप था। यहां तक कि भाई, बहन भी नहीं थे। उसके परिवार के सभी सदस्य बस दुर्घटना में सब मारे गये। बचा रजत अकेला। चाचा ने उसका पालन–पोषण किया। पढ़ाया। बड़ा किया। घर में केवल चाचा जी ही रजत के प्रति संवेदनशील थे। बाकी सब रजत के से घृणा करते थे। अकेलापन, तिरस्कार, उपेक्षा एवं कष्ट इनके निहित अर्थ क्या होते हैं? रजत ने छोटी उम्र में ही समझ लिया था। जब वह बी.ए. में पढ़ रहा था। उसे कोर्स के अतिरिक्त अन्य किताबें पढ़ने का भी शौक था।

'डरी हुई लड़की' उपन्यास में लेखक ने नंदिनी के माध्यम से रिश्तेदारों की विघटित चरित्र का उद्‌घाटन किया है। नंदिनी के माता–पिता की मृत्यु के पश्चात कोई भी रिश्तेदार उसे अपने पास नहीं रखना चाहता है लेकिन सभी नंदिनी की संपत्ति को हड़फना चाहते हैं। नंदिनी की जिम्मेदारी कोई भी नहीं लेना चाहता है। अंत में नंदिनी की एक मौसी उसे अपने पास रखने के लिए तैयार हो जाती है। अपनी शर्तों पर जो नातेदारी में स्वार्थ एवं लालच को वर्णित करता है, 'उनकी पहली शर्त यह थी कि महेश नगरवाला मकान उनके नाम होगा। दूसरी शर्त यह थी कि बबियाल में आठ दस बीघा जमीन भी उनकी हो जाएगी। तीसरी शर्त थी कि लड़की घर के सारे काम करेगी। यानी मौसी मुझे एक नौकरानी की तरह ले जा रही थी। उनकी एक शर्त यह भी थी कि घर के किसी भी सदस्य के आगे मैं अपना मुंह नहीं खोलूंगी। जुबान बंध रखूंगी। यानी उस घर में मेरा दर्जा किसी देवदासी जैसा नहीं तो दासी जैसा जरूर था।'

एक दिन घर में कोई नहीं था। नंदिनी की मौसी ने मौके का फायदा उठाया। उसने नंदिनी का मुंह दबोच लिया। उसकी उत्तेजना ने उसे डरा दिया। वह अपने आप को बचाने में लगी रही। किसी तरह से वह अपने आपको उस वहशी के चंगुल से छुड़ाकर भागी।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि ज्ञान प्रकाश विवेक ने अपने उपन्यासों में आधुनिक परिवार, उनकी समस्याओं एवं विघटन के करणों के वर्णन करने में संवेदनशील एवं पैनी दृष्टि का परिचय दिया है। औद्योगीकरण के प्रभाव से बढ़ते एकल परिवार, बदलती परिस्थितियों के कारण महिलाओं की भूमिका एवं स्थिति परिवर्तन, अपाहिज होने पर स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण किसी एक के छोड़ने पर पारिवारिक विघटन हुआ है। माता–पिता एवं संतान के संबंधों में विघटन का कारण संतान द्वारा स्वार्थी एवं उपेक्षित व्यवहार, नैतिक मूल्यों एवं संवेदनाओ का अभाव, पारिवारिक जीवन को स्थायित्व देने वाले सहयोग, प्रेम, निष्ठा, सहानुभूति एवं सहनशीलता जैसे मानवीय मूल्यों का विघटन हुआ है। ईर्ष्या, स्वार्थता, व्यक्तिवादी मनोवृति, उन्मुक्त यौन संबंध, असहयोग एवं असामंजस्य जैसे मनोभावों की वृद्धि से पारिवारिक विघटन बढ़ा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. भूषण, विद्या, सचदेवा, डी० आर०, समाजशास्त्र, नई दिल्ली : 2012, पृष्ठ 125
2. अग्रवाल, डॉ० जी० के०, सामाजिक विघटन, आगरा : एस.बी.पी.डी. पब्लिशिंग हाउस, 2010, पृष्ठ 36
3. सिंह, (डॉ०) जे०पी०, समाजशास्त्र : अवधारणाएं एवं सिद्धांत, नई दिल्ली : प्रेंटिस हॉल ऑफ इंडिया प्राईवेट लिमिटेड 2006, पृष्ठ 106
4. विवेक, ज्ञानप्रकाश, दिल्ली दरवाजा, नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 2011, पृष्ठ 115
5. विवेक, ज्ञानप्रकाश, तलघर, नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 2012, पृष्ठ 73
6. विवेक, ज्ञानप्रकाश, गली नंबर तेरह, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1998, पृष्ठ 51, 52
7. विवेक, ज्ञान प्रकाश, आखेट, नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 2011 पृष्ठ 72
8. विवेक, ज्ञानप्रकाश, अस्तित्व, नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 2005, पृष्ठ 163
9. विवेक, ज्ञानप्रकाश, नई दिल्ली एक्सप्रेस, नई दिल्ली : विजया बुक्स, 2019, पृष्ठ 55, 56
10. विवेक, ज्ञानप्रकाश, व्हीलचेयर, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2023, पृष्ठ 73
11. विवेक, ज्ञानप्रकाश, गली नंबर तेरह, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 1998, पृष्ठ 97
12. विवेक, ज्ञानप्रकाश, अस्तित्व, नई दिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ, 2005, पृष्ठ 206,205
13. विवेक, ज्ञानप्रकाश, नई दिल्ली एक्सप्रेस, नई दिल्ली, विजया बुक्स, 2019, पृष्ठ 57
14. विवेक, ज्ञानप्रकाश, गली नंबर तेरह, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन 1998, पृष्ठ 66
15. विवेक, ज्ञानप्रकाश, तलघर, नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 2012, पृष्ठ 143
16. विवेक, ज्ञानप्रकाश, डरी हुई लड़की, नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, 2016, पृष्ठ 164

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 131-134

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

काला पहाड़ के परिप्रेक्ष्य में हिंदू–मुस्लिम एकता

सुषमा

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, हिसार।

देश में समय–समय पर राजनीतिक रूप से ध्रुवीकरण होता रहा है। लोग अपने स्वार्थ के लिए समय–समय पर हिंदू–मुस्लिम के नाम पर सांप्रदायिक दंगे करवाते रहे हैं। देश में ऐसा माहौल बनाने की कोशिश करते है जिससे हमारे देश में मुगलों के समय से चले आ रहे हिंदू एवं मुसलमान के बीच आपसी सौहार्द और भाईचारे की भावना के बीच दरार पैदा की जा सकें। कुछ लोगों की बदौलत इन चंद लोगों की महत्वाकांक्षा कभी भी अपने मुकाम तक नहीं पहुंच पाई। इनमें से एक नाम भगवान दास मोरवाल जी का है उन्होंने काला पहाड़ के माध्यम से मेवात क्षेत्र में हिंदू मुस्लिम लोगों के बीच सांझी संस्कृति का वर्णन विस्तार के साथ किया है। भगवान दास मोरवाल जी ने अपने साहित्य में मेवात क्षेत्र के भौगोलिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक जीवन का वर्णन किया है। मेवात क्षेत्र दिल्ली से सट्टा एक हरियाणा का जिला है। इस क्षेत्र की विशेषता यह है कि इस क्षेत्र में मुस्लिम बहुल मात्रा में रहते हैं तथा हिंदुओं की संख्या कम है। इस क्षेत्र की विशेषता यह है कि यहां हिंदू तथा मुस्लिम बड़े ही प्रेम तथा सद्भावना के साथ रहते हैं। ऐसा हमें भगवान दास मोरवाल के 'काला पहाड़' उपन्यास तथा उनके अन्य साहित्य को पढ़कर पता चलता है। काला पहाड़ में हमें सलेमी तथा मनीराम की दोस्ती की मिसाल दिखाई देती है।

जब 1992 में बाबरी मस्जिद गिराई गई थी तब पूरे देश में हमें उसका प्रभाव देखने को मिला था पर मेवात क्षेत्र में उसे समय भी शांति बनी रही तथा लोगों में इस मुश्किल घड़ी में एक दूसरे का साथ दिया था। उन्हें इन सबसे कोई मतलब नहीं था।

अरे झगड़ा–वगड़ा कुछ भी ना है..... इन नेताओं ने काम तो कुछ है ना शिवाय झगड़ा–फसाद करवाणा के..... ऐसा ही हमारा ये करीम हुसैन और मुरसीद अहमद इकट्ठा हो रहा हैं..... यह भी चाहवे हैं कि या इलाका में कुछ ना कुछ होतो रहे..... अरे इलाका की फिकर तो इन्न है ना उल्टा एक दूसरे ने लड़ता डोला हैं।[1]

हिंदू मुस्लिम आपस में मिलकर एक दूसरे के तीज–त्यौहार को मानते हैं तथा एक दूसरे के रीति–रिवाजों को, रस्मों को महत्व देते हैं। मोरवाल जी के साहित्य में हमें हिंदू–मुस्लिम का पता ही नहीं चलता क्योंकि उनकी बोली पहनावा तथा शादी–विवाह की रस्में भी एक जैसी ही दिखाई पड़ती हैं। वे एक दूसरे के देवी–देवताओं को भी अपने श्रद्धेय मानते हैं तथा उतनी ही श्रद्धा तथा विश्वास करते हैं जितना अपने धर्म के देवी–देवताओं में करते हैं। काला पहाड़ में एक जगह पर बाबू तथा तरकीला में आपस में चाक पूजने को लेकर बहस हो रही है.....

अरे मेवन् में अब कौन पुजवाए है चाक– वाक 5–7 घड़िया–मटका वैसेई लिअइओ..... और फिर ये सब तो हिंदून का चोंचला हैं हमारा हदीस में कहान् लिक्खी है कि मुसलमान का बालकन् का बिहा में चाक पुजवायो जाए..... तैने सुनी ना ही के तेरा भाई ने बिहा भिजवाते बखत मतीन नाई सू साफ–साफ कहवा दी ही के बिहा सरीअत और हदीस के बीच होणो चाहिए.....।'[2]

हमेशा सुनने में आता है कि देश में सांप्रदायिक दंगे हो रहे हैं। लोग एक दूसरे की जान के दुश्मन है। कोई धर्म के नाम पर मंदिरों तथा तो कोई मस्जिदों को तोड़ रहा है पर अगर हम वास्तविक धरातल पर जाकर देखते हैं तो पाते हैं कि ऐसा कुछ भी नहीं है। यह सब अपनी राजनीतिक मंशाएं पूरी करने के लिए राजनेताओं द्वारा फैलाया जाता है कि फलां खतरे में है, फलां पर फलां ने अधिकार स्थापित कर लिया है। मगर हम जब धरातल पर जाते हैं तो पता लगता है कि लोग आपस में कितने भाईचारे के साथ रहते हैं तथा एक दूसरे का दुख–सुख में साथ देते हैं। ऐसा ही कुछ नजारा हमें काला पहाड़ में दिखाई देता है जब करीम हुसैन खुद इस बात को कबूल करते हैं.....

और भाइयों हमें अपना या इलाका पर बहुत फखर है कि आज तलक यामें कोई फिरकाना फसाद ना हुआ है सबसू बड़ी बात तो ई है के या इलाका में हिंदू और मेव एक कुणबा की तरह रहता आया हैं.... मजाल है कोई काई की बहाण–बेटी पर आंख तो उठ जाए.....।'[3]

लेखक अपने उपन्यासों मे दिखाने की कोशिश की है कि कुछ असामाजिक तत्व नहीं चाहते कि इस संप्रदायों के बीच भाई–चारा बना रहे वह मिलकर अपना जीवनयापन कर सकें। कुछ लोग धार्मिक उन्माद फैलाने के लिए जिन घरों पर हरे झंडे लगे हुए थे उनको उतार कर फेंकते हैं तथा वहां भगवा फहराने की नाकाम कोशिश करते हैं। परंतु इन गिने चुने छुट–पुंजियों लोगों की वजह से मेवाती लोगों के आपसी समझदारी व भाईचारे पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता तथा यह सांप्रदायिक आग जितनी जल्दी लगती है उतनी जल्दी शांत भी हो जाती है।

अगर हम बात धार्मिक सहिष्णुता तथा भाईचारे की करते हैं तो हसन खां मेवाती को कैसे भूल सकते हैं। एक मुस्लिम राजा होने के बावजूद खानवा की लड़ाई में बाबर का साथ न देकर महाराणा सांगा का साथ दिया था तथा उसे युद्ध में अपने प्राणों की आहुति दी थी। इसका एक बड़ा कारण यह भी माना जाता है कि मेवात के मुसलमान धर्म परिवर्तन करके हिंदू से मुसलमान बने थे। उन लोगों में हिंदुओं के पारंपरिक गुण ज्यादा दिखाई पड़ते हैं। काला पहाड़ में हसन खान मेवाती की बहादुरी का वर्णन करते हुए भगवान दास मोरवाल लिखते हैं :– इसी मेवात के रणबांकुरे हसन खां मेवाती ने उसे बाहर से आए हमलावर की संज्ञा देते हुए, राणा सांगा के खिलाफ युद्ध करने से मना कर दिया था। लेकिन इन मेवों को वह कैसे समझाएं कि आज इस मुल्क में अंततः उस आततायी के धब्बे मिट ही गए, जिस आततायी के कारण उन्हें अपने इस मां जाए हसन खान मेवाती को हमेशा के लिए खोना पड़ा। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि आज ही मेवात जी प्रतीक के ढहाए जाने पर इतना गमगीन है, उसके साथ–साथ आंसुओं को थोड़ा सा रोककर वह पीछे की ओर मुड़कर देख ले, कि जिस बाबर के कारण उसके मां जाए को इतिहास के पन्नों में कभी जगह नहीं मिली, और जिसने इस मेवात तथा देश के अस्मिता और अस्तित्व के लिए अपने आप को होम दिया, उसका भी वह भरे हुए मन से जरा–सा सुमरन कर ले।"[4]

यह वे मुसलमान है जिनको बंटवारे के समय पर स्वयं महात्मा गांधी जी ने पाकिस्तान जाने से रोका था। जब पूरे देश के मुसलमान भारत को छोड़कर पाकिस्तान जाने लगे थे, तब महात्मा गांधी जी ने मेवाती मुसलमान को उनके आगे लेटकर रोका था। और उन्होंने कहा था अगर आप यहां से जाओगे तो आपको मेरी लाश के ऊपर से गुजर कर जाना पड़ेगा। "सलेमी तोहे याद है गांधी ने जब ई ऐलान करो हो के वाहे मेवन् के साथ मरनो मंजूर है, पर ऊ मेवन्ने या मुलक सू पाकस्तान काई हालत में न जाण देएगो.....तो पूरा मेवात में कैसो हल्ला मचगो हो, है न.....। मनीराम की आंखों के आगे अतीत में धुंधली पड़ चुकी की स्मृतियों के गोल–गोल चकते घूमने लगे।"[5] तब मेव वहां रुक गए थे लेखक ने इस बात का जिक्र अपने कई उपन्यासों में किया है।

धर्म के नाम पर सांप्रदायिकता सिर्फ राजनीतिक उल्लू सीधा करने के लिए किया गया नाटक है। हाल ही के दिनों में नूंह क्षेत्र में एक यात्रा के दौरान लोगों के ऊपर पत्थर बाजी की घटना सामने आई। जिस घटना ने बाद में सांप्रदायिकता का रूप धारण कर लिया तथा चंद लोगों की महत्वाकांक्षा के लिए आम मासूम लोगों के घर जला दिए गए उनका आशियाना उजाड़ दिया गया जहां पर वह शताब्दियों से रहते आ रहे थे। उन लोगों की पीड़ा को कोई राजनेता नहीं समझ सकता है। ये लोग कहते हैं कि हमारा धर्म खतरे में है उसकी रक्षा करने का दायित्व हमारे कंधों पर है। फिर यह राजनेता लोग अपने परिवार के लोगों एवं अपने बच्चों को क्यों नहीं इसका बेड़ा उठाते हैं। उनको तो विदेशों में बड़े कॉलेज यूनिवर्सिटी में पढ़ते हैं। आम भोले–भाले लोगों को अपने स्वार्थ के लिए निशाना बनाते हैं तथा देश की जिन युवा पीढ़ी के हाथों में इस देश का भविष्य होना चाहिए उन मासूम बच्चों के हाथों में बंदूक तथा तलवार पकड़ा देते हैं।

हम देखते हैं कि हिंदी साहित्य में मुसलमान किरदारों को इतनी जगह नहीं मिली जिससे नुकसान यह हुआ कि जो एक मिली–जुली संस्कृति थी उसको समझने का मौका आज की युवा पीढ़ी को नहीं मिल पा रहा है। और कुछ साहित्य अगर लिखा भी जा रहा है तो उसमें एक समस्या पर प्रकाश डाला जाता है। भगवान दास मोरवाल जी ने 'हलाला' उपन्यास में दर्शाया है कि 'तीन तलाक' की समस्या कितनी भयावह हैं। जिसका पूरा खामियाजा सिर्फ एक मुस्लिम महिला को भुगतना पड़ता है कहा जाता है कि हलाला की प्रथा का चलन मुस्लिम पुरुष को सजा देने के लिए चलाया गया था ताकि कोई भी पुरुष किसी महिला को तलाक देने से पहले उसके परिणाम को देख ले पर हुआ उसका उल्टा। इन पुरुषों की लड़ाई में हर्जाना भरना पड़ा महिला को तभी यह कोशिश की जानी चाहिए कि किसी भी समाज में कोई प्रथा है तो उसकी पृष्ठभूमि क्या है। उस समाज के अंदर घुसकर उनकी तरह जीकर, समझकर ही हम उस समाज को समझ तथा जान सकते हैं और तब उसे साहित्य में शामिल कर कर सकेंगे।

यही हमें भगवान दास मोरवाल के 'बाबल तेरा देस में', 'हलाला', 'काला पहाड़' आदि उपन्यासों को पढ़कर पता चलता है कि भगवान दास मोरवाल जी ने अपने साहित्य में मुस्लिम किरदारों को शामिल नहीं किया बल्कि उन्होंने उस सांझी संस्कृति को जिया है तथा बाद में सहज रूप से ही उसका वर्णन अपने कथा साहित्य में कर दिया। वह सहजता हमें उनका साहित्य पढ़कर महसूस भी होती है। इसी सहजता तथा विश्वसनीयता के कारण पाठक उनके द्वारा लिखे गए साहित्य में खो जाता है।

लेखक देखते हैं कि मेवात की संस्कृति साझी संस्कृति है। यहां के लोग पूरी तरह से ना तो मुस्लिम है और ना ही हिंदू। 'काला पहाड़' के पूर्वार्ध में हिंदू–मुस्लिम की मिली–जुली संस्कृति देखने को मिलती है। आपसी

सौहार्द दिखाई देता है और वही आपसी सौहार्द उपन्यास के अंत तक आते–आते आपसी संघर्ष का रूप धारण कर लेता है। यह संघर्ष का रूप इसलिए ले लेता है कि कई लोगों को अपने स्वार्थ की सिद्धि करनी थी।

निष्कर्ष :–

हम देखते हैं कि चाहे कोई कितनी भी कोशिश कर ले पर मेवात क्षेत्र के लोगों में जो भारतीय मूल्य है। उनको कोई नहीं बदल सकता। इस भाईचारे, सहिष्णुता, सौहार्द को कोई रति भर भी कम नहीं कर सकता। यही हम भगवानदास मोरवाल जी के समग्र साहित्य को पढ़ने के बाद समझ सकते हैं। उन्होंने मेवात क्षेत्र के लोगों के बारे में आम जन के मन में जो नकारात्मक धारणा बनी हुई थी उसको अपनी कहानी उपन्यासों के माध्यम से उस धारणा को परिवर्तित करने का भरसक प्रयास किया है।

संदर्भ सूची :–

1. काला पहाड़, पृष्ठ –303
2. काला पहाड़, पृष्ठ –358
3. काला पहाड़, पृष्ठ –16
4. काला पहाड़, पृष्ठ –417
5. काला पहाड़, पृष्ठ–71

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 135-139

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अन्धविश्वासी एवं अन्धविश्वास रहित सेवापूर्व अध्यापकों के नैतिक मूल्यों का अध्ययन

डॉ. महेश कुमार शर्मा

सहायक प्रोफेसर, प्राचार्य डी.एल.एड. (पूर्व शोध निर्देशक व परीक्षा नियंत्रक)

शिक्षा संकाय, आई.ए.एस.ई. (मानित विश्वविद्यालय), गाँधी विद्या मन्दिर, सरदारशहर, चूरु।

प्रस्तावना :–

शिक्षक की भूमिका के सिद्धीकरण स्वरूप को देखकर स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षक के निज गुण एवं अर्जित गुण राष्ट्र रूपी इमारतों के नींव रूपी पत्थर होते है। आज के सूचना क्रान्ति एवं विज्ञान के आविष्कारों से दूषित आधुनिक युग में भी अनेक ऐसे उदाहरण नजर आते है जो हमारी अवैज्ञानिकता अर्थात् अन्धविश्वासों के दृष्टिकोण को जन सामान्यीत करते हैं जैसे शकुन–अपशुकन देखना, मिथ्या संकल्प एवं धारणा पालना, तर्क रहित व विज्ञान रहित विचारों एवं तथ्यों को मान्यता देना समाज में कई रूपों में प्रचलित है।

मूल्य मानव जीवन के प्रकाश स्तम्भ हैं। मनुष्य मूल्यों द्वारा अपनी आंकाक्षा तथा उद्देश्य की पूर्ति करता है। शैक्षिक मूल्य उसी परम्परा में आते है जिनके माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन को पूर्ण बनाना चाहता हैं। सोशल ट्रैण्ड पर गठित एक कमेटी के प्रतिवेदन में कहा गया है, व्यक्ति विचारों, आदर्शो तथा संस्थाओं के प्रति प्रगाढ़ता रखता है, वे प्राचीनतम क्यों न हो, वह उनमें संशोधन होने तक प्रतीक्षा करता है, वांछित मानवीय मूल्यों की अनुभूति की अपेक्षा करता हैं, अतः कहा जा सकता है कि मूल्य, जीवन की कसौटी का अर्थ करते हैं, जीवन का निर्माण करते हैं।

अध्ययन का महत्व :–

विगत दो हजार वर्षों से हमारे देश की 'सामाजिक स्थिति निरन्तर गिरती जा रही है और इस समय स्थिति ऐसी हो गई है जिसका उपचार नहीं किया गया तो समाज अपनी प्राचीन सभ्यता, संस्कृति, उपचार और दर्शन से हाथ धो बैठेगा। समाज में मूलभूत सिद्धान्तों तथा आदर्शो का प्रायः अभाव सा हो रहा है। इस समय हमारा सम्पूर्ण समाज दो भागों में विभक्त हो रहा है, एक वह है जिसे अशिक्षित कहा जाता है, पर धार्मिक होने का श्रेय उसे अभी भी प्राप्त है। दूसरा वर्ग वह जो शिक्षा की ओर अग्रसर हो रहा है पर उसमें धार्मिक मान्यताएं समाप्त होती जा रही है। पहला वर्ग विचारवान नहीं है इसलिए उससे समाज सुधार की आशाएं कम है पर दूसरा पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में बह रहा है। अतः उधर से भी निराशा ही दिखलाई दे रही है। शिक्षित व्यक्तियों में धर्म के प्रति आस्था न होने का एक कारण समाज में फैला घोर अन्धविश्वास भी है, जिसे देखकर विचारवान लोग भी धर्म के सिद्धान्तों पर शंका करने लगते हैं।

बीएसटीसी संस्थानों में शिक्षण कौशलों में विद्यार्थियों को दक्ष किया जाता है ताकि वे सही अर्थों में सभी गुणों से युक्त अच्छे अध्यापक बन सके। अतः नैतिक मूल्य का अध्यापन में महत्व है तथा इस पर शोधकार्य करने की आवश्यकता है।

अध्ययन का औचित्य :-

आज समाज में ज्ञान का प्रसार, आवश्यकतानुकूल संतति का विकास, विधान एवं मान्यताओं के प्रसार में शिक्षकों की केन्द्रीय भूमिका है। यदि हम उनकी आवश्कतानुकूल कार्य क्षमताओं एवं सामाजिक दृष्टिकोण से प्रतिबिम्बित अपेक्षाओं का अध्ययन करते हैं तो वह अध्ययन स्वतः ही सार्थक है। अतः भावी शिक्षकों के मनोवैज्ञानिक भावात्मक पक्षों का अध्ययन कर उनका दिशा परक स्वरूप जानकर ही हम भावी शैक्षिक ढाँचे का निर्माण कर सकते है। इस दिशा में अलग–अलग चरों पर अनेक अध्ययन सम्पादित हुए लेकिन अन्धविश्वासी और अन्धविश्वास रहित सेवापूर्व अध्यापकों में नैतिक मूल्य का अध्ययन पर अभी तक कोई कार्य नहीं हुआ है। यह कार्य एक नवाचार शैक्षिक लक्ष्य पर विद्यालय उपयोगी, समाज उपयोगी तथा शिक्षकों के लिए फलदायी होगा। जिससे हमें शिक्षा के भावी ढ़ाँचे शिक्षक के वर्तमान स्वरूप, भावी स्वरूप का अध्ययन संभव हो सकेगा। अतः शोधकर्ता ने निम्नलिखित शीर्षक पर कार्य करने का निर्णय लिया।

समस्या कथन :-

''अन्धविश्वासी एवं अन्धविश्वास रहित सेवापूर्व अध्यापकों के नैतिक मूल्यों का अध्ययन''।

अध्ययन के उद्देश्य :-

- अन्धविश्वासी व अन्धविश्वास रहित सेवापूर्व अध्यापकों के नैतिक मूल्यों का अध्ययन करना।
- अन्धविश्वासी व अन्धविश्वास रहित छात्राध्यापकों के नैतिक मूल्यों का अध्ययन करना।
- अन्धविश्वासी व अन्धविश्वास रहित छात्राध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों का अध्ययन करना।

अध्ययन की परिकल्पनाएँ :-

- अन्धविश्वासी व अन्धविश्वास रहित सेवापूर्व अध्यापकों के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही होता है।
- अन्धविश्वासी व अन्धविश्वास रहित छात्राध्यापकों के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही होता है।
- अन्धविश्वासी व अन्धविश्वास रहित छात्राध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक अन्तर नही होता है।

परिसीमन :-

- प्रस्तुत शोध चूरू जिले तक सीमित है।
- राजस्थान राज्य के शेखावाटी क्षेत्र के चूरू जिले की सरदारशहर, चूरू, राजगढ़ की डी.एल.एड. कॉलेजों को चयनित किया गया है।
- चूरू जिले की सरदारशहर, चूरू व राजगढ़ तहसील के 300 डी.एल.एड. प्रशिक्षणार्थियों (150 छात्राध्यापकों व 150 छात्राध्यापिकाओं) का चयन किया गया है।

न्यादर्श :-

डी.एल.एड. संस्थानों के चयन हेतु शेखावाटी क्षेत्र के चूरू जिले की सरदारशहर, चूरू व राजगढ़ तहसील के डी.एल.एड. संस्थानों को चयनित किया गया है। चूरू जिले की सरदारशहर, चूरू व राजगढ़ तहसील 300

डी.एल.एड. प्रशिक्षणार्थियों को चयनित किया गया।

□ोध विधि :–

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है क्योंकि अनुसंधान की यह एक वैज्ञानिक विधि है। इस विधि द्वारा प्राप्त निष्कर्ष वैध एवं विश्वसनीय होते हैं।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण :–

नैतिक मूल्य मापनी :–

अल्पना सेन गुप्ता एवं अरुण कुमार सिंह द्वारा निर्मित नैतिक मूल्य मापनी का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी :–

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी मध्यमान (M), प्रमाणिक विचलन (SD) एवं C.R. Value की गणना की जायेगी।

समंकों का सारणीयन एवं विश्ले□ाण :–

प्रस्तुत शोधकार्य में अनुसंधानकर्ता ने संकलित एवं व्यवस्थित आंकड़ों का विश्लेषण जिस प्रकार किया है, उसका परिकल्पनानुसार विवरण निम्न प्रकार है –

सारणी संख्या – T. IV. 1

अन्धविश्वासी व अन्धविश्वास रहित सेवापूर्व अध्यापकों के नैतिक मूल्यों के फलांको के सम्बन्ध में मध्यमान अन्तर की सार्थकता

न्यादर्श	संख्या (N)	माध्य (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात मान (C.R..Value)	सार्थकता स्तर	
					.05	.01
अन्धविश्वासी सेवापूर्व अध्यापक	150	28.66	4.12	3.50		सार्थक अन्तर हैं।
अन्धविश्वास रहित सेवापूर्व अध्यापक	150	26.84	4.88			

(df=N_1+N_2 - 2 = 150 + 150 - 2 = 298)

विश्ले□ाण :–

उपर्युक्त सारणी में गणना द्वारा प्राप्त मान तालिका मान से अधिक है। इस आधार पर परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है। अर्थात् अन्धविश्वासी व अन्धविश्वास रहित सेवापूर्व अध्यापकों के नैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर है।

सारणी संख्या – T. IV. 2

अन्धविश्वासी व अन्धविश्वास रहित छात्राध्यापकों के नैतिक मूल्यों के फलांको के सम्बन्ध में मध्यमान अन्तर की सार्थकता

न्यादर्श	संख्या (N)	माध्य (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात मान (C.R..Value)	सार्थकता स्तर	
					.05	.01
अन्धविश्वासी छात्राध्यापक	150	29.74	4.52	5.18		सार्थक अन्तर हैं।
अन्धविश्वास रहित छात्राध्यापक	150	30.15	4.10			

(df=N_1+N_2 - 2 = 150 + 150 - 2 = 298)

विश्लेषण :–

उपर्युक्त सारणी में गणना द्वारा प्राप्त मान तालिका मान से अधिक है। इस आधार पर परिकल्पना को अस्वीकृत किया जाता है। अर्थात् अन्धविश्वासी व अन्धविश्वास रहित छात्राध्यापकों के नैतिक मूल्यों में सार्थक अंतर है।

सारणी संख्या – T. IV. 3

अन्धविश्वासी व अन्धविश्वास रहित छात्राध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों के फलांको के सम्बन्ध में मध्यमान अन्तर की सार्थकता

न्यादर्श	संख्या (N)	माध्य (Mean)	मानक विचलन (S.D.)	क्रांतिक अनुपात मान (C.R..Value)	सार्थकता स्तर	
					.05	.01
अन्धविश्वासी छात्राध्यापक	150	29.74	4.52	5.18		सार्थक अन्तर हैं।
अन्धविश्वास रहित छात्राध्यापक	150	30.15	4.10			

(df = N1 + N2 -2 = 150 + 150 - 2 = 298)

विश्लेषण :–

उपर्युक्त सारणी में गणना द्वारा प्राप्त मान तालिका मान से कम है। इस आधार पर परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है। अर्थात् अन्धविश्वासी व अन्धविश्वास रहित छात्राध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

प्रस्तुत अध्ययन की शैक्षिक उपयोगिता :–

किसी अध्ययन की सार्थकता उसकी आवश्यकता के स्वरुप एवं उसकी उपयोगिता पर निर्भर करती है। शोधकर्ता ने समाज को एक नई दिशा प्रदान करने का प्रयत्न किया है। उक्त शोध मानव के दृष्टिकोण को मध्य नजर रखते हुए सार्थक सिद्ध होगा। क्योंकि यह शिक्षक तथा समाज को पथ प्रदर्शक का कार्य करेगा। शिक्षक राष्ट्र का दिशा निर्देशक व भविष्य का निर्माता होता है। वह विद्यार्थियों में जिस प्रकार की सोच विकसित

करेगा विद्यार्थी उसी सोच की तरफ झुकेंगे। उक्त शोध शिक्षकों व समाज में व्याप्त अन्धविश्वास को दूर करने की सोच विकसित कर सकेगा। शिक्षक के संदर्भ में कोई भी अध्ययन किया जाये तो वह सार्थक ही होगा क्योंकि इस दिशा में प्रत्येक अध्ययन फलदायी तथा समाज व राष्ट्र को एक नई दिशा प्रदान करने वाले होते हैं। आज समाज में ज्ञान का प्रसार आवश्यकतानुकूल सन्तति का विकास विधान व मान्यताओं के प्रसार में शिक्षकों की केन्द्रीय भूमिका है। यदि हम उनकी आवश्यकतानुकूल कार्य क्षमताओं एवं सामाजिक दृष्टिकोण से प्रतिबिम्बित अपेक्षाओं का अध्ययन करते है तो वह अध्ययन स्वतः ही सार्थक है। अतः उक्त अध्ययन शिक्षकों, भावी शिक्षकों के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को विकसित कर उनमें नैतिक मूल्य प्रदान करने का प्रयत्न करेगा। यह कार्य समाजोपयोगी तथा शिक्षकों के लिए फलदायी होगा। जिससे हमें शिक्षा के भावी ढाँचे शिक्षक के वर्तमान स्वरुप, भावी स्वरुप का अध्ययन सम्भव हो सकेगा।

हिन्दी संदर्भ साहित्य :–

1. ओड, एल. के. : "शिक्षा प्रशासन में निर्णय प्रक्रिया", राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, (2008).
2. कपिल, एच. के. : "सांख्यिकी के मूल तत्व", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2, (2008).
3. गैरेट, हेनरी ई. : ''शिक्षा और मनोविज्ञान में साँख्यिकी के प्रयोग", कल्याणी पब्लिशर्स, (1989).
4. भार्गव, महेश : ''आधुनिक मनोविज्ञानिक परीक्षण एवं मापन", एच. पी. भार्गव प्रकाशक, कचहरी घाट, आगरा, (1995).
5. भटनागर, आर. पी., अग्रवाल, विद्या : ''शैक्षिक प्रशासन", लायल बुक डिपो, मेरठ, (2009).
6. नौलखा, आर. एल. : ''प्रबन्ध के सिद्धान्त'', रमेश बुक डिपो, जयपुर, (2009).
7. रायजादा, डी. एस. : ''शिक्षा में अनुसंधान के आवश्यक तत्व'' राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, (1997).
8. वर्मा, जी. एस. : ''शैक्षिक प्रबन्ध", इन्टरनेशनल पब्लिशिंग, हाऊस, मेरठ, (2004).
9. शर्मा, आर. ए. : ''शिक्षा अनुसंधान", आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ, (2004).
10. शर्मा, आर. ए. : ''शिक्षा तकनीकी", इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, (1996).
11. श्रीवास्तव, डी. एन., प्रीति वर्मा : "मनोविज्ञान और शिक्षा में सांख्यिकी", विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2, (2001).
12. त्रिवेदी, आर. एन., शुक्ला, डी. पी. : "सामाजिक अनुसंधान एवं सामाजिक शोध", रिसर्च मेथ्डोलोजी, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, (2008).

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 140-143

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

साहित्य में युवक–युवती विमर्श

नवीन कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, चमन लाल महाविद्यालय, लंढौरा, उत्तराखंड।

प्रस्तावना :–

भारतीय साहित्य सदा से ही समाज के विविध पक्षों का आईना रहा है। इसमें मानव–जीवन के हर पहलू को सूक्ष्म दृष्टि से देखा–परखा गया है। युवक–युवती विमर्श एक ऐसा ही महत्वपूर्ण पक्ष है जो न केवल प्रेम, संबंध और युवा चेतना को उद्घाटित करता है, बल्कि समाज की बदलती सोच, स्त्री–पुरुष संबंधों की जटिलता और मानवीय आकांक्षाओं को भी अभिव्यक्त करता है। आधुनिक युग में इस विमर्श को नए दृष्टिकोण और स्वर मिले हैं जहाँ पारंपरिक मूल्यों और आधुनिक स्वतंत्रताओं के मध्य एक संवाद चलता है।

1. युवक–युवती विमर्श का परिचय :–

'युवक–युवती विमर्श' का तात्पर्य ऐसे साहित्यिक लेखन से है जिसमें युवावस्था, युवा चेतना, प्रेम, आत्म–संघर्ष, आत्म–पहचान, लैंगिक समानता, सामाजिक–सांस्कृतिक वर्जनाओं तथा मनोवैज्ञानिक द्वंद्वों को केंद्र में रखा गया हो। यह विमर्श युवाओं के अस्तित्व, स्वतंत्रता और संबंधों की पड़ताल करता है।

2. भारतीय साहित्य में युवक–युवती की छवि : एक ऐतिहासिक दृष्टि :–

प्राचीन साहित्य :–

'रामायण' और 'महाभारत' जैसे महाकाव्यों में युवक–युवती के संबंधों को नैतिकता और कर्तव्य की कसौटी पर प्रस्तुत किया गया है। सीता–राम तथा राधा–कृष्ण के संबंधों में गहराई, त्याग और मर्यादा की झलक मिलती है।

'कालिदास' की काव्य कृतियाँ जैसे अभिज्ञान शाकुंतलम् में शकुंतला और दुष्यंत के प्रेम संबंध युवा मन की सहज भावनाओं को उजागर करते हैं।

अ. भक्ति साहित्य :–

मीरा, सूरदास, रसखान जैसे कवियों की काव्य–साधना में राधा–कृष्ण के माध्यम से युवक–युवती के भावनात्मक और आध्यात्मिक संबंधों की सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है।

ब. रीतिकालीन साहित्य :–

इस काल में युवती के रूप, श्रृंगार और प्रेम को मुख्य विषय बनाया गया। बिहारी सतसई, केशवदास आदि की रचनाओं में नायिका की सौंदर्य–संवेदना प्रधान रही।

3. आधुनिक हिंदी साहित्य में युवक–युवती विमर्श :–

प्रेमचंद का यथार्थवाद :–

प्रेमचंद की कहानियाँ और उपन्यास जैसे गोदान, निर्मला आदि में युवक–युवती के संबंधों में सामाजिक यथार्थ, विवशता और स्त्री की स्थिति को उजागर किया गया।

प्रेम विवाह बनाम पारंपरिक विवाह की स्थिति को प्रेमचंद ने समाज के दवाबों के संदर्भ में प्रस्तुत किया।

इ. यथार्थवादी एवं प्रगतिशील साहित्य :–

1930 के बाद के साहित्य में युवक–युवती के संबंधों को समाज में परिवर्तन की दृष्टि से देखा गया। अज्ञेय, इन्द्रनाथ मदान, मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव जैसे लेखकों ने युवक–युवती संबंधों को भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और यौनिक स्तर पर गहराई से प्रस्तुत किया।

उदाहरण :–

मोहन राकेश के नाटक आषाढ़ का एक दिन में मालविका और कालिदास का प्रेम आधुनिक चेतना और कर्तव्य के द्वंद्व का परिचायक है।

अज्ञेय के उपन्यास शेखर : एक जीवनी में युवक के आत्मसंघर्ष, विद्रोह और प्रेम को बारीकी से उकेरा गया है।

ब. नई कहानी आंदोलन :–

'कमलेश्वर, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमला दास की कहानियाँ युवक–युवती के अंतर्द्वंद्वों, आकांक्षाओं और सामाजिक वर्जनाओं को प्रश्नांकित करती हैं।

4. समकालीन साहित्य में युवक-युवती विमर्श :–

समकालीन साहित्य में युवक–युवती केवल प्रेमी या पत्नी–पति के रूप में ही नहीं, बल्कि स्वतंत्र अस्तित्व वाले मानव के रूप में सामने आते हैं। यहाँ लैंगिक समानता, स्वतंत्र विचार, निजी आकांक्षाएँ, लिव–इन रिलेशनशिप, आत्म–निर्णय की स्वतंत्रता आदि प्रमुख विषय बनते हैं।

महेश कटारे, मन्नू भंडारी और चित्रा मुद्गल की रचनाएँ :–

'मन्नू भंडारी की आपका बंटी और चित्रा मुद्गल की आवाँ में युवा स्त्री की स्वायत्तता और सामाजिक टकराव को सामने लाया गया है।

इ. दलित, स्त्री और आदिवासी विमर्श :–

'दलित साहित्य में युवक–युवती के संबंध जातिगत हिंसा और सामाजिक असमानता से जूझते दिखाई देते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि, सुविधा सिंह आदि के लेखन में यह तीव्रता से दिखता है।

'स्त्री लेखन में युवती के आत्मबोध, यौनिकता और समाज से टकराव की अभिव्यक्ति गहराई से की गई है।

5. प्रमुख कथाकारों की दृष्टि में युवक-युवती विमर्श :–

"स्त्री देह और पुरुष मन के बीच का अंतर्द्वंद्व केवल कामना नहीं, पहचान की खोज है।" **राजेन्द्र यादव**

उन्होंने युवक–युवती संबंधों को केवल यौनिक दृष्टि से नहीं, बल्कि मानसिक स्वतंत्रता की दृष्टि से भी प्रस्तुत किया। – राजेन्द्र यादव

इ. मन्नू भंडारी :–

उन्होंने युवा स्त्री की मनोवृत्ति, उसकी संवेदनशीलता और समाज में उसकी भूमिका पर खुलकर लिखा।

ब. मृदुला गर्ग :–

उपन्यास अनित्य और चित्तकोबरा में युवती की देह, चेतना और स्वतंत्रता को बेबाकी से अभिव्यक्त किया गया।

6. कविता में युवक–युवती विमर्श :–

'अज्ञेय, मुक्तिबोध और धूमिल'

'अज्ञेय की कविता में प्रेम बौद्धिक और दार्शनिक रूप में आता है, वहीं मुक्तिबोध में सामाजिक अवरोधों का चित्रण है।

'धूमिल की कविता में युवक–युवती की आकांक्षा को वर्ग–संघर्ष से जोड़ा गया है।

इ. समकालीन कवयित्रियाँ :–

'कात्यायनी, अनामिका, अनिता भारती, निर्मला पुतुल आदि कवयित्रियों की रचनाओं में युवती की आकांक्षा, यौनिकता और विद्रोह के स्वर मुखर हैं।

7. नाटक और रंगमंच में युवक–युवती विमर्श :–

'मोहन राकेश, विजय तेंडुलकर और हबीब तनवीर के नाटकों में युवक–युवती की भावनाएँ केवल प्रेम तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि सामाजिक ढाँचे, पितृसत्ता और सांस्कृतिक मान्यताओं से भी जूझती नजर आईं। 'सखाराम बाइंडर (विजय तेंडुलकर) में युवक–युवती संबंध समाज के विरोधाभासों को उजागर करते हैं।

8. फिल्म, वेब और लोकप्रिय साहित्य में विमर्श :–

आधुनिक तकनीक और नई मीडिया ने युवक–युवती विमर्श को एक नई दिशा दी है। अब वेब सीरीज, उपन्यास और फिल्मों में प्रेम, लिव–इन, ब्रेकअप, करियर व व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रमुख विषय बन गए हैं।

उदाहरण :

'चेतन भगत के उपन्यासों (2 States, Revolution 2020) में युवक–युवती के संबंधों को सरल भाषा में जनसामान्य के बीच लोकप्रियता मिली है।

9. आलोचनात्मक दृष्टि :–

युवक-युवती विमर्श पर आलोचकों की राय विविध रही है :–

'कुछ आलोचक इसे आधुनिक युग का 'स्वेच्छाचार' मानते हैं, वहीं अन्य इसे स्वतंत्रता और व्यक्तित्व विकास का माध्यम मानते हैं।

'स्त्रीवादी आलोचकों का मानना है कि यह विमर्श महिला मुक्ति और आत्मबोध का मंच है।

10. निष्कर्ष :–

युवक–युवती विमर्श एक बहुआयामी विमर्श है जो केवल प्रेम और आकर्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें समाज, संस्कृति, राजनीति, लैंगिकता और अस्तित्व का गहरा जुड़ाव है। यह विमर्श न केवल साहित्य को समृद्ध करता है, बल्कि समाज के बदलते मूल्यों को समझने का भी एक सशक्त माध्यम है।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. 'हिंदी कहानी और समाज' : डॉ. नामवर सिंह।
2. 'आधुनिक हिंदी कथा साहित्य' : डॉ. रामविलास शर्मा।
3. 'स्त्री–विमर्श की अवधारणा' : डॉ. विमला।
4. 'हिंदी का यथार्थवादी साहित्य' : डॉ. मैनेजर पांडेय।
5. 'अज्ञेय और नवयुवक चेतना' : प्रो. रामचंद्र शुक्ल।
6. 'नारी लेखन और आत्मबोध' : मृदुला गर्ग।
7. 'समकालीन हिंदी साहित्य का सामाजिक परिप्रेक्ष्य' : डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल।
8. 'दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र' : ओमप्रकाश वाल्मीकि।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 144-147

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

हिंदी साहित्य में युवक–युवती विमर्श

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

गुगन निवास, 26, पटेल नगर, भिवानी, हरियाणा।

प्रस्तावना :–

हिंदी साहित्य में समय–समय पर समाज की विभिन्न प्रवृत्तियों, संघर्षों और बदलावों को दर्शाया गया है। इनमें युवक और युवती – अर्थात युवा पीढ़ी हमेशा से एक महत्वपूर्ण विषय रहे हैं। भारतीय समाज की संरचना में जब परिवर्तन की आहट सुनाई देती है, तो उसकी गूंज सबसे पहले युवाओं में सुनाई देती है। यह वर्ग केवल आने वाले कल का निर्माता नहीं, बल्कि वर्तमान की चेतना का संवाहक भी होता है। इसलिए हिंदी साहित्य में युवक–युवती विमर्श न केवल सामाजिक बदलाव का प्रतिबिंब है, बल्कि यह सांस्कृतिक, नैतिक, आर्थिक और लैंगिक विमर्शों से भी गहराई से जुड़ा है।

1. युवक–युवती विमर्श एक परिचय :–

'विमर्श' शब्द का अर्थ है। किसी मुद्दे पर गहराई से विचार करना, बहस करना और विश्लेषण प्रस्तुत करना। युवक–युवती विमर्श का तात्पर्य है। युवा पीढ़ी विशेषतः युवक और युवती के जीवन, उनकी समस्याएं, आकांक्षाएं, प्रेम, आत्म–संघर्ष, समाज से उनका संबंध, लैंगिक असमानताएं, स्वाधीनता की चाह और व्यक्तित्व की खोज आदि पर केंद्रित साहित्यिक चर्चा।

यह विमर्श केवल प्रेम और आकर्षण तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक भूमिका, शिक्षा, स्वतंत्रता, कैरियर, विवाह, लैंगिक समानता और पारिवारिक दबाव जैसे गहरे मुद्दों को समेटे हुए है।

2. प्रारंभिक हिंदी साहित्य और युवक–युवती :–

प्रारंभिक हिंदी साहित्य–विशेषकर भक्तिकाल और रीतिकाल–में युवक–युवती संबंध अधिकतर आध्यात्मिक या श्रृंगारिक भावभूमि पर आधारित थे। तुलसीदास, सूरदास, कबीर जैसे कवियों की रचनाओं में युवक–युवती का चित्रण ईश्वर–भक्ति या प्रेम के प्रतीक के रूप में मिलता है।

रीतिकालीन कवि जैसे बिहारी, केशवदास, घनानंद ने युवाओं के सौंदर्य, प्रेम और विरह की भावनाओं को अत्यंत कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। यहाँ युवती का रूप सौंदर्य और प्रेम की उपासना का विषय रहा, लेकिन उसका सामाजिक संदर्भ गौण रहा। युवक–युवती को व्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि भावनात्मक प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया।

3. आधुनिक हिंदी साहित्य में बदलाव :–

भारतीय समाज में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में जो सामाजिक, राजनीतिक और शैक्षिक परिवर्तन

आए, उसका सीधा असर हिंदी साहित्य पर पड़ा। अब युवक–युवती केवल प्रेम के प्रतीक नहीं, बल्कि संघर्षशील व्यक्तित्व बनकर साहित्य में उभरे।

प्रेमचंद और उनका यथार्थवाद :–

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों में युवक–युवती को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में देखा। उनके उपन्यास 'गोदान', 'गबन', 'निर्मला' आदि में युवतियाँ अपने जीवन के निर्णयों के लिए जूझती हुई दिखती हैं। युवक भी केवल प्रेमी नहीं, बल्कि सामाजिक जिम्मेदारियों और द्वंद्व से गुजरने वाले पात्र हैं।

गबन का 'रमेश' और निर्मला की 'निर्मला' उस काल के युवक–युवती की स्थिति और संघर्ष को भली–भांति प्रतिबिंबित करते हैं।

4. प्रगतिशील आंदोलन और युवक-युवती विमर्श :–

प्रगतिशील लेखन ने समाज के हाशिए पर पड़े वर्गों के साथ–साथ युवा चेतना को भी स्वर दिया। इस आंदोलन में लेखक यह मानने लगे कि युवक–युवती समाज के परिवर्तन के वाहक हैं।

नागार्जुन, रेणु और यशपाल :–

यशपाल के उपन्यास – 'दिव्या', 'झूटा–सच' में युवतियाँ समाज के ढकोसलों से लड़ती नजर आती हैं। रेणु की 'मैला आँचल' में भी युवती का चित्रण सिर्फ प्रेम की भूमिका तक सीमित नहीं है, वह राजनीति, सामाजिक समझ और स्वतंत्र निर्णय लेने में सक्षम दिखाई देती है।

महिला लेखन में युवतियाँ :–

महिला लेखिकाओं ने युवतियों के अंतर्मन, उनकी सामाजिक स्थिति और आत्म–अस्तित्व को लेकर गहन लेखन किया। मन्नू भंडारी की 'आपका बंटी', 'महाभोज', कमलेश्वर की 'कितने पाकिस्तान' में युवतियों की अस्मिता और संघर्ष प्रमुख विषय बने।

5. नवलेखन और स्त्री विमर्श के साथ युवक-युवती विमर्श :–

सन् 1980 के बाद हिंदी साहित्य में जब स्त्री विमर्श ने रफ्तार पकड़ी, तब युवक–युवती विमर्श और गहरा हो गया। अब युवतियाँ केवल प्रेमिका, पत्नी या त्यागमूर्ति नहीं रह गईं, बल्कि स्वतंत्र सोच रखने वाली, अपने अस्तित्व के लिए लड़ने वाली पात्र बन गईं।

प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग :–

इन लेखिकाओं ने युवतियों की मानसिक दुविधाओं, यौन स्वतंत्रता, करियर, समाजिक कुंठाओं और आत्मनिर्भरता को केंद्र में रखा। मैत्रेयी पुष्पा की 'इदन्नम्' और 'चाक' जैसी रचनाओं में युवतियाँ सामाजिक ढाँचों से संघर्ष करती हैं।

युवक की भूमिका :–

इस दौर में युवक का चित्रण भी केवल आदर्श प्रेमी या यथार्थवादी पात्र तक सीमित नहीं रहा। वह भी भ्रम, महत्वाकांक्षा, अस्थिरता, आत्मसंघर्ष और विकल्पों के द्वंद्व में दिखाई देता है। उदय प्रकाश की कहानियाँ जैसे 'मोहनदास', 'पॉल गोमरा का स्कूटर' में युवक आधुनिकता और असमानता के बीच फंसा हुआ है।

6. समकालीन हिंदी साहित्य में युवक-युवती विमर्श :-

वर्तमान दौर में तकनीक, पूंजीवाद, सोशल मीडिया, करियर प्रतियोगिता और सांस्कृतिक परिवर्तन ने युवक–युवती विमर्श को एक नए आयाम दिए हैं।

युवा लेखक और नए विषय :-

अंशुल चतुर्वेदी, दिव्या प्रकाश दुबे, सत्य व्यास, निधि चोपड़ा जैसे नए लेखकों ने युवा वर्ग की बदलती सोच, रिश्तों में जटिलता, नौकरी–प्रेम–स्वतंत्रता के संघर्ष, डेटिंग ऐप्स, ब्रेकअप, डिप्रेशन और आत्महत्या जैसे विषयों को प्रमुखता दी है।

युवती के नए आयाम :-

अब युवती सशक्त है, लेकिन समाज की परतों से जूझती है। वह करियर को प्राथमिकता देती है, आत्मनिर्भर है, लेकिन समाज की पितृसत्तात्मक दृष्टि अब भी उसे घेरे हुए है। हिंदी लघुकथाओं, ब्लॉग लेखन, सोशल मीडिया पर युवतियों की कलम से निकल रही स्वर सशक्त और स्पष्ट हैं।

समलैंगिकता, जेंडर पहचान :-

अब युवक–युवती विमर्श में लैंगिक विविधता भी शामिल हो चुकी है। ट्रांसजेंडर, समलैंगिक प्रेम और पहचान के सवाल हिंदी साहित्य में धीरे–धीरे स्थान पा रहे हैं। उदाहरणस्वरूप – मंजुला पांडे की रचनाएँ और LGBTQ विषयक कहानियाँ इस ओर संकेत करती हैं।

7. फिल्म और वेब मीडिया में युवक-युवती विमर्श :-

हिंदी सिनेमा और वेब सीरीज ने भी इस विमर्श को साहित्य की तरह आगे बढ़ाया है। 'तूफान', 'गुलाबी गैंग', 'लैला', 'मसाबा मसाबा', 'दिल्ली क्राइम', 'फोर मोर शॉट्स प्लीज!' जैसी प्रस्तुतियाँ युवतियों के नए रूप और संघर्ष को सामने लाती हैं।

वेब माध्यमों पर आधारित साहित्यिक लेखन ने भी सामाजिक विमर्श को गति दी है। ब्लॉग्स, ऑनलाइन पत्रिकाएँ, इंस्टाग्राम पर लघुकथाएँ – सभी में युवक–युवती के विचार, प्रेम, असहमति, पहचान के संकट और सपनों की आवाज सुनाई देती है।

8. प्रमुख मुद्दे जो युवक-युवती विमर्श में उभरते हैं :-

1. **लैंगिक असमानता :** युवतियाँ अभी भी घर–परिवार से लेकर कार्यस्थल तक भेदभाव का सामना करती हैं।
2. **आत्मनिर्भरता :** दोनों युवक और युवती अपने निर्णय खुद लेना चाहते हैं, लेकिन सामाजिक बाधाएँ मौजूद हैं।
3. **शादी और प्रेम का द्वंद्व :** पारंपरिक विवाह और आधुनिक प्रेम संबंधों के बीच खिंचाव।
4. **मूल्य-संकट और आधुनिकता :** नैतिकता बनाम व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संघर्ष।
5. **कैरियर बनाम पारिवारिक अपेक्षाएँ :** विशेषकर युवतियों पर घर–बाहर के दोहरे दबाव।
6. **यौन स्वतंत्रता और यौन शिक्षा :** युवाओं में जागरूकता बढ़ी है लेकिन समाज का रवैया धीमा है।
7. **मानसिक स्वास्थ्य :** प्रतिस्पर्धा और अकेलेपन के कारण डिप्रेशन, एंग्जायटी जैसे मुद्दे साहित्य का

हिस्सा बनने लगे हैं।

9. निष्कर्ष :-

हिंदी साहित्य में युवक–युवती विमर्श एक सतत् प्रवाह है, जो समय और समाज के साथ बदलता रहता है। यह विमर्श प्रेम और भावनाओं से शुरू होकर आज आत्मनिर्भरता, संघर्ष, पहचान, लैंगिक समानता, मनोविज्ञान और सामाजिक बदलावों के गहन विमर्श तक पहुँच चुका है।

आज का साहित्यकार युवक–युवती को केवल पात्र नहीं, बल्कि समाज की आत्मा के रूप में देखता है। आने वाले समय में यह विमर्श और भी व्यापक होगाकृजहाँ न केवल शहरों के बल्कि गाँवों के युवाओं की आवाजें भी शामिल होंगी।

हिंदी साहित्य की यह विशेषता रही है कि वह समाज के हर वर्ग की पीड़ा, आकांक्षा और सोच को स्वर देता है। युवक–युवती विमर्श इसी परंपरा की समकालीन और जरूरी कड़ी है।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 148-159

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

મહિલા સશક્તિકરણ પર પુસ્તકાલયની ભૂમિકા

રાઠોડ મધુબેન માનસિંહભાઈ,

શોધાર્થી, શ્રી ગોવિંદ ગુરૂ યુનિવર્સિટી, વિંઝોલ,ગોધરા.

ડૉ. દિપ્તી.એન.સોની,

ગ્રંથપાલશ્રી., શ્રી. એસ.આર.ભાભોર. આર્ટસ કોલેજ,સિંગવડ,દાહોદ.

સારાંશ:

વર્તમાન અભ્યાસ મહિલા સશક્તિકરણ પર જાહેર પુસ્તકાલયની ભૂમિકા પર ધ્યાન કેન્દ્રિત કરે છે. હાલના અભ્યાસમાં મહિલા ઉપયોગકર્તાઓનો મર્યાદિત ભૌગલિક વિસ્તારને ધ્યાનમાં લેવામાં આવ્યો છે. અભ્યાસ માટે માહિતી એકત્રિત કરવા માટે પ્રશ્નાવલિનો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો છે. આ પ્રશ્નાવલિમાં ૨૭ પ્રશ્નોનો સમાવેશ કરવામાં આવ્યા હતા. જેમાં ૧૦૦ જેટલી પ્રશ્નાવલિનું વિતરણ કરવામાં આવ્યું હતું અને ૯૫ જેટલી પ્રશ્નાવલિ પરત મળી હતી. મહિલા સશક્તિકરણ પર પુસ્તકાલયની ભૂમિકા મહત્વની રહી છે પરંતુ પુસ્તકાલયના વિવિધ માહિતી સ્ત્રોતો મહિલા ઉપયોગકર્તાઓની જરૂરિયાતોને પહોચી વળવા માટે પૂરતા પ્રમાણમાં નથી અને પુસ્તકાલયના માળખા અને સુવિદ્યાઓ સુધારી શકાય તેમ છે.

ચાવીરૂપ શબ્દો : પુસ્તકાલયની ભૂમિકા, મહિલા સશક્તિકરણ, પુસ્તકાલયનો વેગ

પ્રસ્તાવના :

મહિલા સશક્તિકરણએ ૨૧મી સદીમાં સૌથી મહત્વપૂર્ણ મુદ્દાઓમાનો એક મુદ્દો બની ગયો છે. અને તેથી તે વિશ્વમાં નોંધપાત્ર ચર્ચા અને ધ્યાનનું કેન્દ્ર બન્યું છે. તે પુખ્ત શિક્ષણ સહિત અનેક શૈક્ષણિક શાખાઓમાં સંશોધન સાથે સંકળાયેલું છે. વિકાસશીલ દેશમાં લિંગ અસમાનતાને દૂર કરવાના પ્રયાસમાં જુદીજુદી સંસ્થાઓ મહિલાઓની સ્થિતિ સુધારવાનો પ્રયાસ કરી રહી છે. જેથી તેઓ સામાજિક,આર્થિક,રાજકીય અને નાગરિક નેતૃત્વ જેવી વિવિધ ભૂમિકાઓમાં વધુ ને વધુ દ્રશ્યમાન બની શકે. આમાં મોટાભાગે તેમની પોતાની ક્ષમતામાં વિશ્વાસ કેળવવા સશક્ત કરવાનો સમાવેશ થાય છે લોકો ને તેમના સ્વવિકાસ માટે માહિતીની જરૂર હોય છે. તે આર્થિક,સામાજિક અને રાજકીય વિકાસમાં મહત્વની ભૂમિકા ભજવે છે.માહિતીએ દરેક માનવ પ્રવૃતિઓનું આવશ્યક ઘટક છે. તે સમાજમાં જીવનના તમામ મહત્વપૂર્ણ ક્ષેત્રોમાં વિકાસ માટે અનિવાર્ય મૂળભૂત સંશોધનમાંનું એક છે.

મહિલા સશક્તિકરણ પર પુસ્તકાયની ભૂમિકા જેમ જેમ વિજ્ઞાન અને ટેકનોલોજીનો વિકાસ થયો તેમ તેમ સમાજમાં સામાજિક અને શૈક્ષણિક વિકાસ થયો છે. તેનાથી મહિલા સશક્તિકરણ પર પુસ્તકાલયની સકારાત્મક અસરો જોવા મળે છે.કારણ કે મહિલા શિક્ષણ વિના મહિલા સશક્તિકરણ શકય નથી.તેથી મહિલાઓને શિક્ષિત કરવા માટે જ નહીં પરંતુ તેમણે આત્મનિર્ભર બનાવવાની પણ જરૂરી છે. સમાજે મહિલાઓની જરૂરિયાતોને પહોચી વળવા માટે જાહેર અને ખાનગી સંસ્થાઓની સ્થાપના કરી છે. પુસ્તકાલય સમાજમાં એક મહત્વપૂર્ણ સ્થળ તરીકે ઉભરી આવ્યું છે. કારણકે તે સામાન્ય લોકો માટે વિવિધ સેવાઓ પૂરી પાડે છે. તે આધુનિક સમાજમાં શૈક્ષણિક માહિતીના પ્રતિનિધિ તરીકે મહત્વનો સ્થાન ધરાવે છે. પુસ્તકાલયને સમાજના એંક અભિન્ન અંગ ગણવામાં આવે છે કારણ કે તે નવરાશના સમયનો સર્જનાત્મક ઉપયોગ, સામાજિક, સાંસ્કૃતિક, રાજકીય અને શૈક્ષણિક વિકાસ અંગેના વિચારોનો ફેલાવો કરવામાં મહત્વની ભૂમિકા ભજવે છે.પુસ્તકાલય એંક સ્થાનિક કેન્દ્ર છે અને સમાજની તમામ જાહેર જનતા માટે ખુલ્લુ છે અને તેમના ઉપયોગકર્તાઓને માહિતી એકત્ર કરવા, ગોઠવવા જેવા કાર્યોમાં મહત્વની ભૂમિકા ભજવે છે આમ, પુસ્તકાલયો મહિલાઓને સશક્ત કરવામાં, તેમણે સમાજમાં શિક્ષિત કરવા, સંસ્કારી અને સશક્ત જીવન જીવવા માટે મહિલાઓને સક્ષમ બનાવવામાં મહત્વપૂર્ણ ભૂમિકા ભજવે છે.

માહિતી દરેક માનવ પ્રવૃતિઓનો એક આવશ્યક ઘટક છે જેમાં પુસ્તકાલયોનો ખુબ મોટો ફાળો રહ્યો છે. ગ્રામ્ય અને સુવિધાઓથી વંચિત વિસ્તારોમાં પુસ્તકાલયો હમેશા સ્થાનિક વિસ્તારમાં વિકાસ અને મહિલા સશક્તિકરણ પ્રક્રિયામાં એક મહત્વપૂર્ણ ભાગ ભજવે છે. મહિલાઓને રાષ્ટ્રીય અને આંતરરાષ્ટ્રીય બન્ને સમસ્યાના આર્થિક અને રાજકીય પરિમાણોને સમજવામાં પુસ્તકાલયો મદદ કરે છે.પુસ્તકાલયો મહિલાઓને પોતાના નિર્ણયો લેવામાં, રોજગારી મેળવવા, સ્વાસ્થ્ય સબંધિત અને તેમની રોજિંદા જીવનમાં સશક્તિકરણ માટે તેમની જરૂરિયાતોને પૂરી કરવા માટે મદદરૂપ થાય છે.તકનીકી યુગમાં નિર્ણય લેવાની પ્રક્રિયામાં ભાગ લેનાર પ્રત્યેક મહિલા માટે માહિતી આવશ્યક છે તેથી આ અભ્યાસનો હેતુ મહિલા સશક્તિકરણ પર પુસ્તકાલયોની વિવિધ પ્રવૃતિઓનું મુલ્યાંકન કરવાનું છે.

પુસ્તકાલય

પુસ્તકાલયોએ શિક્ષણ અને સંશોધનને પ્રોત્સાહન, વાંચવાની આદતો વિકસાવવી, જ્ઞાન અને માહિતીના પ્રસારમાં મહત્વપૂર્ણ ભૂમિકા ભજવે છે. પુસ્તકાલય એંક સામાજિક સંસ્થા

છે અને તે સામાજિક સંસ્થા તરીકે સેવા આપવાનું કાર્ય કરે છે.તેના ઉપયોગકર્તાઓને વિવિધ માહિતી પૂરી પાડે છે. પુસ્તકાલયોએ માહિતી યુગમાં સૌથી મહત્વપૂર્ણ ભાગ છે. લોકોને શિક્ષણ અને સામાજિક વિકાસને ટેકો આપવા માટે પુસ્તકાલયો કાર્યરત છે. તેઓ સામાજિક-આર્થિક અને સાંસ્કૃતિક પ્રગતિ, સ્વ વિકાસ, આજીવન શિક્ષણ મેળવવા માટે હમેશા કાર્યરત રહે છે.

પુસ્તકાલય અને મહિલાઓ

સમાજની માંગણીના તમામ પ્રકારની સેવાઓ સાથે શૈક્ષણિક કેન્દ્ર તરીકે પુસ્તકાલયોને રૂપાંતરિત કરી શકાય છે, કારણકે આ એ કેન્દ્ર છે જ્યાં લોકો સરળતાથી માહિતી મેળવી શકે છે. મહિલાઓમાં શિક્ષણ વધારવા માટે પુસ્તકાલયો વિવિધ પ્રકારના સ્ત્રોતો અને સેવાઓ પૂરી પાડે છે. પુસ્તકાલયો મહિલાઓની નિર્ણાયક પ્રક્રિયામાં પણ મહત્વની ભૂમિકા ભજવે છે જ્યાં યોગ્ય સમયે યોગ્ય નિર્ણય લેવા માટે યોગ્ય માહિતી સાથે મહિલાઓને સમૃદ્ધ બનાવવા મહત્વની ભૂમિકા ભજવે છે મહિલાઓને શિક્ષિત અને સુસંસ્કૃત બનાવવા માટે અને સમાજ માટે અસરકારક શૈક્ષણિક વ્યવસ્થા અને સારા પુસ્તકાલયોની જરૂર છે.

અભ્યાસના હેતુઓ

- મહિલા સશક્તિકરણ માટે પુસ્તકાલયોની વિવિધ પ્રવૃતિઓનો અભ્યાસ કરવા.
- મહિલાઓ માટે વિશેષ સંદર્ભ સાથે શિક્ષણ, સામાજિક આર્થિક વિકાસ, સાંસ્કૃતિક પ્રવૃતિઓ અને રાજકીય વિકાસ માટે પુસ્તકાલયો કેટલા મદદરૂપ છે તે જાણવા માટે.
- સશક્તિકરણ માટે મહિલા દ્વારા પુસ્તકાલયની માહિતી અને સંચાર તકનીકના સાધનો અને સેવાઓનો ઉપયોગ અને જાગૃતિ શોધવા.
- મહિલા સશક્તિકરણ માટે પુસ્તકાલયોની વિવિધ પ્રવૃતિઓનો અભ્યાસ કરવો.
- મહિલાઓની પ્રગતિ માટે વાંચન મદદરૂપ છે કે કેમ તે ઓળખવામાંટે
- .મહિલા સંગઠનો પુસ્તકાલયો સાથે સહકાર કરે છે કે નહિ અને મહિલા સશક્તિકરણ માટે તેઓ ક્યાં સુધી મદદરૂપ છે તેની ઓળખ કરવી.

માહિતી મેળવવાની પધ્ધતિ

વર્તમાન અભ્યાસની માહિતી મેળવવા માટે મુખ્ય સાધન તરીકે પ્રશ્નાવલિ નો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો હતો. આ પ્રશ્નાવલિ ને બે ભાગના વિભાગમાં બનાવવામાં આવી હતી. પ્રથમ ભાગમાં વ્યક્તિગત વિગતો સાથે સંકળાયેલા હતા. જ્યારે બીજા વિભાગમાં

પુસ્તકાલય અને મહિલાઓ, સમસ્યાઓના તાર્કિક રીતે પસંદ કરેલ પ્રશ્નો સાથે પ્રશ્નાવલિ તૈયાર કરવામાં આવી હતી.

વર્તમાન અભ્યાસના મુખ્ય ઉપયોગકર્તાઓ તરીકે વિદ્યાર્થીનીઓ,ગૃહિણીઓ, વ્યવસાય કરતી મહિલાઓ છે. અભ્યાસ માટે રેન્ડમ નમૂના તકનીકનો ઉપયોગ કરવામાં આવ્યો હતો. ૧૦૦ જેટલી પ્રશ્નાવલિનું વિતરણ કરવામાં આવ્યું હતું અને 95 જેટલી પ્રશ્નાવલિ પરત મળી હતી. વિશ્લેષણ માટે ટકાવારી પધ્ધતિ અને આલેખ પધ્ધતિ અપનાવવામાં આવી છે.

માહિતીનું અર્થઘટન અને વિશ્લેષણ

માહિતી વિશ્લેષણ અને અર્થઘટનને સંશોધન અહેવાલના હૃદય તરીકે ગણવામાં આવે છે. વિશ્લેષણનો અર્થ એ છે કે અભ્યાસ હેઠળ વસ્તુઓની લાક્ષણિકતાઓનો અભ્યાસ કરવા માટે અને તેના સબંધિત ચલો વચ્ચેના સબંધોનો સ્વરૂપ નક્કી કરવા માટે એકત્રિત માહિતીનું વિશ્લેષણ કરવામાં આવે છે જેમાં અર્થઘટન સાથે આલેખો, ચાર્ટ અને આંકડાઓના સ્વરૂપમાં રજુ કરવામાં આવ્યું છે.

મહિલાઓનો પુસ્તકાલય સાથે સબંધ

સૌ પ્રથમ અભ્યાસ દ્વારા એ જાણવાનો પ્રયત્ન કરવામાં આવ્યો છે કે મહિલાઓ પુસ્તકોનું વાંચન કરે છે? જેમાં ૮૭.૫૦% મહિલાઓ પુસ્તકોનું વાંચન કરે છે અને ૧૨.૫૦% મહિલાઓ પુસ્તકોનું વાંચન કરતી નથી. જ્યારે પુસ્તકાલય અંગે પૂછવામાં આવ્યુ ત્યારે ૮૨% મહિલાઓ પુસ્તકાલયનો ઉપયોગ કરે છે અને તેમનું માનવું છે કે પુસ્તકાલય દ્વારા તેમને નવું જ્ઞાન મળે છે અને તેમને ખ્યાલો સમજાવવામાં, પ્રસ્તુત કરવામાં, ભણાવવામાં, સ્પર્ધાત્મક પરીક્ષાની તૈયારી કરવા મદદ મળે છે તથા કેટલીક મહિલાઓ પુસ્તકાલયો નો ઉપયોગ શોખ અને વાંચન માટે કરે છે. તેમનું એવું માનવું છે કે પુસ્તકાલયોમાં પૂરતા પુસ્તકો મળતા નથી. ૪૪% મહિલાઓ ઈન્ટરનેટ દ્વારા વાંચન કરે છે. જ્યારે ૭૭.૨૫% પુસ્તકો દ્વારા વાંચન કરે છે. પુસ્તકાલયોનો ઉપયોગ કરનાર મહિલાઓમાં ૫૫.૧૦% મહિલાઓ પુસ્તકાલયમાં સભ્યપદ ધરાવે છે અને બાકીની ૪૪.૯૦% મહિલાઓ સભ્યપદ ધરાવતી નથી. મહિલાઓ કેટલા સમયથી પુસ્તકાલય સાથે સંકળાયેલ છે તે આલેખ નં.૧માં જોવા મળે છે.

આલેખ નં.૧

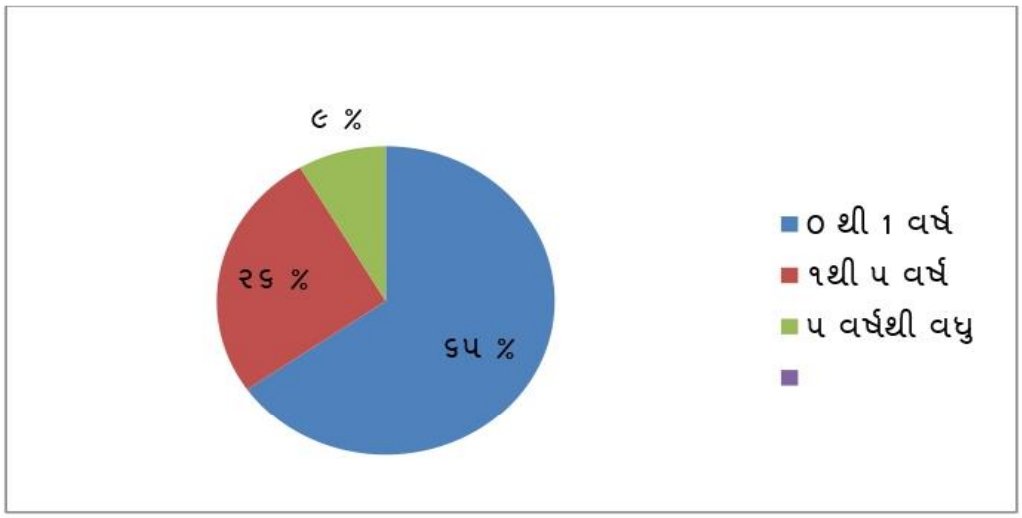

આલેખ નં. ૧ ના આધરે કહી શકાય કે મોટાભાગની ૨૬% મહિલાઓ ૧ થી ૫ વર્ષથી પુસ્તકાલય સાથે જોડાયેલી છે અને ૬૫% મહિલાઓ ૦ થી ૧ વર્ષથી અને ૯% મહિલાઓ ૫ વર્ષથી વધુ સમયથી પુસ્તકાલય સાથે જોડાયેલિ છે.

મહિલાઓ પુસ્તકાલયમાં કેટલો સમય પસાર કરે છે. જે આલેખ નં. ૨ માં જોવા મળે છે.

આલેખ નં. ૨

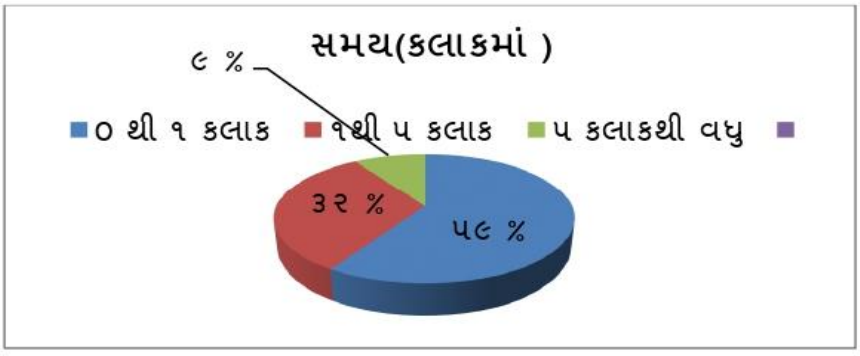

મહિલાઓ પુસ્તકાલયમાં કેટલો સમય પસાર કરે છે જે આલેખ નંબર ૨ ના આધારે કહી શકાય કે મોટાભાગની ૫૯% મહિલાઓ ૦ થી ૧ કલાક જેટલો સમય પુસ્તકાલયમાં પસાર કરે છે અને માત્ર ૯% મહિલાઓજ '૫' થી વધુ કલાકો પુસ્તકાલયોમાં પસાર કરે છે. જ્યારે ૩૨% મહિલાઓ ૧ થી ૫ કલાક જેટલો સમય પુસ્તકાલયમાં પસાર કરવાનું પસંદ કરે છે.

આલેખ નં. ૩

પુસ્તકાલયની મુલાકાતની અવધિ

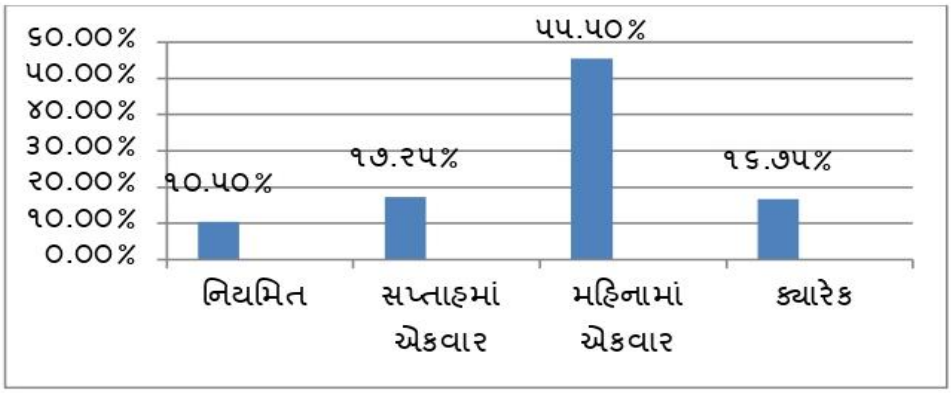

અભ્યાસ દ્વારા જાણવા મળ્યું છે કે ૧૦.૫૦% મહિલાઓ પુસ્તકાલયની નિયમિત રીતે મુલાકાત લે છે, ૧૭.૨૫% મહિલાઓ અઠવાડિયે એકવાર પુસ્તકાલયની મુલાકાત લે છે જ્યારે મોટાભાગની ૫૫.૫૦% મહિલાઓ પુસ્તકાલયની મહિનામાં એકવાર મુલાકાત લે છે અને ૧૬.૭૫%મહિલાઓ પુસ્તકાલયની ક્યારેક જ મુલાકાત લે છે.

મહિલાઓ પુસ્તકાલયોનો ઉપયોગ જુદાજુદા હેતુથી કરે છે જેવા કે વાંચન માટે, નવું જ્ઞાન મેળવવા,મનોરંજન માટે, સમય પસાર કરવા માટે વગેરે જેવી રીતે ઉપયોગ કરે છે.

આલેખ નં.૪

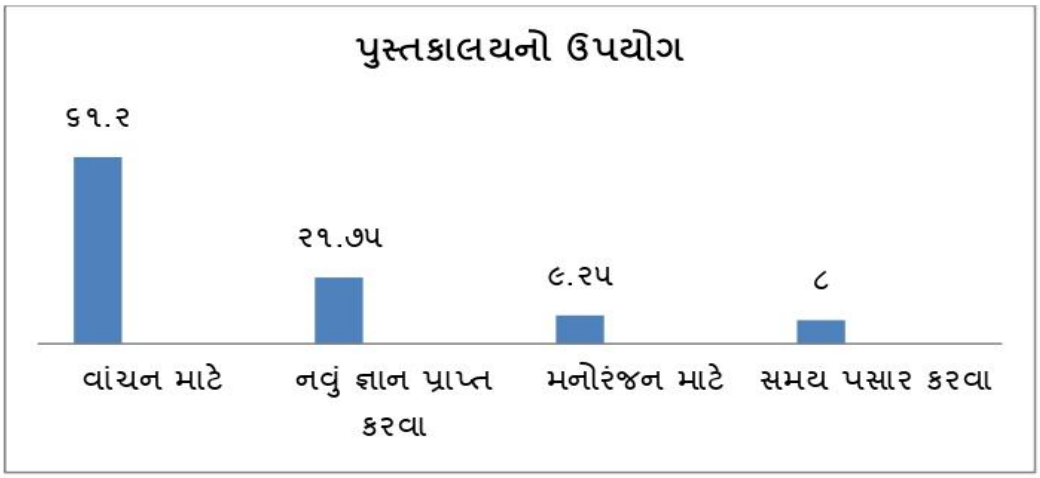

આલેખ નંબર ૪ દ્વારા જાણી શકાય છે કે મહિલાઓ પુસ્તકાલયનો ઉપયોગ શા માટે કરે છે. જેમ કે ૬૧.૨૦% મહિલાઓ વાંચન માટે, ૨૧.૭૫% નવું જ્ઞાન મેળવવા માટે, ૯.૨૫% મનોરંજન માટે જ્યારે ૭.૮૦% મહિલાઓ સમય પસાર કરવા માટે પુસ્તકાલયનો ઉપયોગ કરે છે.

અભ્યાસ દ્વારા એવું જાણી શકાય છે કે પુસ્તકાલયનો ઉપયોગ કરતી મહિલાઓમાં, મહિલાઓ પુસ્તકાલયોમાં કેવા પ્રકાર નું વાંચન કરે છે જે આલેખ નં. ૫ માં દર્શાવામાં આવ્યું છે

આલેખ નં. ૫

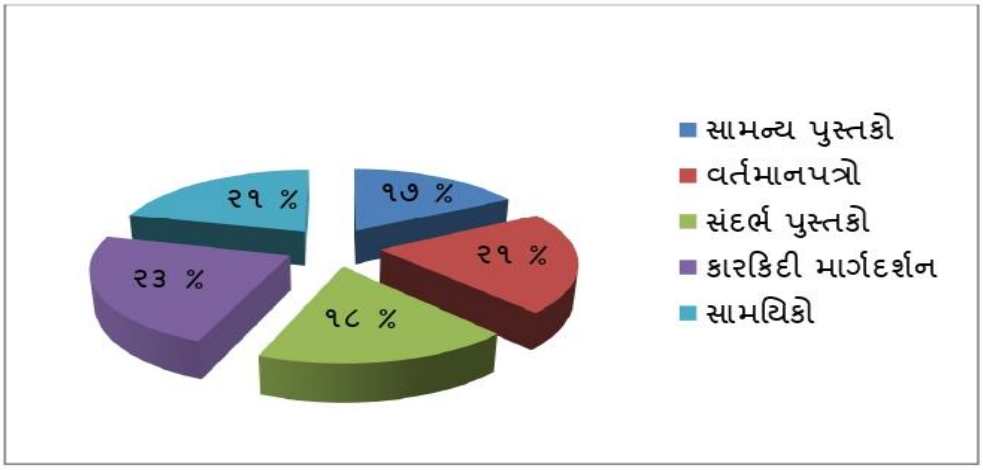

પુસ્તકાલયો જુદીજુદી સગવડો પૂરી પાડે છે જેમાં મહિલાઓના મતે ૭૦.૨૫% પુસ્તકાલયોમાં વાંચન ખંડની સુવિદ્યા છે. ૩૦.૭૫%પુસ્તકાલયો ઈન્ટરનેટ સુવિદ્યા પૂરી પાડે છે. પુસ્તકાલયોમાં વાંચનગૃહની સુવિદ્યા ઉપલબ્ધ છે. જ્યારે તે સિવાય બીજી અન્ય સેવાઓ પણ પૂરી પાડે છે.

મહિલાઓ પુસ્તકાલયોમાં કેવા પ્રકારના પુસ્તકો અને સામયિકોનું વાંચન કરે છે જે આલેખ નંબર ૬ અને ૭માં દર્શાવામાં આવેલ છે.

આલેખ નં. ૬

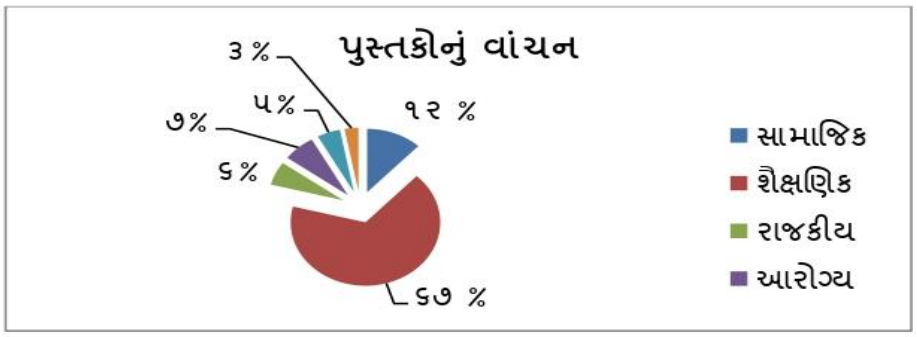

આલેખ નં. ૭

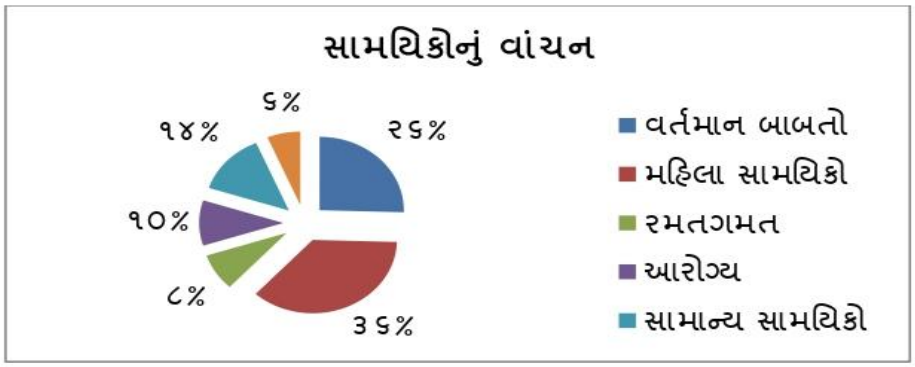

આલેખ નંબર ૬ અને ૭ દ્વારા જોવા મળે છે કે ૬૭% મહિલાઓ પુસ્તકાલયમાં શૈક્ષણિક સબંધિત પુસ્તકોનું વાંચન માટે સૌથી વધુ પસંદ કરે છે, જ્યારે સૌથી ઓછો ૫% કૃષિ સબંધિત અને ૩% ફેશન સબંધિત પુસ્તકોનો ઉપયોગ વાંચન માટે કરે છે. સામાયિકોની પસંદગી કરવામાં આવે તો ૩૬% મહિલાઓ મહિલા સામયિકોને સૌથી વધુ પસંદ કરે છે, ત્યાર બાદ વર્તમાન બાબતો વિશેના સામયિકોને પ્રાથમિકતા આપે છે. જ્યારે કૃષિસબંધિત સામાયિકો સૌથી ઓછું પસંદ કરવામાં આવતું સામાયિક છે.

પુસ્તકાલય અને મહિલા સશક્તિકરણ

અભ્યાસમાં જાણવા મળ્યું કે ૯૫.૪૪% મહિલાઓ માંને છે કે મહિલાઓ માટે પુસ્તકાલય સલામત જગ્યા છે જ્યારે ૪.૫૬% મહિલાઓનું માનવું છે કે મહિલાઓ માટે પુસ્તકાલય સલામત જગ્યા નથી.૫૯.૬૭% મહિલાઓ એવું મને છે કે મહિલાઓ માટે અલગ પુસ્તકાલયની વ્યવસ્થા હોવી જોઈએ જ્યારે ૪૧.૩૩% મહિલાઓનું એવું માનવું છે કે મહિલાઓ માટે અલગ પુસ્તકાલયની વ્યવસ્થા ન હોવી જોઈએ.

નીચેનાં આલેખ નંબર ૮ માં મહિલા સશક્તિકરણમાં મહિલાઓના મતે કોનો ફાળો વધુ છે તેનો અભ્યાસ કરવામાં આવ્યો છે.

આલેખ નં. ૮

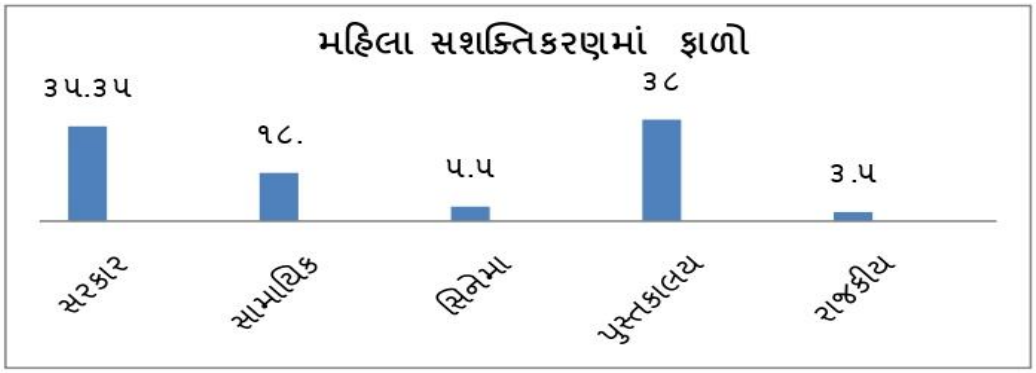

આલેખ નંબર ૮ માં દર્શાવ્યા મુજબ મહિલાઓના વિકાસ અને સશક્તિકરણમાં ૩૮% મહિલાઓએ અભિપ્રાય આપ્યો છે કે તેમના વિકાસમાં પુસ્તકાલયો અગત્યનો ભાગ ભજવે છે. ૩૫.૩૫% મહિલાઓના મત મુજબ સરકારની નીતિઓ અને યોજનાઓ મહિલાઓના સશક્તિકરણમાં સારો એવો ભાગ ભજવે છે,
૬.૨૦% મહિલાઓનું એવું માનવું છે કે પુસ્તકો વ્યવસાયમાં મદદરૂપ થાય છે. ૬૫.૬૦% પુસ્તકાલય દ્વારા મહિલા સશક્તિકરણના કાર્યક્રમો કરવામાં આવતા નથી માત્ર ૩૪.૪૦% પુસ્તકાલય દ્વારા મહિલા સશક્તિકરણના કાર્યક્રમો કરવામાં આવે છે. ૬૯.૬૦% મહિલાઓના મતે મહિલા સશક્તિકરણ પર વધુ પુસ્તકો લખવાની જરૂર છે જ્યારે ૩૧.૪૦% ના મતે આવા પુસ્તકો લખવાની જરૂર નથી.

અભ્યાસ દ્વારા એવું જાણવા મળ્યું છે કે ૭૦%મહિલાઓ ઇ-પુસ્તકાલય વિષે જાણે છે જ્યારે ૩૦% મહિલાઓ ઇ-પુસ્તકાલય વિષે જાણતી નથી તથા ૪૦% મહિલાઓ ઇ-પુસ્તકાલયનો ઉપયોગ કરે છે. ૩૨.૨૫% મહિલાઓ એવી છે જે ઇ- પુસ્તકાલય વિષે જાણે છે પરંતુ તેનો ઉપયોગ કરતી નથી. જ્યારે તેમને પૂછવામાં આવ્યું કે મહિલા સશક્તિકરણમાં કોનો ફાળો વધુ છે ઇ-પુસ્તકાલય કે પુસ્તકાલયનો ત્યારે ૭૦.૧૫% મહિલાઓએ અભિપ્રાય આપ્યો હતો કે પુસ્તકાલયોનો ફાળો વધુ છે. જ્યારે ૨૯.૭૫% મહિલાઓનું માનવું હતું કે ઇ-પુસ્તકાલયોનો ફાળો વધુ છે.

સારણી નં ૯

ક્રમ	પુસ્તકાલયનો ફાળો	અભિપ્રાય
૧	મહિલા સશકિતકરણમાં	મધ્યમ
૨	શૈક્ષણિક સંસ્થા તરીકે	વધુ
૩	ગ્રામીણ મહિલાઓના વિકાસમાં	ઓછો
૪	સ્વ-રોજગાર મેળવવા	મધ્યમ
૫	કૌશલ્ય વિકાસ માટે	વધુ

ઉપરના કોષ્ટક ૯ દ્વારા જુદી જુદી બાબતો અંગે પુસ્તકાલયનો ભૂમિકા જાણી શકાય છે. જેમાં મહિલા સશક્તિકરણમાં પુસ્તકાલયનો ફાળો મધ્યમ છે. મહિલા માટે શૈક્ષણિક સંસ્થા તરીકે પુસ્તકાલયનો ફાળો વધુ છે જ્યારે ગ્રામીણ ક્ષેત્રની મહિલાઓ માટે પુસ્તકાલયનો

ફાળો ઓછો છે. સ્વરોજગારી મેળવવા પુસ્તકાલયનો ફાળો પણ મધ્યમ છે જ્યારે મહિલાઓમાં કૌશલ્ય વિકાસ માટે પુસ્તકાલયનો ફાળો વધુ છે.

અભ્યાસના ફાયદા

- આ અભ્યાસ દ્વારા મહિલાઓનો પુસ્તકાલય તરફનો વલણ જાણી શકાય છે.
- મહિલા સશક્તિકરણ માટે પુસ્તકાલયની વિવિધ પ્રવૃતિઓનો અભ્યાસ કરી શકાય છે. .
- ઇ-પુસ્તકાલય જેવા નવા ખ્યાલો અંગે મહિલાઓના અભિપ્રાયો મેળવી શકાય છે.
- મહિલાઓ કેવા પ્રકારના પુસ્તકો, સામાયિકો પસંદ કરે છે તે જાણી શકાય છે.
- મહિલાઓનો પુસ્તકાલય અંગેનો અભિપ્રાય મેળવી શકાય છે.
- મહિલા સશક્તિકરણ અંગે નવા ખ્યાલ અને અભિપ્રાયો મેળવી શકાય છે.

અભ્યાસની મર્યાદાઓ

- આ અભ્યાસ માત્ર મહિલાઓને ધ્યાનમાં લઇ ને કરવામાં આવ્યો છે.
- માત્ર શિક્ષિત વર્ગને ધ્યાનમાં લઇ આ અભ્યાસ કરવામાં આવ્યો છે.
- આ અભ્યાસમાં મર્યાદિત ભૌગલીક વિસ્તારને ધ્યાનમાં લેવામાં આવ્યો છે.
- આ અભ્યાસ માટે દાહોદ જીલ્લાના ભોગોલિક વિસ્તારને ધ્યાનમાં લેવામાં આવ્યો છે.

અભ્યાસના તારણો

- પુસ્તકોથી મહિલાઓમાં વિચાર શક્તિ વધે છે તથા તેમને પ્રેરણા મળે છે.
- પુસ્તકાલય નવું જ્ઞાન તથા નવું શીખવામાં મદદરૂપ થાય છે.
- પુસ્તકાલય દ્વારા એજુયુકેશન મેળવી શકાય દૂર કરી શકાય છે.
- મહિલાઓનું માનવું છેકે પુસ્તકાલય દ્વારા તેમને તેમના હક્કો પ્રત્યે જાગૃતિ મળે છે.
- સમકાલીન જીવનથી માહિતગાર થઇ તદપરાંત જે બાબતો અંગે અજાણ હોઈએ તે બાબતો જાણી શકાય છે.
- પુસ્તકાલય દ્વારા મહિલા કેળવણી ને વેગ મળ્યો છે જેથી તે દરેક સંજોગોમાં પડકારોનો કઈ રીતે સામનો કરવો તે અંગે ખ્યાલ મેળવી શકાયો છે.
- મોટાભાગની મહિલાઓની પરંપરાગત વિચારસરણીમાં ફેરફાર થાય છે.

- પુસ્તકાલયના કારણે મહિલાઓમાં રોજગારી તથા કૌશલ્ય વિકાસમાં પણ વધારો થયો છે.
- યોગ્ય સમયે યોગ્ય નિર્ણય લેવામાં મદદરૂપ થાય છે.
- પોતાના પર વિશ્વાસ કેળવવા તથા સ્વનિર્ભર બનતા શીખવે છે.

અભિપ્રાય તથા સૂચનો

- જ્યાં ઇ-પુસ્તકાલયો અંગેની સુવિદ્યા ઉપલબ્ધ ના હોય ત્યાં આવી સેવા ઉપલબ્ધ કરાવવી.
- સશક્ત નારીઓની આત્મકથાઓ વધુ લખવાની જરૂર છે.
- પુસ્તકાલયમાં મહિલાઓના વિકાસને લગતા કાર્યક્રમો હાથ ધરાવવા જોઈએ.
- કોઈ બનાવ ન બંને તથા મહિલાઓની સલામતી માટે અલગ વિભાગની ફાળવણી કરવી જોઈએ.
- પુસ્તકાલયો દ્વારા જે મહિલાઓ અભણ છે તે વાંચી તેમજ લખી શકે તેવા કાર્યક્રમો હાથ ધરવા જોઈએ.
- ચિત્રો આધારિત પુસ્તકો હોવા જોઈએ જેથી જે વાંચી ન શકે તે સમજી શકે.
- પુસ્તકાલયોમાં સ્વચ્છતા, બેઠક વ્યવસ્થા, પુરતું ફર્નિચર, શૌચાલય વગેરે જેવી સુવિધાઓ પ્રાપ્ત હોવી જોઈએ.
- મહિલા સશક્તિકરણ માટે વધુ પુસ્તકો લખવાની જરૂર છે. જેથી અન્ય મહિલાઓ ના પ્રેરણા દાયક પ્રસંગો દ્વારા સારી શીખ મેળવી શકાય છે.
- તમામ પ્રકારના સાહિત્યો પ્રદાન કરવા જોઈએ.
- મહિલા સશક્તિકરણને વેગ મળે તે માટે નાના મોટા કાર્યક્રમો કરવા જોઈએ.

સમાપન

મહિલા સશક્તિકરણ પ્રક્રિયામાં પુસ્તકાલય મહત્વની ભૂમિકા ભજવે છે. પુસ્તકાલય મહિલા સશક્તિકરણ માટે જરૂરી માહિતી તેમજ માર્ગદર્શન પુરું પાડે છે. પુસ્તકાલયના કારણે મોટાભાગની મહિલાઓની પરંપરાગત વિચારસરણીમાં ફેરફાર થયો છે. પુસ્તકાલયના કારણે મહિલાઓમાં રોજગારી તથા કૌશલ્ય વિકાસમાં પણ વધારો થયો છે. પુસ્તકાલયો મહિલાઓના વિકાસ માટે મહત્વની ભૂમિકા ભજવે છે. ઇ-પુસ્તકાલયો જેવા નવા ખ્યાલો અંગે મહિલાઓના અભિપ્રાય જાણી શકાય છે. મહિલા સશક્તિકરણ અને પુસ્તકાલય બન્ને

એકબીજા સાથે સંકળાયેલા છે. તેમજ મહિલા સશક્તિકરણ પર પુસ્તકોની હકારાત્મક અસર જોવા મળી છે.

સંદર્ભ:

1) Md. Yesuf Akhter (2021) Role Public Library With Special reference to Woman Empowerment through Kanyashree Prakalpa inWest Bengal of India: Library Philosopy and prectici (e-journal)

2) M.C.Bilwal (2021) Role of Public Library on Woman Empowerment in Dehradun District, Global Journal of Current Research, Vol-8 No1.

3) Keshab Chandra Mandal (2013) Concept and types of women empowerment, International Forum of Teaching and Studies. Vol.9, NO 2(2013)

4) Biswas Subrata (2021) Role of public libraries in Women Empowerment a study with special reference to Kanyashree Prakalpa of Murshidabad district in West Bengal, https://hdl.handle.net/10603/474888.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 160-164

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

युवाओं का सामाजिक परिवर्तन में योगदान

डॉ. पूनम भूषण

असिस्टेंट प्रोफेसर समाज ाास्त्र राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय अगस्त्यमुनि, रूद्रप्रयाग।

सारांश :-

युवा ही दे ा के विकास में मुख्य भूमिका निभाते है। युवावस्था ऐसा समय है जब व्यक्ति जीवन के अर्थ के सम्बन्ध की और उपलब्धियों की तला ा करता है। यह व्यक्ति की खुद की और अपनी क्षमताओं तथा गुणों की गहन खोज की मुख्य अवस्था है। युवा भाक्ति आद ार्वादी होती है। वे समाज में गलत, बुराईयों तथा अपराध के खिलाफ उग्रता का भाव रखते है। भारतीय समाज में युवा परम्परागत समाज को ही आद ार्ा मानकर उसी के साथ चलता रहा है। लेकिन वर्तमान युवा पीढ़ी परंपरागत समाज में बदलाव को लेकर आगे बढ़ रही है। बदलते समाज के साथ ही युवको के सामने अनेक चुनौतियां है। आज समाज का स्वरूप अधिकतर प्रतियोगी हो रहा है। केवल भौक्षिक योगयता ही व्यक्ति को बहुत आगे नही ले जा सकती, अब व्यक्ति से यह आ ाा की जाती है कि वह कार्यो को करवाने में के साथ मिलकर काम करने में और उत्पादकता और धन सम्पत्ति बढ़ाने में अपनी योगयता सिद्ध करें। युवाओं को परिवार तथा समाज में अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। आज युवा आर्थिक विकास, उत्पादन, तथा नवीन तकनीकीयों का प्रयोग कर अपने कर्तव्यों को निभाने के साथ ही कई जिम्मेंदारियों को जीवन के साथ संतुलन बनाकर पूर्ण कर रहा है। वह निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर है। प्रस्तुत भोध अध्ययन 'युवाओं का सामाजिक परिवर्तन में योगदान' विशय पर आधरित है।

युवा भाक्ति किसी भी दे ा राश्ट्र समाज की रीढ़ होती है। युवा ही दे ा के विकास में मुख्य भूमिका निभाते है। इतिहास साक्षी है कि युवाओं ने समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। प्राचीनकाल में आदिगुरू भांकराचार्य से लेकर गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी ने अपनी युवावस्था में ही धर्म और समाज सुधार का बीड़ा उठाया था। बदलती हुई मूल्य पद्धति परम्परागत हिन्दू पद्धति में जीवन को सामाजिक दायित्वों सहित चार अवस्थाओं में देखा जाता है। इसमें युवाावस्था को कोई सत्ता प्राप्त नही है, परन्तु दूसरी ओर गृहस्थ अवस्था में कुछ कार्य दिये होते थे। इस पद्धति में वृद्ध लोगों को सम्मान दिया जाता था। युवावस्था अलाभकारी थी।

युवावस्था ऐसा समय है जब व्यक्ति जीवन के अर्थ के सम्बन्ध की और उपलब्धियों की तला ा करता है। यह व्यक्ति की खुद की और अपनी क्षमताओं तथा गुणों की गहन खोज की मुख्य अवस्था है। यह अपनी नौकरी, जीवन साथी और जीवन में अपनी दि ाा के बारे में निर्णय करने का समय है। अर्नाल्ड टायनबी ने अपनी पुस्तक में 'सरवाइविंग द फयूचर' में युवाओ को सलाह देते हुए लिखा है, कि मरते दम तक जवानी के जो ा को कायम

रखना।

संयुक्त राश्ट्र संगठन के अनूसार 15 और 25 वर्श की आयु के बीच की अवधि युवावस्था है। युवावस्था हर दे ा की अलग–अलग हो सकती है, जैसे कही 15 से 30 वर्श। युवा स्वयं को बुद्धिमान सोचता है वह सोचता है कि परिवार में हर कार्य में उसकी सलाह ली जाय। भारत की 2011 की जनगणना के अनुसार भारत 121 करोड़ से अधिक आबादी वाला दे ा है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में युवा 15–24 वर्श भारत की कुल जनसख्या का पांचवां 19.1 प्रति ात हिस्सा है। पैतींस वर्श तक की आयु वर्ग की जनसंख्या कुल जनसंख्या के पैसठ प्रति ात है। जो हमारी युवा भाक्ति है।

भारत में पहली बार राश्ट्रीय युवा नीति 1988 में लागू हुई थी। 2014 में भी राश्ट्रीय युवा नीति लागू की गई साल 2024 के लिये राश्ट्रीय युवा नीति का ड्राफ्ट जारी किया गया जिसके प्रमुख उद्दे य थे।

युवाओं में कार्यो के प्रति उत्साह बढ़ाना,

युवाओं को आत्मनिर्भर बनाना,

युवाओं को दे ा के संविधान के सिद्धान्तों और मूल्यों के प्रति जागरूक करना,

जीवन में सफलता के लिये अनु ाासन विकसित करना,

युवाओं को न्याय और निश्पक्ष खेलों के प्रति जागरूक करना,

युवाओं को वैज्ञानिक सोच विकसित करने के लिये प्रोत्साहन करना

युवाओं को बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं देना,

करियर व जीवन कौ ाल को बेहतर करने के लिये प्रोत्साहित करना,

नेतृत्व व स्वयं सेवा के लिये प्रोत्साहित करना,

वंचित युवाओं को सुरक्षा, न्याय, और सहायता देना।

इन्हीं उद्दे यों के साथ यह उम्मीद की जा रही है कि 2025 तक दुनिया की चौथी बड़ी अर्थव्यवस्था बन जायेगा। तब वि व की जीडीपी में भारत का योगदान लगभग छह फीसदी होगा। यह बात सत्य है कि बिना खनिज के किसी दे ा का विकास हो सकता है, लेकिन बिना मानव विकास के बारे में सोचा भी नही जा सकता है। जापान इसका उदाहरण है। बिहार, छत्तीसगढ़, और उड़ीसा जैसे राज्य संसाधनों के आवजूद पिछड़े हुए है, जबकि केरल, कर्नाटक जैसे राज्य विकास के मामले में आगे है।

अलगाव भाब्द, या अन्य लोगों से विमुखता :–

युवा और वृद्ध पीढ़ी में मतभेद होता है। ाहरी युवा वि `ाशकर अपने माता' पिता पर आश्रित रहते है। एक ओर वह तो उनकी आकांक्षाओं और अपेक्षाओं मे वृद्धि हुई है दूसरी ओर वह परंपराओं की भाक्ति का विरोध करते है। आधुनिक भारतीय युवा परंम्रागत मूल्यों और प्रतिमानों से बंधे नही रहना चाहता है। वे धर्मनिरपेक्ष जीवन भौली एवं तर्कसंगत दृश्टिकोण अपनाना चाहते है। यही विरोधाभास पैदा करता है। यही से अलगाव का जन्म होता है। अलगाव को उत्पन्न करने वाला दूसरा कारण समाज में व्याप्त बेरोजगारी है। मानसिक रूग्णता, अपराधिक कार्यकलाप, न ाीली दवाओं का सेवन जैसी बुराईयों का ि ाकार हो जाते है। वह स्वयं के व्यक्त्वि की पहचान के विक्षोभ से गुजरते है।

बुजुर्ग पीढ़ी को भी नई पीढ़ी की उनकी जरूरतों, क मक ा, संघर्श व चुनैतियों को समझने की

आव यकता है। युवाओं की दुनियां को संवेदन ीलता के साथ समझना ही परस्पर आदान–प्रदान के अवसरों को जन्म देगा। परिवार में संवेदन ील व आत्मीय सम्बन्धों के निर्माण से ही युवा पीढ़ी की विचारधारा व आचरण में आव यक बदलाव लाया जा सकता है।

युवको के सामने चुनौतियां :–

आज समाज का स्वरूप अधिकतर प्रतियोगी हो रहा है। केवल भौक्षिक योग्यता ही व्यक्ति को बहुत आगे नही ले जा सकती, अब व्यक्ति से यह आ ा की जाती है कि वह कार्यो को करवाने में के साथ मिलकर काम करने में और उत्पादकता और धन सम्पत्ति बढ़ाने में अपनी योग्यता सिद्ध करें।

आत्मवि वास एक युवक के सामने पहली चुनौती है। एक बढ़ते हुए युवक को अपने भारीरिक और भावनात्मक परिवर्तनों से उत्पन्न उलझनो जिनसे वह निपट रहा है के बीच खड़े होने के लिये जगाह की तला ा करनी पड़ती है। इसी के साथ–साथ भली–भंति कार्य निश्पादन करने और ख़ुद को सिद्ध करने का बाहय दबाव भी उसके ऊपर होता है। आजकल माता–पिता द्वारा भी युवको पर दबाव रहता है। वे अध्ययन और परीक्षाओं के ऐसे कार्यक्रमों में बाध्य रहते है जिनसे यह सुनि चत होता हैकि उनका बालक अत्यधिक बढ़ती प्रतियोगिता के इस दौर में टिक पाने का अवसर प्राप्त कर सकें।

परिवार के साथ संबंध दूसरी चुनौती है उन्हें परिवार के लोगों यहां तक कि माता–पिता भी आंखों की किरकिरी लगने लगते है उन्हें अपने साथी समूह में रहना ही अच्छा लगता है। उनके साथ उठना–बैठना बातें करना घूमना फिरना पसंद करते है।

युवा भाक्ति आद ावादी होती है। वे समाज में गलत, बुराइयों तथा अपराध के खिलाफ उग्रता का भाव रखते है। वह परिवर्तन के लिये आगे आते है लेकिन कुछ राजनैतिक दलों, उग्रवादी समूह, साम्प्रदायिक भाक्तियों तथा धार्मिक समूह द्वारा उनके आद ावाद को चोट पहुंचाती है। आज युवा पीढ़ी समाज में सुधार के प्रति संवेदन ील है। उन्हें सकारात्मक परिवर्तन लाने के लिये प्रेरित किया जा रहा है।

स्वास्थ्य सम्बंधी खतरें प्रति वर्श अनेक युवा एच0 आई0 वी0, एड्स के खतरें, औशधियों के लत के खतरें, ाराब, सिगरेट, सड़क दुर्घटनाओं की बढ़ती संख्या, पर्यावरणीय समस्यायें जिनके बारें में जानकारी कम प्रदान की जाती है। जिससे कई ग्रामीण तथा भाहरी युवा पूर्ण जानकारी नही रखते है। कई अवसरों पर ग्रामीण तथा भाहरी युवाओं भेद के कारण विभाजन से कुंठा की प्रवृत्ति जन्म लेती है।

स्वास्थ्य और देखभाल में अध्ययन के प्रति युवा पीढ़ी जागरूक है। युवा अब अधिक ताजगी से फिटनेस, योग और स्वस्थ्य आहार के प्रति ध्यान केन्द्रित कर रहें है। विभिन्न प्रदे ाों में युवाओं की वि ोशताओं में विधमान अंतर के बावजूद और समान समस्याओं की पहचान की जा सकती है।

जनसंख्या में ग्रामीण युवाओं का प्रति ात काफी ऊंचा है। इनको अपनी भूमिका अदा करने के अवसर दिये जाने चाहियें। इस संबंध में ि ाक्षा का अभाव एक बड़ी समस्या है।

युवाओं के सामाजिक दृश्टिकोण में परिवर्तन :–

करियर की नई दि ाओं के प्रति दृश्टिकोण बदल रहा है। वे नौकरी की जगह उधमिता, स्वतंत्रता और सो ाल इम्पैक्ट पर जोर दे रहें है। युवा आधुनिक तकनीकी स्वावलंबन की दि ा में बदलता दृश्टिकोण है। नए तकनीकी उपायों का इस्तेमाल करके समस्याओं का समाधान निकालने के लिये उत्साहित है।

भारतीय समाज में पारंपरिक सामाजिक दृश्किोण में मुख्य रूप से परिवार और सामुदायिक सम्बन्धों पर आधारित रहा है। आज युवा सामाजिक जिम्मेदारियों, जैसे बुजुर्गो की देखभाल, समाज की सेवा, और सामुदायिक कार्यक्रमों में भागीदारी युवाओं की प्राथमिकता में भाामिल है। परिवार के प्रति जिम्मेदारियों करियर के प्रति भी जागरूक है। अपनी परिवार तथा समाज के प्रति जिम्मेदारियों को निभाने के लिये नए सम्पर्क तरीके तला ा रहे है जैसे डिजिटल माध्यमों से सम्पर्क, वित्तीय सहायता, तथा कभी –कभी व्यक्तिगत उपस्थिति भी।

भारत में वै वीकरण और भाहरीकरण की प्रक्रिया तेजी से बढ़ रही है। संयक्त परिवार की जगह अब एकांकी परिवार ने ले ली है। और युवाओं की प्राथमिकताएं व्यक्तिगत विकास और करियर में सफलता पर केन्द्रित हो गई है। भाहरीकरण के कारण युवाओं का भाहरों की तरफ पलायन हो रहा है।

तकनीकी उन्नति और डिजिटल युग 21वीं सदी में तकनीकी क्रांति और इंटरनेट की पहुंच ने युवाओं के जीवन में क्रांतिकारी बदलाव लाए है। आज युवा पारंपरिक नौकरी के विचार से हटकर स्टार्टअप्स, फ्रीलांसिंग और क्रिएटिव इंडस्टीज मे अपनी पहचान बना रहे है। हालांकि इसका प्रभाव उनकी पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेंदारियों पर भी पढ़ रहा है। क्योंकि युवाओं की प्राथमिकताएं अब तेजी से बदलती डिजिटल दुनिया के साथ जुड़ी है।

ि ाक्षा सदा से ही सामाजिक दृश्टिकोण को प्रभावित करती रही है। पहलें करियर के रूप में जहां सरकारी नौकरी का ही प्राथमिकता दी जाती थी अब युवा निजी क्षेत्रों, बहुराश्टीय कम्पनियों, और उधम ीलता की तरफ आकर्शित हो रहें है।

सामुदायिक सेवा, सामाजिक संगठनों से जुड़ने और जनकल्याण की योजनाओं में सक्रियता के साथ ही अपनी जिम्मेदारियों को निभाने की कोि ा ा करते है।

महिला युवाओं के दृश्टिकोण में बदलाव आया है। महिलायें हर क्षेत्र में कदम बढ़ा रही है वह घर–परिवार के साथ–साथ अपनी नौकरी, रोजगार को भी कर रही है। अब महिलाओं के प्रति भी सोच में परिवर्तन आ रहा है।

निष्कर्ष :–

प्रस्तुत अध्ययन से निश्कर्श निकला कि भारतीय युवाओं का दृटिकोण सदा ही परिवार तथा समाज की जिम्मेदारियों को निभाने में ही मुख्य रहा है। समाज के बदलते समयानुसार युवाओं का जीवन ि ाक्षा के बढ़ते स्तर, तकनीकी प्रगति, और आर्थिक अवसरों से प्रभावित रहा है। युवा स्वयं के भविश्य को अधिक महत्व देने लगा है। समाज के पारंपरिक दृश्टिकोण में बदलाव आया है। युवा आज किसी भी कार्य में अपनी जिम्मेंदारियों को निभानें में पीछे नही है। वह परिवार, समाज की हर जिम्मेदारी को निभाते हुए अपने कैरियर को भी सुदृढ़ बना रहा है। आर्थिक विकास, उत्पादन, तथा नवीन तकनीकीयों का प्रयोग कर अपने कर्तव्यों को निभाने के साथ ही कई जिम्मेंदारियों को जीवन के साथ संतुलन बनाकर पूर्ण कर रहा है। वह निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर है।

सन्दर्भ सूची :–

1. कपूर डी, 2020, आधुनिकता और भारतीय युवा : सोच में परिवर्तन, नई दिल्ली : यूनिवर्सिटी पब्लिके ान।
2. चौधरी एस, 2018, युवाओं के सामाजिक दृश्टिकोण का समाज पर प्रभाव, आगरा : साहित्य सृजन।

3. मेहता आर, 2019, परिवार करियर औी युवा : एक त्रिकोणीय दृश्टिकोण, मुंबई : पेगुइन प्रका ान।
4. त्यागी सुरभी 2020 वै वकरण के परिप्रेक्ष्य में युवा असन्तोश का एक वि लेशणात्मक अध्ययन, आगरा।
5. वर्मा पी, 2019, भारतीय समाज में युवाओं की भूमिका और उनकी सामाजिक जिम्मेदारियां कानपुर : साहित्य संगम।
6. युवा वर्ग : पहचान और अलगाव, इग्नू पुस्तक, पृ0 सं0 1–14
7. www.janstta.com युवा भाक्ति में राश्ट भाक्ति।
8. www.researchgate.net भारत में युवाओं के मुद्दे और चुनौतियां : एक मनो–सामाजिक परिप्रेक्ष्य।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 165-173

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UNDERSTANDING MODERN ROMANTIC RELATIONSHIP

Dr. Jyoti Meena

Assistant professor (Human Development and Family), University of Rajasthan, Jaipur-302004

ABSTRACT :

Present paper emphasise the evolving dynamics of modern romantic relationships, highlighting trends that define contemporary partnerships in broad concept. Changes in relationship dynamics are the shifts towards equality, emotional intimacy, open communication, and personal growth. The traditional roles once ascribed to partners have given way to more flexible arrangements, where both individuals contribute equally, emotionally and practically, fostering a supportive environment (balanced and mutually). Additionally, the rise of digital and hybrid dating, diverse relationship structures, and the influence of technology on maintaining connections are examined. The paper also discusses the challenges of modern relationships, including societal pressures, digital burnout, and the complexities of non-traditional relationship models. Specifically, it addresses how these trends are reshaping relationship dynamics across different cultures, with a focus on India, where modern dating practices like Living Apart Together (LAT) and slow dating are emerging alongside a resurgence of traditional matchmaking. This comprehensive analysis illustrates the shift towards relationships based on personal autonomy, emotional fulfilment, and mutual respect, reflecting broader societal changes and individual desires for deeper, more authentic connections.

Key words : Modern relationships, Romantic Relationship, LAT

MODERN RELATIONSHIPS :

Modern relationships are often characterized by evolving dynamics, open communication, and a focus on mutual growth and respect. In contrast to older models where traditional roles were more rigid, today's relationships tend to prioritize equality, emotional support, and personal fulfilment for both partners.

Key aspects of modern relationships :

1. **Equality and Partnership :** In modern relationships, partners typically share responsibility,

whether it's emotional, financial, or domestic. Previously one partner being solely responsible for certain roles like provider or caretaker. Instead, there's more of a focus on teamwork, where both individuals contribute equally and support each other in different ways in their tasks.

2. Open Communication : One of the biggest shifts in modern relationships is the emphasis on honest, transparent communication. People tend to express their feelings, concerns, and needs openly with their loving ones. Open communication fosters better understanding, conflict resolution, and emotional connection, which are essential for long-term success.

3. Emotional Intimacy : Modern relationships place a strong focus on emotional intimacy, where both partners feel safe expressing their vulnerabilities. This means sharing not only good moments but also fears, struggles, and insecurities. The emotional bond is often seen as just as important as physical attraction, with many people viewing emotional closeness as the foundation of a healthy relationship.

4. Independence and Personal Growth : While modern couples often value their time together, there's also a deep respect for individual independence. People in modern relationships tend to want space for their personal pursuits, careers, and hobbies. This independence allows each partner to grow as an individual while also contributing to the partnership.

5. Mutual Respect and Support : Modern relationships emphasize respecting each other's boundaries, opinions, and life choices. Partners are more likely to support each other's dreams and challenges, understanding that both people are equal contributors to the relationship.

6. Non-Traditional Roles : Modern relationships often don't adhere to stereotypical gender roles. Both partners may take on different tasks in the relationship based on their strengths, interests, or circumstances, rather than assuming a set role based on gender expectations. This flexibility can create a more balanced, fair, and fulfilling partnership.

7. Technology's Role : In today's world, technology plays a significant role in modern relationships. Whether it's through social media, texting, or video calls, technology helps couples stay connected even when they're physically apart. However, it also requires navigating the challenges of digital communication, such as balancing screen time and privacy concerns.

8. Challenges of Modern Relationships : While modern relationships have many positives, they also face unique challenges. These can include dealing with societal pressure, balancing careers with relationship time, navigating long-distance dynamics, and coping with the fast-paced, often overwhelming nature of modern life. There's also the impact of online dating, which can offer both exciting possibilities and complications when it comes to meeting people and sustaining connections.

9. Flexibility in Definitions : Today's relationships come in many forms—whether it's

monogamous, polyamorous, or open relationships. Many people are more open to exploring non-traditional relationship structures as long as there's mutual understanding and respect.

10. Emphasis on Mental Health : Modern couples often recognize the importance of mental health and self-care. Both partners are more likely to understand the impact of mental health on relationships and may be more open to seeking therapy or other forms of support when needed.

At the heart of modern relationships is the desire for a balance between love, respect, personal growth, and shared experiences. With a greater emphasis on open dialogue, emotional connection, and individual empowerment, people today are more likely to approach relationships as a partnership where both individuals thrive both together and independently.

MODERN ROMANTIC RELATIONSHIPS :

Modern romantic relationships are continually evolving, influenced by societal shifts, technological advancements, and changing cultural norms. Here are some current trends shaping contemporary romance:

1. Digital and Hybrid Dating : The rise of online dating platforms has transformed how people meet and connect. While digital interactions remain prevalent, there's a noticeable shift towards in-person connections. Although its show very much consequences in relationships but today connecting mode is completely depended on this.

2. Authenticity and Transparency : There's a growing emphasis on genuine self-presentation. Singles are increasingly interested in unfiltered dating content, such as live-streamed break-ups and post-date debriefs. This trend, known as "Date With Me," allows individuals to share intimate details of their love lives online, fostering a sense of authenticity and connection.

3. Diverse Relationship Structures : Modern relationships are embracing a variety of structures beyond traditional monogamy. There's a rise in both celibacy and polyamory, with individuals exploring different ways to connect and form bonds.

4. Micro-Mance and Thoughtful Gestures : The "Micro-mance" trend emphasizes small, thoughtful gestures over grand romantic declarations. Singles are focusing on meaningful, everyday actions that build connection and intimacy.

5. Embracing Individuality : There's a shift towards embracing individuality and authenticity in dating. Trends like "freak matching," where couples bond over shared quirks, and "grim keeping," involving bonding over shared dislikes, reflect a move towards accepting and celebrating unique traits in partners.

6. Impact of Social Media : Platforms like TikTok, snapchat, instagram have significantly influenced dating culture, introducing terms like "beige flags" and "couple goals." While these trends

can offer entertainment and connection, they may also create unrealistic expectations and foster a culture of seeking external validation for romantic lives.

7. Long-Distance Relationships : Advancements in communication technology have made long-distance relationships more feasible. Couples are utilizing video calls, online games, and shared virtual experiences to maintain intimacy despite physical separation.

This comprehensive overview of modern relationships dynamics have evolved, reflecting a balance between tradition and innovation in both romantic expectations and societal norms. The emphasis on equality, communication, emotional intimacy, personal growth, and independence in relationships has transformed the way people approach love and partnership today. These trends reflect a shift away from rigid roles and expectations, allowing individuals to craft relationships that align more closely with their values and needs. These trends highlight a move towards more personalized, authentic, and diverse approaches to romance, reflecting broader societal changes and individual desires for meaningful connections.

Modern romantic relationships in Indian context :

Modern romantic relationships in India are evolving, influenced by technological advancements, changing societal norms, and a desire for deeper connections.

1. Living Apart Together (LAT) : Couples are embracing the "Living Apart Together" trend, maintaining romantic relationships while living separately. This arrangement allows for personal space and independence, reflecting a shift towards individual autonomy within relationships.

2. Timeline Decline : Indian women are increasingly rejecting traditional relationship timelines, opting to date at their own pace.

3. Slow Dating : There is a growing preference for "slow dating," where individuals prioritize quality over quantity in their romantic pursuits. This trend emphasizes meaningful connections and mental well-being, with a third of Indians actively engaging in slow dating practices.

4. Resurgence of Traditional Matchmaking : Despite the rise of online dating platforms, traditional matchmaking is experiencing a resurgence. Many individuals are seeking connections based on shared values and cultural heritage, highlighting the enduring relevance of personalized matchmaking services.

These trends reflect a dynamic shift in India's romantic landscape, where individuals are increasingly seeking relationships that balance tradition with modern values, emphasizing personal growth, compatibility, and authentic connections. Trends, such as slow dating, living apart together (LAT), digital dating, and the increasing acceptance of diverse relationship structures, all demonstrate that relationships today are becoming more tailored to individual preferences and less bound by

societal norms. The ongoing impact of technology through dating apps, social media, and digital communication continues to shape relationships form and evolve.

Reviews on current trends in romantic relationships, particularly in modern contexts, often explore both the positive and challenging aspects. Here's a summary of reviews on various aspects of today's romantic relationships:

1. Digital and Hybrid Dating :

- **Pros** : Many reviews highlight the convenience of online dating platforms, which allow people to meet potential partners they might never have crossed paths with otherwise. The growth of apps, especially with specialized features for niche groups, makes dating more accessible and inclusive.
- **Cons** : On the flip side, critics argue that online dating can encourage superficial connections and increase the chance of mismatched expectations. Some users report that the abundance of choice can feel overwhelming and lead to "paradox of choice," where people are unable to commit because they fear missing out on a better match.

2. Slow Dating :

- **Pros** : Slow dating is praised for encouraging more intentional connections. It's seen as a way to build deeper, more authentic relationships instead of rushing into a commitment. This trend is particularly welcomed by those tired of casual dating and short-lived relationships.
- **Cons** : Some reviews argue that slow dating can lead to missed opportunities if both individuals aren't on the same page regarding expectations. People who are used to quicker connections might feel frustrated by the slower pace.

3. Living Apart Together (LAT) :

- **Pros** : LAT arrangements have been lauded for allowing couples to maintain their independence while being emotionally and romantically committed. This setup is appreciated by people who value personal space or have demanding careers.
- **Cons** : Reviews mention that LAT can sometimes lead to misunderstandings about commitment levels. Some argue that it can create emotional distance, and over time, couples may struggle to build a life together if they're never physically sharing space.

4. Matchmaking Resurgence :

- **Pros** : The resurgence of traditional matchmaking in India has been praised by those who value family involvement and cultural alignment in relationships. It's also seen as a way to ensure compatibility beyond just physical attraction.
- **Cons** : Critics point out that this trend might still place undue pressure on individuals to conform to societal expectations, especially when it comes to caste, religion, or financial background.

There's concern that it might perpetuate outdated ideals about marriage.

5. Modern Matchmaking :

- **Pros** : The shift towards modern matchmaking platforms in India, with data-driven algorithms, offers greater accessibility and wider options for singles. Many appreciate the ability to filter potential partners according to specific preferences.
- **Cons** : Some reviews caution that relying too much on algorithms can make it harder for people to make intuitive, genuine connections. There's also concern that these platforms can sometimes promote unrealistic beauty standards or lead people to prioritize superficial qualities.

6. Social Media's Influence on Relationships :

- **Pros** : Social media can offer an easy way for couples to stay connected, even long-distance. Some people use platforms to share personal milestones or connect with others who share similar relationship struggles.
- **Cons** : Social media is often criticized for fostering unrealistic portrayals of relationships. Couples who compare their relationships to those seen online might feel pressured or dissatisfied. It can also contribute to toxic behaviors like jealousy and insecurity.

7. Non-Traditional Relationship Structures (Polyamory, Celibacy) :

- **Pros** : The increasing acceptance of non-monogamous and celibate relationships is seen as empowering for those who don't fit into traditional relationship molds. It allows individuals to explore their needs and desires without judgment.
- **Cons** : However, these relationship structures still face stigma in many cultures. Some people find it difficult to embrace alternative lifestyles due to deeply rooted societal expectations of monogamy or marriage.

8. Mental Health and Romantic Relationships :

- **Pros** : Mental health awareness in relationships has been gaining traction, with many reviews praising couples who prioritize emotional well-being and seek therapy when needed. It's seen as a positive trend for building healthier relationships.
- **Cons** : On the downside, not all couples have access to the resources necessary to address mental health concerns. There's also the challenge of balancing self-care with relationship needs, as one partner's struggles can sometimes overwhelm the dynamic.

In general, many of the trends in modern romantic relationships are embraced for their focus on authenticity, personal growth, and mutual respect. However, challenges like digital burnout, shifting societal expectations, and the impact of social media often emerge as drawbacks. Overall, there's a strong desire to find meaningful, long-lasting connections that align with personal values and individual

needs.

Romantic relationship in women :

A romantic relationship is an emotional bond between two people, often characterized by love, affection, trust, and intimacy. It can manifest in various forms, from dating to long-term partnerships or marriages. The essence of a romantic relationship often lies in mutual respect, communication, shared values, and emotional connection. When talking about women in the context of romantic relationships, it's important to recognize that modern women, like all individuals, have diverse perspectives, desires, and needs. Women's roles and expectations within relationships have evolved significantly, reflecting changes in society, culture, and individual choice.

Today, many women seek relationships that are based on equality, respect, and shared goals. Communication, understanding, and emotional support are often valued highly, and there's a growing emphasis on mutual growth and personal fulfillment. Modern romantic relationships also increasingly embrace the idea of partnership, where both individuals contribute equally to the relationship's dynamics. In terms of expectations, women might look for partners who offer emotional support, commitment, and care. At the same time, women also desire independence, career fulfillment, and personal growth. The ideal relationship often feels like a balance between love and personal space, where both partners can flourish individually and together.

Romantic relationship in men :

Similar to women, the expectations and roles of men in romantic relationships have evolved significantly in recent years. While there are still traditional aspects of masculinity that may influence how some men approach relationships, modern men often seek deep emotional connections and equality in their partnerships as well.

In today's relationships, many men want emotional intimacy and communication with their partners. The idea of vulnerability and expressing feelings openly has become more accepted. Men are increasingly recognizing the value of emotional support, trust, and mutual respect in relationships, rather than relying solely on being the "provider" or "protector" as has been traditionally expected in some cultures. Modern men also seek balance in their relationships. They may want a partner who supports them emotionally while also valuing their own independence, career, and personal goals. Many men appreciate relationships where they can share responsibilities and make decisions together, rather than adhering to rigid gender roles.

In terms of expectations, men may look for partners who offer companionship, mutual respect, and emotional support, while also having shared interests or goals for the future. Like women, many men value a sense of growth—both within themselves and with their partner.

Men today are also increasingly seeking partnerships where they are not only lovers but also close friends who can communicate openly about hopes, dreams, and challenges. There's a greater focus on building a partnership that is based on shared values, mutual respect, and long-term happiness.

Similarly, men's expectations have evolved, with a focus on emotional intimacy, vulnerability, and a balance between independence and partnership. The shift away from traditional gender roles, where men were expected solely to be the "provider" or "protector," has led to more emotionally connected and equal relationships. Today, men are equally seeking companionship, emotional support, and the opportunity to grow together with a partner.

Moving Forward :

As these evolving trends shape romantic relationships, both women and men are navigating how to balance individual growth, emotional intimacy, and partnership. The importance of open communication, mental health awareness, and personal fulfillment is central to modern relationships, but they also come with challenges like the effects of social media, technology's role, and navigating new relationship structures. Modern relationships are evolving towards partnerships with emotional intimacy, equality, personal growth, and mutual respect.

The modern romantic relationship landscape has shifted significantly in India as well, with trends like Living Apart Together (LAT), Slow Dating, and a return to traditional matchmaking, reflecting both a desire for personal autonomy and deeper, more meaningful connections. Technological advances and changing societal norms influence both relationship formation and maintenance.

This evolving landscape shows that modern relationships are not only about love but about fostering mutual respect, personal growth, and authentic connections, where both partners have equal opportunities to flourish individually and together. While there are numerous benefits to modern trends, challenges like social media pressures, digital burnout, and societal expectations persist.

Here are some books suggested that explore modern romantic relationships, the impact of technology, changing societal norms, and evolving trends in love and dating :

- Ansari, A., & Klinenberg, E. (2015). *Modern romance*. Penguin Press.
- Chapman, G. (2010). *The 5 love languages: The secret to love that lasts*. Northfield Publishing.
- Fisher, H. E. (2004). *Why we love: The new science of romantic relationships*. Henry Holt and Company.
- Jones, D. (Ed.). (2008). *Modern love: 50 true and extraordinary tales of desire, deceit, and devotion*. The New York Times.
- Levine, A., & Heller, R. (2010). *Attached: The new science of adult attachment and how it can help you find—and keep—love*. Tarcher Perigee.

- Perel, E. (2017). *The state of affairs: Rethinking infidelity*. HarperCollins.
- Strauss, N. (2015). *The truth: An uncomfortable book about relationships*. HarperCollins.

REFERENCES:

1. Deccan Herald. (2024, November 12). *How Indians are dating heading into 2024: The rise of slow dating*. https://www.deccanherald.com/india/how-indians-are-dating-heading-into-2024-2771877
2. Herald Sun. (2024, September 29). *Indian matchmaking: How a century-old tradition is making a comeback in modern dating*. https://www.heraldsun.com.au/leader/indian-matchmaking-how-a-centurys-old-tradition-is-making-a-come-back-in-the-world-of-modern-dating/news-story/bbd5e2c684b0294ca8cb690a68d57b5f
3. Indian Express. (2024, December 17). *Living Apart Together: Indian couples embracing the trend of living separately while staying together*. https://indianexpress.com/article/lifestyle/feelings/love-separate-spaces-indian-couples-embracing-living-apart-together-trend-9786779
4. New York Post. (2024, September 28). *Poll reveals what dating trends in 2025 will look like - including bonding over their 'dark sides'*. https://nypost.com/2024/09/28/us-news/poll-reveals-what-dating-trends-in-2025-will-look-like-including-bonding-over-their-dark-sides/
5. *News.com.au. (2025, February 19). Racy pics expose 'wild' new dating trend*. https://www.news.com.au/lifestyle/relationships/dating/juicy-new-dating-trend-booming-in-australia-2025-bumble-report-reveals/news-story/98bfd2d68e33341856d0ee0bb4ff75c4
6. The Guardian. (2024, October 1). *People are turning their backs on love, says new Guardian research*. https://www.theguardian.com/gnm-press-office/2024/oct/01/people-are-turning-their-backs-on-love-says-new-guardian-research
7. The News Minute. (2024, October 5). *Timeline Decline: How Indian women are reclaiming agency in romantic relationships*. https://www.thenewsminute.com/partner/timeline-decline-trend-how-indian-women-are-reclaiming-agency-in-romantic-relationships

Dr.meenajyoti@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 174-179

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Echoes of Empathy : Finding Common Ground in Indian and Western Environmental Wisdom

Dr. Gauranga Das

Assistant Professor, Department of Philosophy, Kalimpong College,

Kalimpong, West Bengal, India, Pin Code: 734301

Abstract :

The urgent environmental crisis necessitates a reevaluation of humankind's connection with nature and a global shift in ethical attitudes. Despite their historical differences, this article suggests that both Indian and Western intellectual traditions have deep "echoes of empathy" that might come together to create a strong, inclusive environmental ethics. We delve into core tenets of Indian environmental wisdom, exploring concepts like *ahiṁsā* (non-harm), *Prakṛti* (the sacred feminine principle of nature), the reverence for Mother Earth (*Bhumi Devi*), and the principle of *loka-saṁgraha* (universal well-being), which collectively foster an ethic of interconnectedness and intrinsic value [1, 2]. At the same time, we look at how Western environmental thought has changed over time, from anthropocentric dominance to the rise of deep ecology, ecofeminism, biocentric and ecocentric ethics, and the scientific discoveries of the Gaia hypothesis 3, 4. We recognize that instrumental and dualistic perspectives have historically dominated Western thought, but we also highlight how modern Western philosophical developments are increasingly aligning with the holistic perspectives of Indian traditions. Through comparison, this article identifies strong aspects of agreement, particularly in the growth of compassion, the critique of atomistic individualism, the recognition of nature's intrinsic value, and the stress on interconnectedness. We propose that a synthesising environmental ethic that cuts across cultural divides, fosters profound compassion for the non-human world, and guides humanity towards a more sustainable and peaceful planet can be achieved by bringing these diverse viewpoints into discussion.

Keywords : Environmental Ethics, Empathy, Indian Philosophy, Western Philosophy, Interconnectedness, Ahimsa, Gaia Hypothesis, Deep Ecology, Common Ground, Sustainability, Comparative Philosophy.

1. Introduction : The Universal Call of a Wounded Earth :

The contemporary global environmental crisis, characterized by the existential threat of climate change, the rapid unraveling of biodiversity, and widespread ecosystem degradation, signals a fundamental rupture in humanity's relationship with the natural world [5]. Beyond national and cultural boundaries, this predicament necessitates a collective reevaluation of our moral responsibilities to the globe. There is a growing recognition that a really comprehensive and successful environmental ethic

must draw on a wider, more diversified tapestry of human expertise, despite the fact that Western scientific and philosophical frameworks have often dominated environmental discourse.

This article embarks on a comparative philosophical trip in search of "echoes of empathy"—shared principles, resonant insights, and common ground—between Indian and Western environmental thinking. Despite their divergent historical trajectories, cultural contexts, and methods of investigation, we argue that both traditions provide important insights that, when articulated, might encourage a more thorough, compassionate, and ultimately more effective approach to environmental stewardship. We will look at how each tradition frames human responsibility, interprets nature, and sets values, highlighting similarities that speak to a shared ethic of environmental care.

2. The Indian Echoes: Empathy from Interconnectedness and Reverence :

Indian philosophical and spiritual traditions are deeply interwoven with daily living and ecological practices, often showing an intuitive, deeply compassionate relationship to nature. These traditions are based on the concepts of non-duality and universal kinship.

2.1. *Ahiṁsā* and the Web of Life :

***Ahiṁsā* (Non-Harm) :** Central to Hinduism, Buddhism, and Jainism, ahimsa is the principle of non-violence extending to all living beings[1]. This is not merely a negative injunction against causing harm, but a positive cultivation of compassion and empathy for all life. In Jainism, ahimsa is applied with rigorous precision, leading to practices that minimize harm to even microscopic organisms, reflecting a profound biocentric reverence [6].

***Pratītyasamutpāda* (Dependent Origination) :** In Buddhist philosophy, the concept of *pratītyasamutpāda* highlights that all phenomena are interdependently arisen, meaning nothing exists in isolation[7]. This understanding fosters a radical sense of interconnectedness and mutual dependence, implying that harming any part of nature is ultimately harming oneself. Thich Nhat Hanh's concept of "interbeing" beautifully encapsulates this, urging recognition that "we are the Earth" [8].

2.2. The Sacredness of *Prakṛti* and Mother Earth :

***Prakṛti* :** In various Hindu philosophical systems, *Prakṛti* is the primordial, creative energy or universal substance, often personified as feminine and dynamic. It is the material cause of all existence, active, intelligent, and intrinsically sacred [2]. This frames nature not as passive matter, but as a vibrant, living entity worthy of deep respect.

Bhumi Devi / Pṛthvi Mātā : The Earth is revered as *Bhumi Devi* or *Pṛthvi Mātā* (Mother Earth) across Hindu scriptures and popular devotion[9]. This personification embodies the Earth as a divine mother who sustains all life and demands reciprocal respect and non-harm. The *Atharva Veda*'s "Hymn to the Earth" (*Bhumi Suktam*) is a foundational text articulating this profound reverence, celebrating Earth's diverse ecosystems and creatures as integral parts of her being[10].

Loka-samgraha : This Hindu concept refers to the well-being and cohesion of the entire world (cosmos), not just humanity. It implies an ethical responsibility to maintain the balance and harmony of the whole system, extending moral consideration beyond anthropocentric concerns to the entire cosmic order [11].

2.3. Traditional Ecological Knowledge and Ethical Practice :

Across India, traditional ecological knowledge (TEK) and practices, such as the protection of "sacred groves" (*Devrai*), the reverence for specific trees, and sustainable agricultural methods, are often rooted in these ethical and spiritual understandings. These practices demonstrate a lived ethic of empathy and coexistence, where human well-being is understood as inextricably linked to the health of the natural world [12, 13].

3. Western Forests: Empathy from Scientific Discovery and Ethical Evolution :

Despite Western philosophy's long history of anthropocentrism and human-nature dualism, scientific progress and critical philosophical analysis have sparked a profound ethical change in modern Western thought, creating powerful "echoes of empathy."

3.1. The Legacy of Dualism and Dominion :

Early Western thought, influenced by interpretations of Judeo-Christian dominion (Genesis 1:28) and Cartesian mind-body dualism, often positioned humanity as separate from and superior to nature, fostering an instrumental and extractive relationship [3, 14]. Nature was largely seen as a resource to be managed or conquered.

3.2. Ethical Shifts : From Stewardship to Intrinsic Value :

Conservation and Preservation : Early movements like conservation (wise use for human benefit) and preservation (protecting wilderness for aesthetic/spiritual value) marked initial shifts from pure exploitation, but often retained anthropocentric or dualistic tendencies [15].

Aldo Leopold's Land Ethic : Leopold's call to extend moral consideration to the "land" itself, viewing humans as "plain members and citizens" of the biotic community, was a pivotal step towards recognizing intrinsic value beyond human utility [4].

Biocentrism and Ecocentrism : These ethical frameworks explicitly assert the intrinsic value of all living organisms (biocentrism) and ecological wholes (ecocentrism), regardless of their utility to humans [16].

Deep Ecology (Arne Naess) : Deep ecology became a prominent voice for ecocentrism, advocating for a fundamental shift in consciousness from anthropocentrism to an identification with the larger ecological self. This "ecological self" cultivates a natural empathy for the more-than-human world[17].

3.3. Scientific Echoes: The Gaia Hypothesis :

The Gaia hypothesis, proposed by James Lovelock and Lynn Margulis, posits Earth as a self-regulating physiological system where living organisms interact to maintain conditions conducive to life[18]. Since Gaia challenges the mechanistic understanding of nature and affirms that Earth is a dynamic, living, interconnected planet, it has important ethical implications even if it is a scientific idea. This scientific finding resonates well with the holistic and spiritual concepts of Earth that are common in Indian traditions, inspiring wonder and responsibility.

3.4. Intersectional Empathy : Ecofeminism and Environmental Justice :

Ecofeminism : Highlights the interconnectedness of the domination of nature with the domination of women and other marginalized groups. It critiques patriarchal dualisms and calls for an ethic of care, interconnectedness, and valuing traditionally marginalized knowledge systems, fostering empathy across different forms of oppression[19].

Environmental Justice : Focuses on the disproportionate burden of environmental harms on marginalized communities. It demands equitable distribution of environmental benefits and burdens, and the right to a healthy environment for all, extending empathy to those most vulnerable to ecological degradation[20].

4. Finding Common Ground : The Converging Echoes of Empathy :

Deep "echoes of empathy" are seen in distinct conceptual landscapes when discussing Indian and Western environmental knowledge.

4.1. Interconnectedness and Non-Duality :

The emphasis on the profound interconnection of all life is perhaps the most potent point of confluence. Indian principles such as ahiṁsā, pratītyasamutpāda, and advaita are in line with Western concepts such as the "total-field image" of deep ecology, the systemic view of Gaia theory, and the interwoven realities 21 of modern materialism. They all allude to the fundamental interconnection of all beings and the delusion of human separateness. This fundamental knowledge inherently fosters empathy.

4.2. Intrinsic Value and Reverence :

Both traditions transcend the purely instrumental evaluation of nature in its developed forms. Indian reverence for *Prakṛti*, Mother Earth, and the idea of *ahiṁsā* reflects the intrinsic worth of nature. Astonishment at the complexity of the natural world, which is often reinforced by scientific discoveries, adds to a sense of awe, and biocentric and ecocentric ethics in the West clearly argue for the inherent value of nature.

4.3. Critique of Atomistic Individualism and Consumerism :

Both traditions offer powerful critiques of unbridled individualism and consumerism. Gandhian thought in India, with its emphasis on voluntary simplicity and needs over greed, directly challenges the materialist excesses that drive ecological destruction[22]. Similarly, atomistic individualism-based consumer culture and the exploitation of environment are criticized by deep ecology and ecofeminism in the West.

4.4. The Cultivation of Compassion and Care :

The *ahiṁsā* principle is a strong call for non-harm and kindness in Indian philosophy. Western ethics, which place a strong emphasis on empathy (as in ecofeminism's ethic of care) and growing the moral community (Leopold), exhibit a similar evolution of sympathetic concern for the non-human environment.

4.5. Beyond Anthropocentrism: Shared Humility :

Although the journey to non-anthropocentrism has been more explicit and discussed in the West, many Indian traditions are inherently non-anthropocentric. Both reach the same conclusion when they transition from a position of domination or even benign control to one of humble participation: an appreciation of human humility in the context of the Earth system's grandeur.

5. Towards a Synthesized Ethic of Global Empathy :

The overlapping "echoes of empathy" offer a compelling path toward creating a global environmental ethic that is m The intersecting "echoes of empathy" present a convincing way to develop a more thorough, just, and efficient global environmental ethic. The qualities listed below would describe this synthesized ethics.

Radical Interdependence : An ethic of interbeing fostered by a deep understanding of the intimate relationship between human well-being and the health of the Earth system as a whole.

Beyond instrumental calculation, intrinsic value is the universal acknowledgement of the intrinsic value of all living things and natural systems.

Compassionate conduct : Compassion for the non-human environment develops as a result of a commitment to non-harm and the growth of empathy for the non-human world. This, in turn, results in morally upright and responsible conduct. acts that are fair and responsible.

This synthesized ethics would be characterized by the following characteristics.

Radical Interdependence : A profound awareness of the close connection between human welfare and the health of the Earth system as a whole, which promotes an ethic of interbeing.

Intrinsic Value : A universal recognition of the inherent worth of all life forms and ecological processes, moving beyond instrumental calculation.

Compassionate Action : Dedication to non-harm and the development of empathy for the non-human world lead to the development of compassion for the non-human environment, which in turn leads to morally righteous and accountable action. responsible and just actions.

Cultivating Humility and Reciprocity : Acknowledging the boundaries of human control, adopting a humble posture, and engaging in a reciprocal dialogue with natural processes while gaining knowledge from both conventional wisdom and scientific discoveries.

Environmental Justice at the Center : redressing past wrongs, ensuring equitable and just environmental solutions, and ensuring that a healthy environment benefits all communities.

Integration of wisdom Systems : appreciating and fusing scientific understanding, spiritual insights, and traditional ecological wisdom to advance all-encompassing solutions.

6. Conclusion : A Symphony of Shared Values :

By focusing on the "echoes of empathy" that are reverberating from both Indian and Western environmental principles, philosophical and historical boundaries can be overcome. India teaches us a lot about the non-harm principle, the sanctity of nature, and the complex interconnection of all things. Important analytical tools, scientific knowledge of planetary systems, and evolving moral philosophies that reject anthropocentrism and uphold inherent worth are all provided by the West.

The common ground this comparative journey uncovers—the recognition of intrinsic value, the criticism of individualism, the growth of compassion, and the shared emphasis on interdependence—lays the groundwork for a truly global environmental ethic. This synthesizing ethic, which is based on a fundamental empathy for the "more-than-human world," offers the most promising way to guide human behavior, repair our relationship with the planet, and create a rich and sustainable future for all. It is a plea for a change from straightforward management to a profound and caring coexistence where individuals behave not as masters but as empathetic participants in the dynamic and interconnected web of life on Earth.

References :

1. Chapple, C. K. (1993). Nonviolence to Animals, Earth, and Self in Asian Traditions. State University of New York Press.

2. Klostermaier, K. K. (1994). A Survey of Hinduism (2nd ed.). State University of New York Press.
3. White, L. (1967). The historical roots of our ecologic crisis. Science, 155(3767), 1203-1207.
4. Leopold, A. (1949). A Sand County Almanac. Oxford University Press.
5. Rockström, J., et al. (2009). A safe operating space for humanity. Nature, 461(7268), 472-475.
6. Jain, S. (2010). Jainism and Environmental Ethics. Institute of Jainology.
7. Harvey, P. (2000). An Introduction to Buddhist Ethics: Foundations, Values and Issues. Cambridge University Press.
8. Nhat Hanh, Thich. (1991). Peace Is Every Step: The Path of Mindfulness in Everyday Life. Bantam Books.
9. Eck, D. L. (2012). India: A Sacred Geography. Harmony Books.
10. O'Flaherty, W. D. (1981). The Rig Veda: An Anthology. Penguin Books. (Reference specific hymn for Bhumi Suktam).
11. Dwivedi, O. P. (1992). The Hindu Traditions and the Environmental Crisis. International Institute for Theological Studies.
12. Gadgil, M., & Vartak, V. D. (1976). Sacred Groves of India: A Stronghold of Plant Diversity. Environmental Conservation, 3(4), 312-315.
13. Shiva, V. (1989). Staying Alive: Women, Ecology and Development. Zed Books.
14. Merchant, C. (1980). The Death of Nature: Women, Ecology, and the Scientific Revolution. Harper & Row.
15. Nash, R. F. (2014). Wilderness and the American Mind (5th ed.). Yale University Press.
16. Callicott, J. B. (1989). In Defense of the Land Ethic: Essays in Environmental Philosophy. State University of New York Press.
17. Naess, A. (1995). Ecology, Community and Lifestyle: Outline of an Ecosophy. Cambridge University Press.
18. Lovelock, J. E. (1979). Gaia: A New Look at Life on Earth. Oxford University Press.
19. Warren, K. J. (2000). Ecofeminist Philosophy: A Western Perspective on What It Is and Why It Matters. Rowman & Littlefield Publishers.
20. Bullard, R. D. (1990). Dumping in Dixie: Race, Class, and Environmental Quality. Westview Press.
21. Barad, K. (2007). Meeting the Universe Halfway: Quantum Physics and the Entanglement of Matter and Meaning. Duke University Press.
22. Weber, T. (2007). Gandhi, Globalisation and the Future. Pluto Press.

Email: gdasindianphilosophy@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 180-185

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान महिलाओं का संघर्ष एवं उनकी जेल यातनाएँ (1919–1947)

मोती लाल, शोधार्थी,
मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।
डॉ. प्रार्थना सिंह, शोध पर्यवेक्षक
फख़रुद्दीन अली अहमद पी0जी0 कॉलेज, सीतापुर।

सारांश :-

देश के स्वाधीनता संघर्ष में सभी धर्म–सम्प्रदाय एवं वर्ग के स्त्रियों–पुरुषों ने भाग लिया और एक साथ मिलकर अंग्रेजों से लोहा लिया एवं देश को आजादी दिलाई। लेकिन ये आजादी एकाएक नहीं मिली, इसके लिए 19वीं एवं 20वीं सदी की अनगिनत महिलाओं ने अनेक कष्टों को सहन किया, लाठी–डण्डों की मार एवं गोलियों की बौछारों को सहन किया। इनमें से बहुतों ने उसी समय अपना दम तोड़ दिया तथा अनेक महिलाओं को जेल की काल–कोठरी में कैद करके उनको प्रताड़ित किया गया, परन्तु उन्होंने उसे विकट परिस्थिति में भी अंग्रेजों के प्रतयेक जुल्म को हंस कर सहन किया। वहीं दूसरी ओर कुछ महिलाओं ने अंग्रेजों को अपनी गोलियों का निशाना बनाया तथा उनकी बन्दूकों का शिकार भी बनीं। कुछ महिलाएँ गुप्त रूप से सक्रिय थीं तो कुछ प्रत्यक्ष रूप में आन्दोलनकारियों की सहायता भी करती थीं। अनेक महिलाएँ धरना–प्रदर्शन के दौरान अंग्रेजों की बर्बरता का शिकार भी बनीं। महिलाएँ अपने उस तत्कालिन समय की विपरीत एवं विकट परिस्थिति में कार्यों को कहाँ तक अंजाम दे पायीं उसी का अवलोकन प्रस्तुत शीर्षक में किया जा रहा है।

प्रकृति ने स्त्री एवं पुरुष दोनों को समान बनाया, समान अधिकार दिए लेकिन समाज में स्त्रियों को हमेशा दोयम दर्जा ही क्यों दिया गया, यह मूल प्रश्न किसी भी संवेदना को मथने के लिए पर्याप्त हो सकता है। लिंग के आधार पर स्त्रियों और पुरुषों के बीच, यानी स्त्रियों की पराधीनता तथा जन्म (जाति, वर्ण–व्यवस्था) के आधार पर होने वाले भेदभाव हमारे समाज की जुड़वा बिमारियाँ हैं। इतिहास में कुछ महिलाओं के नाम जरूर मिलते हैं, जिनकी स्थिति समाज में ऊँची थी, लेकिन के0 एम0 पणिक्कर के अनुसार– "कुछ महिलाओं की स्थिति का पता नहीं लगा सकते हैं। देश के हजारों वर्षों के गौरवशाली इतिहास में महिलाओं के लिए अनेक क्षेत्रों में दखल, योगदान और रुचि लेना निषिद्ध था तो यह केवल कुछ लोगों के रुढ़िवादी मानसिक सोच का परिणाम था।"

स्त्रियों की गुलामी का सबसे बुरा हिस्सा उनकी अपनी पहचान का गुम हो जाना है, भारतीय समाज में

स्त्री की कोई स्वतंत्र पहचान नहीं थी। वह हमेशा बेटी, पत्नी या फिर माँ के रूप में अपने व्यक्तित्व को पुरुष में विलीन करती आयी है। इससे समझा जा सकता है कि 'मनुस्मृति' ने स्त्री की भूमिका को किस तरह से सीमित और मर्यादित करके रखा था। जिसके कारण देश को अनेक आक्रमणों एवं दासता का दंश सहन करना पड़ा था।

यद्यपि स्त्री–पुरुष दोनों ही इस प्रकृति के घटक हैं और एक–दूसरे के पूरक भी लेकिन महिलाओं को हमेशा निचले पायदान पर ही रखा गया। परन्तु यह भी दुःखद है कि ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय उच्च वर्ग का पुरुष प्रारम्भ में यह समझने को तैयार नहीं था कि महिलाओं को साथ लेकर चलना, उनमें राष्ट्रप्रेम जागृत करना और जीवन की मुख्यधारा में शामिल करना समय की माँग है।

"पेरियार ने स्त्रियों का आवाह्न किया था कि आजादी प्राप्त करने के लिए वे खुद को संगठित कर लें। उन्हें अपने प्रयासों से आजादी हासिल करनी चाहिए। उन्हें उन मर्दों पर जो उनकी पराधीनता का लाभ उठाकर खुश हैं, आश्रित नहीं रहना चाहिए।" अगर हम आँकड़ों की मानें तो पिछले दशकों में स्त्रियों की स्थिति में सुधार अवश्य हुआ है। आज स्थिति फिर भी बेहतर है। किन्तु हम जिन महिलाओं का अवलोकन करने जा रहे हैं, वे आज की स्त्रियाँ नहीं हैं। वे औपनिवेशिक काल की स्त्रियाँ हैं। मोटे तौर पर बीसवीं सदी यानी देश की आजादी के संघर्ष के दौरान महिलाओं ने मुख्यधारा में आने के लिए क्या प्रयास किया, उनको किन–किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ा और उनमें वे किस सीमा तक सफल हो पायीं, इतना ही जानने का प्रयास है।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता समर में अनेक महान पुरुष वीरों के बीच रानी झाँसी, बेगम हज़रत महिल, अज़ीजन बाई, ऊदा देवी की उपस्थिति अपनी अलजग महत्ता रखती है। इसी प्रकार 20वीं शताब्दी में गाँधी जी के नेतृत्व में 1919, 1921 और 1930–32 के 'असहयोग' एवं 'सविनय अवज्ञा आन्दोलनों' तथा 1942 के देशव्यापी स्वतंत्रता संघर्ष में नारियों का सहयोग और बलिदान यह बताता है कि शारीरिक कष्टों को झेल सकने में नारियाँ पुरुषों से कम नहीं ठहरती थीं।

"स्त्री में परिवर्तन की क्षमता है और उसी क्षमता को शमीम मलिहाबादी पुकारती है। यह पुकार केवल व्यक्तिगत आजादी के लिए नहीं है बल्कि वे पूरी व्यवस्था में बदलाव लाना चाहती थी। उन्हें पूरा भरोसा था कि औरत के कमजोर कहे जाने वाले कन्धे इस बोझ को उठा सकते थे।" बंगाल विभाजन के परिणामस्वरूप स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस आन्दोलन में एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी कि महिलाओं ने इसमें सक्रिय रूप से भाग लिया। पहली बार औरतें घर से बाहर निकलीं, प्रदर्शन में भाग लेने लगीं और धरने पर बैठने लगीं। विदेशी माल के बहिष्कार से आन्दोलन को बल मिला। औरतों ने विदेशी चुड़ियाँ पहनना और विदेशी बर्तन का इस्तेमाल करना बन्द कर दिया।

गाँधी जी के आह्वान पर महिलाओं ने बढ़–चढ़ कर स्वतंत्रता संघर्ष में हिस्सा लिया। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान स्वतंत्रता प्रेमियों का दमन करने के लिए सरकार ने जो कड़े नियम बनाए थे, उसको युद्ध के बाद भी जारी रखना चाहती थी। जिसके फलस्वरूप 'रौलेट एक्ट' पास हुआ, जिसका विरोध करने के लिए गाँधी जी ने लोगों का आह्वान किया, तो प्रदर्शन एवं सभाओं में महिलाओं ने बड़े जोश व उत्साह के साथ भाग लिया। जिसके परिणामस्वरूप जलियावाला बाग नरसंहार हुआ जिसमें सैकड़ों स्त्री–पुरुष घटनास्थल पर ही मारे गए और हजारों घायल हो गए।

1921 के अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन में भी स्त्रियों ने आगे बढ़कर भाग लिया। आन्दोलन करने का फैसला गाँधीजी के अनुरोध पर कांग्रेस द्वारा सितम्बर 1920 में पास किए गए एक प्रस्ताव में घोषित किया। नवम्बर 1920 में जो प्रांतीय चुनाव हुए, उनमें दो–तिहाई मतदाताओं ने भाग नहीं लिया। हजारों विद्यार्थियों ने स्कूल और कॉलेज छोड़ दिए। वकीलों ने अदालत जाना छोड़ दिया। जगह–जगह विदेशी कपड़ों की होली जलाई गई। लगभग तीस हजार आन्दोलनकारियों को जेल में बन्द कर दिया गया जिसमें कई हजार महिलाएँ भी शामिल थीं। इस आन्दोलन में स्त्रियाँ खुशी–खुशी जेल गईं।

गाँधीजी का व्यक्तित्व करिश्माई था। उनका सादापन, धोती, आम भारतीय की भाँति ग्रामीण पहनावा, रहन–सहन ने उन्हें जनमानस से जोड़ दिया। यह अहिंसा की ही नीति थी ग्रामीण आदिवासी, महिला सभी को स्वाधीनता आन्दोलन का कार्यकर्त्ता बना दिया और उनके जीवन का मूल मंत्र बन गया।

इसके बाद 1930 में सत्याग्रह का अपूर्व दृश्य देखने में आया। गाँधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रतीक के रूप में नमक कानून भंग करने के लिए 12 मार्च को दाण्डी यात्रा शुरू की। यात्रा में नारियों को शामिल करने के लिए मन में संकोच था और उन्होंने अपने साथ जो सत्याग्रही लिए थे उनमें स्त्रियाँ बहुत थोड़ी थीं। परन्तु अगले ही दिन गाँवों की हजारों अनपढ़ और अशिक्षित नारियों ने घर की चाहरदीवारी से बाहर निकलकर स्वाभिमानी सैनिकों की भाँति कदम बढ़ाते हुए समुद्र तट पर मानो आक्रमण ही कर दिया।

नमक कानून को भंग करने में शहरों की नारियों ने भी अपूर्व योगदान दिया। धनी, निर्धन और युवा, वृद्ध, सैकड़ों हजारों स्त्रियाँ परम्परागत प्रथा की शृंखलाओं को तोड़कर घरों से बाहर आ गईं। निषिद्ध नमक की पुड़िया लेकर वे गली–कूचों के मोड़ पर खड़ी हो जातीं और आवाज लगातीं, "हमने नमक कानून तोड़ दिया है। हम स्वतंत्र हो गए हैं। यह लो स्वतंत्रता नमक। कौन लेगा स्वतंत्रता का नमक?" हर राहगीर उनके हाथ पर पैसा धरता और नमक की पुड़िया लेकर गर्व से फूला न समाता। धरसना नमक सत्याग्रह का नेतृत्व सरोजनी नायडू ने किया। जब वे स्वयं सेविकाओं के दल को लेकर नमक क्षेत्र की ओर बढ़ रही थीं, तो पुलिस ने उन्हें रोक दिया और स्वयं सेविकाओं पर लाठियों से प्रहार किया, जिसका प्रत्यक्षदर्शी पत्रकार वेब मिलर था।

1930 के इस आन्दोलन में लगभग 17,000 स्त्रियाँ गिरफ्तार हुईं और कुल मिलाकर एक लाख व्यक्तियों से जेल भर गई तो महिलाओं को जंगलों में छोड़ दिया जाने लगा। उन्हें हर तरह से धमकाया गया, जेलों में तकलीफ दी गई पर उन्होंने सभी कष्टों का मुस्कुरा कर सामना किया। निरक्षर, पिछड़ी हुई, अप्रशिक्षित और असंगठित भारतीय नारी का यह साहस ब्रिटिश सरकार को चौंका गया।

गाँधीजी ने 1930 ई0 के दशक के मध्य महिलाओं और आजादी के लिए बहादुरी से लड़ने वाली मृदुला साराभाई से कहा था– "मैंने भारतीय महिलाओं को रसोई घर से बाहर लाने का कार्य किया है। अब आपको इन्हें वापस लौटने से रोकने का काम करना है।" 1930 के आन्दोलन में भाग लेने वाली प्रमुख महिलाओं के नाम हैं– रुक्मिणी लक्ष्मीपति, पेरिन कैप्टन, विजयलक्ष्मी पण्डित, इन्दिरा गाँधी, कृष्णा नेहरु, डॉ0 मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी, कमला देवी, लीलावती, दुर्गाबाई, सरोजनी नायडू, मणिबेन पटेल, हंसा मेहता आदि।

1930–32 के आजादी के दौरान एक ओर अहिंसक एवं बहिष्कार आन्दोलन में महिलाएँ भाग ले रही थीं, तो उसी समय दूसरी ओर कुछ ऐसी क्रान्तिकारी महिलाएँ थीं, जो हिंसात्मक साधनों के द्वारा अंग्रेजों को अपनी गोलियों का शिकार बना रही थीं। 17 वर्षीय कुमारी प्रीतिलता यूरोपियन क्लब पर हमले में शहीद हो गई। अन्य

उल्लेखनीय नाम हैं– बेथुन कॉलेज की छात्रा, क्रान्तिकारी सूर्यसेन की साथी कल्पना दत्त, कुमिल्ला में जिला मजिस्ट्रेट पर गोली चलाने वाली, सुनीति चौधरी, शान्ति घोष, कलकत्ता में एक कॉलेज के दीक्षांत समारोह में गवर्नर स्टैनले जैक्सन पर गोली दागने वाली छात्रा बीना दास, लेवांग के घुड़दौड़ मैदान में गवर्नर जॉन एण्डरसन पर गोलियों की बौछार करने वाली उज्जवला मजूमदार, नागारानी गाइंडिल्य तथा क्रान्तिकारियों की हर सम्भव मदद करने वाली दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी। इनमें छोटी लड़कियों को छोड़कर शेष सभी को आजीवन कड़ी कैद या आजीवन कालापानी कैद की सजा मिली थी; इनमें से कुछ 1937 में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बनने पर छूट गईं तो कुछ को आजादी के बाद रिहा किया गया। फिर आया 1942 का 'भारत छोड़ो आन्दोलन' यह स्वतंत्रता संग्राम का अन्तिम आन्दोलन अधिक व्यापक और अधिक उग्र था। इस दौरान कस्तूरबा गाँधी गिरफ्तार होकर जेल गईं और वापस जीवित नहीं लौटीं। प्रमुख नेत्रियाँ पहले ही गिरफ्तार हो चुकी थीं। इस समय मैदान में नई साहसी स्त्रियाँ मैदान में आ गईं, जिन्होंने भूमिगत रहकर आन्दोलन का नेतृत्व सम्भाला। जिनमें अरुणा आसफ अली, ऊषा मेहता और सुचेता कृपलानी का नाम मुख्य है।

भारत छोड़ो आन्दोलन के समय भी मेदिनी की शहीद मातंगनी हाजरा, वारगांवाड़ी की शहीद 16 वर्षीय बाला कनकलता बरूआ और छपरा जिले में अपना दबदबा दखने वाली रामस्वरूप देवी जैसी अनेक महिलाओं ने स्वतंत्रता के इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया। इस सब महिलाओं की प्रेरणा मैडम भिखाजी रुस्तम के0आर0 कामा थीं, जिन्होंने विदेशों में भी क्रान्ति की अलख जगाई एवं राष्ट्रीय ध्वज फहराया।

जेल में महिलाओं का जीवन :-

स्त्रियों ने जेल की यातनाएँ बड़े धैर्य से झेलीं। इनका अनुमान लगाने के लिए यह समझना जरूरी है कि साधारण मानवोचित सुविधाओं से रहित भारत के जेल उन दिनों भयंकर कष्टागार होते थे, जिनके विषय में एक कवि ने कहा था– "आजाद रह के जिसने अपने दो दिन गुजारे उसको भला क्या खबर कि यह कैद क्या बला है।" श्रीमती कमला चट्टोपाध्याय लिखती हैं कि– "जेलों में केवल तीन मास से छोटे बच्चें को माताओं के साथ रहने दिया जाता था। टैक्स न अदा करने वाले क्षेत्रों की महिलाओं को इसकी भी इजाजत न थी, इसलिए बच्चों को घरों में अनाथ छोड़ना पड़ा। उन दिनों जेलों में तब कुछ गिने–चुने लोगों को छोड़कर शेष को आवश्यक सुविधाएँ भी नहीं प्रदान की जाती थीं। जेल की ए, बी, सी श्रेणियों में राजनीतिक बन्दियों के विभाजन का विरोध किया गया, तो अधिकांश को 'सी' श्रेणी में रख दिया गया। ये सब तकलीफें महिलाओं ने हंसते–हंसते झेलीं। यहाँ तक कि घर पर पति, बच्चे की बीमारी आदि अवस्थाओं में भी वे माफी मांगकर जेल से छुटने के लिए राजी नहीं हुईं। गाँवों के जेलखाने तो और अधिक कष्टप्रद होते थे। वहाँ गिरफ्तार की गई स्त्रियों को तंग, अंधेरी, गंदी और सीलन से भरी कोठरियों में डाल दिया जाता। हवा और रोशनी की ठीक व्यवस्था न होने के कारण वहाँ का वातावरण बदबू से भरा होता था। जेल की इन तंग कोठरियों में कुछ महिलाओं को बच्चे भी हुए और उन्होंने स्वयं को असुविधाजनक व हास्यास्पद स्थिति में पाया, लेकिन इस पर भी उन्होंने बच्चों के नाम 'विजय' जेल कह शहजादी, स्वतंत्रता संग्राम का हीरो आदि रखकर गर्व का अनुभव किया। उन्होंने परस्पर एक दूसरे की सहायता करके समय को समय को अच्छे ढंग से काट लिया। एक महिला जिसका बच्चा जेल की कोठरी में थोड़ी देर पहले मर गया था, तत्काल एक ऐसे बच्चे को सम्भालने में जग गई जिसकी माँ टाइफाइड से बीमार पड़ी थी। जिनके पास अपने बच्चे नहीं थे, उन्होंने दूसरी स्त्रियों के घरों में छुटे बच्चों को अपना कहकर साथ

रख लिया। इस प्रकार भारतीय स्त्रियों ने जेलों में अपने आदर्शों के अनुरूप मानवीयता का एक ऐसा उदाहरण पेश किया कि जेल अधिकारी चकित रह गए। छूआ–छुत, ऊँच–नीच की भावना जो उस समय घरों में सामान्य थी, मिटाने में जेल–जीवन से बड़ी मदद मिली।

अगर हम विचार करें तो देश न जाने कितनी ही विलक्षण महिलाएँ रही हैं, जिन्होंने स्वयं को यौनिक चेतना से बाहर निकलने की सुविचरित चुनौती को दृढ़ता और शालीनता से स्वीकार किया। अध्ययन एवं विविध घटनाक्रम से यह समझा जा सकता है कि औपनिवेशिक शासक भी स्त्रियों के बारे में वही रुढ़िवादी और दमनकारी सोच रखते थे, जो परम्परागत रूप में देश के अन्य कालखण्डों में विद्यमान था। महिलाओं की स्थिति उस समय में इसलिए भी खराब होती गयी क्योंकि औपनिवेशिक शासक वर्ग के लोग अपने झूठे और तथाकथित छद्म गौरव के समक्ष पूरी भारतीय सभ्यता को हेय की दृष्टि से देखा करते थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. औपनिवेशिक भारत की जुनूनी महिलाएँ, सिंह, वर्मा राजगोपाल, सेतु प्रकाशन, नोएडा, पृ0 10
2. स्त्रियों को गुलाम क्यों बनाया गया, रामास्वामी, पेरियान ई0वी0, अनुवाद ओमप्रकाश कश्यप, सेतु प्रकाशन, नोएडा, पृ0 13
3. औपनिवेशिक भारत की जुनूनी महिलाएँ, सिंह, वर्मा राजगोपाल, सेतु प्रकाशन, नोएडा, पृ0 10
4. स्त्रियों को गुलाम क्यों बनाया गया, रामास्वामी, पेरियान ई0वी0, अनुवाद ओमप्रकाश कश्यप, सेतु प्रकाशन, नोएडा, पृ0 14–15
5. वही, पृ0 15
6. औपनिवेशिक भारत की जुनूनी महिलाएँ, सिंह, वर्मा राजगोपाल, सेतु प्रकाशन, नोएडा, पृ0 11
7. नारी विमर्श की भारतीय परम्परा, पालीवाल, कृष्णादत्त, सस्ता साहित्य प्रकाशन मण्डल, नई दिल्ली, पृ0 180
8. इतिहास में स्त्री, राजे, सुमन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 75
9. भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, चन्द्र, विपिन, मृदुला मुखजी, आदित्य मुखजी, एफ0एन0 पानिक्कार, सुचेता महाजन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, पृ0 105
10. नारी विमर्श की भारतीय परम्परा, पालीवाल, कृष्णादत्त, सस्ता साहित्य प्रकाशन मण्डल, नई दिल्ली, पृ0 182
11. वही, पृ0 183
12. इतिहास वाया बायस्कोप आजादी के 75 साल, डॉ0 सिंह, प्रार्थना, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, पृ0 47
13. नारी विमर्श की भारतीय परम्परा, पालीवाल, कृष्णादत्त, सस्ता साहित्य प्रकाशन मण्डल, नई दिल्ली, पृ0 183
14. वही, पृ0 184
15. औरत कल, आज और कल, वोहरा, आशारानी, कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली, पृ0 22
16. वही, पृ0 23, 24, 25, 26

17. नारी विमर्श की भारतीय परम्परा, पालीवाल, कृष्णादत्त, सस्ता साहित्य प्रकाशन मण्डल, नई दिल्ली, पृ0 187
18. भारतीय समाज में महिलाएँ, देसाई, नीरा, ऊषा ठक्कर, अनुवाद डॉ0 सुश्री धुसिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत।
19. अवध–लखनऊ में 1857 की क्रान्ति, पृष्ठभूमि, घोष, प्रदीप कुमार, हिन्दी वाङ्मय निधि, लखनऊ।
20. स्त्री विमर्श का नया चेहरा, मिश्र, अल्पना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
21. समकालीन स्त्री विमर्श, शर्मा, क्षमा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।
22. आधुनिक भारत के निर्माता, पेरियार, डॉ0 जोठे, संजय, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली।
23. भारतीय नारी संघर्ष और मुक्ति, करात, बृंदा, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली।
24. इतिहास वाया बायस्कोप आजादी के 75 साल, डॉ0 सिंह, प्रार्थना, प्रकाश संस्थान नई दिल्ली।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 186-192

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कृष्णा सोबती के उपन्यासों में प्रेम का स्वरूप

डॉ. मीरा चौरसिया

वरिष्ठ सहायक आचार्या, चमन लाल महाविद्यालय, लंढौरा (उत्तराखंड)

भारतीय समाज एवं साहित्य में नारी की परिस्थिति प्रारंभ से ही परिवर्तनशील एवं जटिल रही है। वैदिक युग में नारी की स्थिति सम्मानजनक थी, वह उच्च शिक्षा की अधिकारी थी और अपनी मर्जी से विवाह करने को स्वतंत्र थी। इस युग में घोषा, लोपामुद्रा, गार्गी, मैत्रेयी और आत्रेयी जैसी प्रसिद्ध विदुषियाँ हुईं, जिन्होंने कई ऋचाओं की रचना की। इस युग में नारी को पर्याप्त स्वतंत्रता थी। बी. कुप्पुस्वामी के अनुसार पति–पत्नी दोनों संयुक्त रूप से संपत्ति के अधिकारी होते थे। समाज में विधवा विवाह का भी प्रचलन था। कुल मिला कर स्त्रियों की स्थिति संतोषजनक थी। वैदिक युग के पश्चात अनेक सामाजिक परिवर्तनों के कारण नारी की स्थिति में बहुत गिरावट आई। मनुस्मृति के अनुसार, सदाचार से हीन, पर–स्त्री अनुरक्त और विद्या आदि गुणों से हीन पति भी पतिव्रता स्त्रियों को देवता के समान पूज्य होता है –

'विशीलाः कामवृत्रो ब्रा गुणर्वा परिवर्जितः। उपचर्य : स्त्रियासाधव्या सततं देववत्पतिः।।'[1]

बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के परिणामस्वरूप स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार आया। बौद्ध संघ में स्त्रियों के प्रवेश को लेकर बुद्ध तथा उनके शिष्य आनंद के बीच बहस छिड़ी, क्योंकि बुद्ध स्त्रियों को प्रवेश देने के पक्ष में नहीं थे। लेकिन आनंद के हस्तक्षेप के कारण स्त्रियों को संघ में प्रवेश संभव हुआ। उमा चक्रवर्ती ने आनंद को पहला पुरुष स्त्रीवादी कहा है। उमा चक्रवर्ती के शब्दों में, ष्आनंद की विशेषता यह है कि वह उन स्त्रियों के वकील की सी भूमिका उठाता है, जो संघ में आने का आंदोलन चला रही हैं। वह उन सारे मुददों को उठाता है। जो स्त्रियों के विरूद्ध हैं और स्त्रियों के पक्ष में दलीलें पेश करता है। वह बुद्ध से बाकायदा बहस करता है कि स्त्रियाँ संघ से क्यों नहीं जुड़ सकती हैं। ... अंततः बुद्ध उसके तर्कों से सहमत होकर मान जाते हैं कि स्त्रियों को संघ में आने दिया जाए। इसके बावजूद बौद्ध भिक्षु एवं भिक्षुणियों की प्रस्थिति में अंतर था। उमा चक्रवर्ती के अनुसार 'कई ऐसे काम थे, जो बौद्ध भिक्षु कर सकते थे और भिक्षुणियाँ नहीं कर सकती थीं। .... जैसे एक नियम था कि भिक्षुणी चाहे जितनी भी बुजुर्ग हो, उसे भिक्षुक को प्रणाम करना ही पड़ेगा, चाहे वह उम्र में उससे जितना भी छोटा हो।'[2]

मध्यकाल के भक्ति आंदोलन ने जो कि एक जनांदोलन था, धर्म के माध्यम से महिलाओं को आत्माभिव्यक्ति का अवसर प्रदान किया। अपनी रचनाओं में इन्होंने यातना की अभिव्यक्ति के साथ–साथ उस यातना से उबरने

का प्रयास भी अभिव्यक्त किया है। मीरा के यहाँ सामाजिक रूढ़ियों के विरूद्ध विद्रोह का स्वर अत्यंत प्रखर है। **'लोकलाज कुल कानि जगत की दइ बहाय जस पानी अपने घर का परदा कर ले, मैं अबला बौरानी।'**[3]

डॉ. मैनेजर पाण्डेय के अनुसार, 'यहाँ एक सजग स्त्री स्वर सुनाई देता है जिसमें आक्रोश की अनुगूँज है किसी पीड़ित की चीख या पुकार नहीं।'[4]

नारी को अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक करने तथा उसे घर की चहारदीवारी से मुक्त करा व्यापक जन–जीवन से जोड़ने में महात्मा गांधी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वाधीनता आंदोलन ने नारी स्वातंर्त्य आंदोलन को भी दिशा प्रदान की। नीरा देसाई के अनुसार, 'इसने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की कि अनेक सामाजिक बंधन व वर्जनाएँ स्वयं ही सरलतापूर्वक समाप्त हो गईं।'[5] भारत की नारी को विस्तृत दृष्टि एवं सोच प्रदान करने में स्वाधीनता आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही। महादेवी वर्मा के अनुसार, 'देश को स्वतंत्र करवाने के लिए जब स्त्री घर की चहारदीवारी से बाहर आई और कर्मक्षेत्र में उतर कर उसने देश के सामाजिक, राजनीतिक परिवर्तनों में अपना योगदान दिया तो उसने स्वयं में एक नवीन आत्मविश्वास, एक नवीन जागृति पाई। उसे अपना जीवन सार्थक अनुभव होने लगा व उसमें छाई हीनता की भावना दूर होने लगी। पुरुष ने अपनी आवश्यकतावश ही उसे साथ आने की आज्ञा दी, परन्तु स्त्री ने उससे पग मिलाकर चलकर प्रमाणित कर दिया कि पुरुष ने उसकी गति पर बन्धन लगाकर अन्याय ही नहीं अत्याचार भी किया है।'[6]

प्रेम का स्वरूप : विवाह और विकल्प की तलाश :–

'प्रेम व्यक्ति के भीतर एक सक्रिय शक्ति का नाम है। यह वह शक्ति है जो व्यक्ति और दुनिया के बीच की दीवारों को तोड़ डालती है, उसे दूसरों से जोड़ देती है। प्रेम उसके अकेलेपन और विलगाव की भावना को दूर कर देता है, पर इसके बावजूद उसकी वैयक्तिकता बची रहती है। प्रेम एक ऐसी क्रिया है जिसमें दो व्यक्ति एक होकर भी दो बने रहते हैं।"[7]

आज बदलते जीवन मूल्यों और सामाजिक परिवेश ने प्रेम संबंधों के स्वरूप को भी प्रभावित किया है। आज का प्रेम वायवी और आशरीरी नहीं है, बल्कि साहचर्यजनित है, एवं बदलते समय के साथ बदल भी जाता है। प्रेम अब एक शाश्वत भावना नहीं रही, बल्कि एक प्रेम के समाप्त होते ही उसका स्थानापन्न आ जाता है। कई बार प्रेम जीवन के खालीपन को भरने या ऊब मिटाने का एक साधन भर बन जाता है, मगर इसी क्रम में शनैः–शनैः स्वयं ऊब का कारण बन जाता है।

कृष्णा सोबती की रचनाओं में प्रेम संबंधी दृष्टिकोण के बदलाव को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया गया है। प्रेम संबंधों में आया बदलाव, बदलती मानसिकता का सूचक है। 'डार से बिछुड़ी' में पाशो की माँ, जो कि विधवा है, शेखजी के प्रेम में पड़कर उनसे विवाह कर लेती है। न तो उसे समाज का डर है, ना ही बिरादरी का भय। 'मित्रो मरजानी' में प्रेम की परिभाषा बदलती नजर आती है। मित्रो अशरीरी प्रेम में विश्वास नहीं रखती। प्रेम उसके लिए उतना ही शारीरिक संतुष्टि है, जितना मानसिक संतुष्टि और इस तादात्म्य को न पाने पर वह अपनी असंतुष्टि को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वर देती है, 'जिठानी, तुम्हारे देवर–सा बगलोल कोई और दूजा न होगा। न दुःख–सुख, न प्रीति प्यार, नहै। मित्रो अशरीरी प्रेम में विश्वास नहीं रखती। प्रेम उसके लिए

उतना ही शारीरिक संतुष्टि है, जितना मानसिक संतुष्टि और इस तादात्म्य को न पाने पर वह अपनी असंतुष्टि को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वर देती है, 'जिठानी, तुम्हारे देवर–सा बगलोल कोई और दूजा न होगा। न दुःख–सुख, न प्रीति प्यार, न जलन प्यास.... बस आये दिन धौल धप्पा... लानत मलामत!'[8] मित्रो को पति सरदारीलाल से तो प्रेम है, लेकिन उसकी शरीरिक असमर्थता और मित्रो के मन से एकात्मकता न बैठा पाने की असफलता ही सारे तनाव की जड़ है।

मित्रो के ठीक विपरीत है 'तिन पहाड़' की जया का चरित्र। जया के लिए श्री का प्रेम ही सब कुछ है, जिसे खो कर उसका अस्तित्व ही लुप्तप्रायः हो जाता है। प्रेम में असफल जया, तपन के प्रेम को स्वीकार नहीं कर पाती और आत्महत्या का रास्ता अख्तियार कर लेती है। जया यहाँ परंपरागत भारतीय नारी की उस तस्वीर को प्रस्तुत करती है, जिसके लिए जीवन में प्रेम केवल एक बार आता है। यहाँ उसकी साम्यता 'परिंदे' कहानी की लतिका के साथ देखी जा सकती है, जो बीते हुए प्यार को भूल नहीं पाती एवं नये प्रेम के लिए स्वयं को प्रस्तुत नहीं कर पाती। जया का चरित्र यहाँ शरतचंद्र की नायिकाओं से काफी गहरे तक प्रभावित लगता है, जिनके लिए स्वयं को मिटा देना कोई बड़ी बात नहीं। एकनिष्ठ, शाश्वत प्रेम की यह परंपरा सोबती की परवर्ती रचनाओं में काफी हद तक परिवर्तित हो जाती है।

'कुछ नहीं, कोई नहीं कहानी की शिवा, अपने पति रूप से गहरा प्रेम करती है, किंतु क्षणिक आवेश में आ कर आनंद, जोकि उसके पति का मित्र है, से संबंध स्थापित कर लेती है। आनंद के साथ रहते हुए भी वह पूर्व पति को भूल नहीं पाती, और आनंद की मृत्यु के साथ ही शुरू होता है उसके पश्चाताप का सिलसिला, जो कि रूप के सम्मुख क्षमाप्रार्थी के रूप में उपस्थित हो कर व्यक्त होता है। शिवा के लिए कहीं कोई रिश्ता नहीं बचता, 'रूप, मैं आज तुम्हारी कुछ नहीं हूँ। आनंद के बच्चों को आनंद का सबकुछ सौंपकर तीन–चार दिन में यहाँ से चली जाऊँगी। फिर न कभी घर देखूँगी... न घर का सामान, न सामान से लिपटी अतीत की स्मृतियाँ. ... । कहाँ रहूंगी, कहाँ जाऊँगी। कुछ पता नहीं। रूप, अब किसे जानना है मैं कहाँ हूँ मैं क्या हूं? मैं किसी की कुछ नहीं, कोई नहीं...![9] मार्च, 1955 में लिखी गई इस कहानी में सोबती प्रेम संबंधों में उन्मुक्त दृष्टि के परिणाम की भयावहता को चित्रित करती हैं, जिसकी कड़ी आगे चल कर कहीं न कहीं शमित्रो मरजानीश की मित्रों से जुड़ती है। शिवा जिस भावावेश में आकर परपुरुष से संबंध स्थापित कर अपना जीवन तहस–नहस कर लेती है, मित्रो वैसा नहीं करती। शरीर की उद्दाम लालसा मित्रो के यहाँ है, पर उसे नियंत्रित करने वाला विवेक भी मौजूद है। अपनी ठंढ़ी ठठरी सी माँ की दुर्दशा देख मित्रो वापस पति के पास लौट जाती है। 'कुछ नहीं, कोई नहीं 1955 में लिखी गई है, जबकि 'मित्रो मरजानी' 1966 में सोबती की नारी, इन ग्यारह वर्षों में इतनी परिपक्व हो जाती है कि क्षणिक आवेश में आ कर अपनी लालसा पूर्ति का ऐसा कोई निर्णय नहीं ले, जो कि वर्तमान के साथ–साथ उसके भविष्य को भी खराब कर दे।

प्रेम में एकनिष्ठता का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत होता है 'दो राहें : दो बातें' कहानी में, जिसमें दुर्घटनाग्रस्त रोहित के लिए मीनल की संवेदना सराहनीय बन कर उभरती है। प्रेम की शाश्वत भावना 'बादलों के घेरे' कहानी में भी मौजूद है, जहाँ मृत्यु शय्या पर पड़ा रवि मृत्यु की पदचाप के साथ ही अपने प्यार की स्मृति को भी महसूस

करता रहता है। मन्नो और रवि के प्रेम को कृष्णा सोबती ने वायवी व अशरीरी स्वरूप प्रदान किया है। 'बादलों के घेरे की मन्नो और 'तिन पहाड़' की जया में एक साम्यता दिख जाती है, वह है अपने प्रेम को न पाने की तड़प, कसक एवं प्रतिरोध के रूप में स्वयं को मिटा लेने का आग्रह। जया और मन्नो जैसी औरतें, खुद के लिए कोई मोह नहीं रखतीं। ऐसा लगत है मानो उनका होना या न होना पूरी तरह से किसी पुरुष के व्यक्तित्व से संचालित और नियंत्रित है। रोजेंद्र यादव के शब्दों में, 'कृष्णा जी के कथा–विकास में जमीन से टूटी हुई यह औरत, 'बादलों के घेरे' और 'तिन पहाड़' में सिर्फ एक भावना है, एक उच्छवास या अहसास। यहाँ वह उतनी साकार और ठोस नहीं है, बादलों के धुंध जैसी छाया और परछाई है जो किन्हीं संबंधों में जुड़कर अपनी सार्थकता तलाश करती है।.... यह तो शुद्ध पुरुष के प्यार की वह तलाश है जो औरत को अपने होने का 'बोध' कराती है। यह भटकन, तलाश, या भावना, इतनी अधिक अशरीरी, वायवी और निराकार है कि लगता है शरीर के पाने की याचना करती आत्माएँ ही सिसक रही हैं।... यह भी आकस्मिक नहीं है कि दोनों ही कहानियों की नारियाँ मन्नो और जया मृत्यु के प्रति समर्पित हैं, मरने के लिए अभिशप्त मगर वे अकेली नहीं मरती, मानो इस छूत और दंश को साथ वाले पुरुषों को सौंप जाती हैं– तिल–तिल घुलने और घुटने के लिए...'।[10]

यहाँ एक बात गौर करने योग्य है कि कृष्णा सोबती की कहानियों में जो स्त्री का स्वरूप उभर कर आता है, वह उतना ठोस या सशक्त नहीं, जितना कि उपन्यासों में। 'बादलों के घेरे', 'सिक्का बदल गया' और 'आजादी शम्मोजान की' जैसी दो–तीन कहानियों को छोड़ दें, तो उनकी कहानियाँ, उनके उपन्यासों की तुलना में कमजोर हैं। मन्नो और जया के प्रतिकार के रूप में आगे आते हैं उनके उपन्यासों के तमाम नारी पात्र 'सूरजमुखी अंधेरे के की रत्ती के तन–मन के तार जुड़े हैं असद के साथ। बचपन की भयावहता से त्रस्त रत्ती को असद के संग से सुकून मिलता है, मगर बहुत अल्प समय के लिए, क्योंकि लंबी बीमारी से असद की मौत हो जाती है। रत्ती टूट जाती है अंदर से, क्योंकि असद ही वह एकमात्र पुरुष था जिसने स्त्री के सच को जान कर भी उससे घृणा नहीं की। इसके बावजूद रत्ती स्वयं को बिखरने नहीं देती। दिवाकर के साथ विकसित प्रेम संबंध के माध्यम से वह स्वयं को पाती है। रत्ती के माध्यम से सोबती ने उस आधुनिक नारी को चरित्रांकित किया है, जो एक से अधिक प्रेमसंबंध स्थापित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं महसूस करती। रत्ती विवाहित दिवाकर से संबंध स्थापित करने में कोई झिझक महसूस नहीं करती, क्योंकि उसे अपने अंदर की ग्रंथि का इलाज करना है, मगर दिवाकर के साथ संबंध को हमेशा के लिए निर्वाहित नहीं करना चाहती। रत्ती के पास अपना तर्क है, वह जुड़े हुए को तोड़ेगी नहीं, कुछ–कुछ श्नदी के द्वीपश की रेखा की तरह, जो भुवन का भविष्य नहीं माँगना चाहती। लेकिन रत्ती आत्मपीड़क नहीं, वह प्रेम संबंध को अपने इर्द–गिर्द घिरे संशय के बाड़े को हटाने के लिए प्रयुक्त करती है।

आज के सामाजिक और व्यक्तिगत यथार्थ ने प्रेम की परिभाषा ही बदल दी है। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार, 'आज प्रेम में एकनिष्ठता, भावुकता, रूमानियत व आदर्श के स्थान पर स्वार्थ, वासना उद्देश्य तथा अपने–अपने व्यक्तित्वों के परस्पर उन्मीलन की सफलता या असफलता लक्षित होती है।[11] 'दिलोदानिश' में महकबानो और वकील कृपानारायण का प्रेम संबंध कुछ ऐसा ही है। आरंभ में महक एवं वकील साहब के प्रेम

संबंध अत्यंत मधुर एवं दृढ़ हैं। महक एक समर्पिता रखैल की भूमिका निभाती नजर आती है। इस प्रेम संबंध के परिणामस्वरूप महक दो बच्चों की माँ बनती है, जिसके लिए वह वकील साहब की शुक्रगुजार है, 'दुनिया में दो ही नेमते हैं साहिब, बेटा और बेटी। आपने हमें दोनों दिए। 31 महक का प्यार निःस्वार्थ है। वह वकील साहब की दौलत की भूखी नहीं, प्यार की भूखी है। लेकिन वकील साहब द्वारा बदरु के जन्म पर दिए गए कंगन के वापस माँगे जाने पर एवं मासूमा के विवाह के अवसर पर उसे माँ के अधिकार से वंचित रखे जाने पर वह वकील साहब के प्रेम के खोट को भाँप जाती है। अपनी अम्मी के जेवर को वह वकील साहब से वापस माँगती है, – '... हमारी माँ के जेवर हमें आज शाम तक मिल जाने चाहिए वकील साहब। आप अम्मी के वकील रहे, अब हम आपकी मुवक्किल की बेटी हैं जिसका उन पर पूरा हक है। 52 अपने बच्चों के दूर किए जाने पर महक अनवर खाँ साहब के साथ जीवन की नई संभावनाओं को तलाश करने के लिए निकल पड़ती है। युगीन मान्यताओं में बदलाव के साथ प्रेम के स्वरूप में भी बदलाव आया है। सोबती के अनुसार आज, 'आप आध्यात्मिक मुद्रा में प्रेम की पूजा नहीं करते, उसे सफलतापूर्वक पटाते हैं"।[12]

आज प्रेम में एकनिष्ठता एक अविश्वसनीय वस्तु हो गई है। एकनिष्ठता की यह अवधारणा भी आज इसलिए बेमानी हो गई है क्योंकि यह पितृसत्ता के फायदे के लिए काम करती है। ऊर्वशी बुटालिया के अनुसार, 'इस विचार में पितृसत्ता को या पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था को भुला दिया जाता है, जिसमें स्त्री और पुरुष के कर्त्तव्य तथा अधिकार कभी समान नहीं होते, जिसमें स्त्री के लिए तो पतिव्रता का या एकनिष्ठ प्रेम करने वाली स्त्री का आदर्श होता है, जबकि पुरुष के लिए एकनिष्ठ प्रेम जरूरी नहीं माना जाता।'[13]

प्रेम के अतिरिक्त विवाह संबंधी दृष्टिकोण भी आज परिवर्तित हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात् सामाजिक, राजनतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों ने मानवीय संबंधों को भी गहरे रूप से प्रभावित किया है। शिक्षा ने नारी को आत्मसम्मान दिया, अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक बनाया, एवं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाया। नारी ने अपनी क्षमताओं को पहचाना और जीवन के सभी क्षेत्रों में समान अधिकार एवं अवसरों की माँग की। पुरुष ने नारी की उन्हीं इच्छाओं को माना जहाँ तक वह पुरुष के खिलाफ नहीं था। लेकिन नारी की बढ़ती इच्छाओं एवं अपेक्षाओं ने स्त्री एवं पुरुष के संबंधों में तनाव की स्थिति उत्पन्न कर दी। आधुनिक नारी कानूनी तौर पर सुरक्षित एवं आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर है, अतः वह पुरुष के अधिपत्य को मानने को तैयार नहीं। परिणामस्वरूप विवाह संबंधी परम्परागत मूल्य समाप्त हो रहे हैं। आज विवाह पवित्र धार्मिक संबंध नहीं रह गया, जिसे तोड़ा न जा सके। वह स्त्री एवं पुरुष की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति का निमित्त मात्र बन गया है।

कृष्णा सोबती के यहाँ विवाह की विसंगतियों एवं विकल्प की तलाश को उकेरने का प्रयास मिलता है। सोबती की नारी, पति को परमेश्वर नहीं मानना चाहती, बल्कि जीवनपथ का सहयात्री समझना चाहती है। मित्रो को सरदारी से यही शिकायत है, कि वह न तो थाली बाँटता है, ना ही दिल के दुःख–दर्द ही। स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व कई बार विवाह के आड़े आता है। आधुनिक नारी, अपने व्यक्तित्व को पति के व्यक्तित्व में तिरोहित नहीं करना चाहती, बल्कि विवाह के पश्चात भी व्यक्तित्व की स्वतंत्रता की अपेक्षा रखती है। विवाह के परंपरागत स्वरूप को निभाने वाली अम्मू, जीवन के अंतिम क्षणों में व्यक्ति स्वातंर्त्य की चाह रखती दिखती है। वह नर्स सूसन

को समझाती है, 'सूसन, शादी के बाद किसी के हाथ का झुनझुना नहीं बनना। अपनी ताकत बनाने की कोशिश करना।"[14]

शिक्षा ने जहाँ नारी को सोच के नये आयाम दिए, वहीं आत्मनिर्भरता ने उसे अस्मिता के प्रति जागरूक बनाया एवं समाज की जर्जर रूढ़ मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह को प्रेरित किया। आत्मनिर्भर नारी सिर्फ विवाह के लिए विवाह नहीं करना चाहती। वह तब तक इंतजार करना चाहती है, जब तक उसे मनोकूल साथी नहीं मिल जाए। अगर ऐसा कोई पात्र नहीं मिलता, तो वह अविवाहित रहना पसंद करती है। श्ऐ लड़कीश में लड़की तथा श्समय सरगमश में आरण्या अविवाहित स्त्रियाँ हैं। लड़की शिक्षित एवं आत्मनिर्भर है, उसके लिए विवाह, परिवार इत्यादि महत्त्वपूर्ण नहीं। वह नारी स्वतंत्रता की हिमायती है। वह अपने व्यक्तित्व को अपनी इच्छानुसार सँवारती है, जिसे माँ का समर्थन भी मिलता है। अम्मू कहती है, और तुम ! तुम उसी प्राचीन गाथा के बाहर हो, जहाँ पति होता है, बच्चे होते हैं, परिवार होता है। न भी हो दुनियादारी वाली चौखट तो भी तुम अपने–आप में तो आप हो।"[15]

लड़की सिर्फ परिवार की खुशी के लिए विवाह करने में यकीन नहीं रखती। वह विवाह संबंध में बराबरी के स्तर और सम्मान की आकांक्षी है। इसीलिए अम्मू से कहती है, 'मैं किसी को नहीं पुकारती जो मुझे आवाज देगा, मैं उसे जवाब दूँगी।'[16] अम्मू भी उसका समर्थन करते हुए उसे खुद ही जीवनसाथी चुन लेने की सलाह देती है। बेटी शिक्षित और आत्मनिर्भर होने की वजह से भावुक हुए बगैर तटस्थ है, एवं स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता रखती है।

'दिलोदानिश' में वकील साहब और महकबानो के संबंध विवाह के समानान्तर एक विकल्प रखते हैं, कुछ–कुछ आज की टर्मिनोलॉजी के 'स्पअम–पद' जैसा। कुटुम्बप्यारी से विवाह और एक भरा–पूरा परिवार होने के बावजूद वकील साहब महक से संबंध बनाते हैं और उसके दो बच्चों के पिता भी बनते हैं। घरबिरादरी के लोग वकील साहब के इस दबे–छुपे संबंध को जानते हैं, लेकिन वकील साहब को इससे फर्क नहीं पड़ता। उनके पास अपने तर्क हैं, 'यह भी क्यों जरूरी है कि एक ही रिश्ता पसरकर बन्दे की पूरी जमीन और जमीर को घेर ले।... सच तो यह है कि घर–घर बीबियाँ हाल–बेहाल होती रहेंगी, शोर मचाती रहेंगी और महबूबाएँ हुस्न के जोर से दिलों पर रंग जमाती रहेंगी।[17]

कृष्णा सोबती बदलते दौर की कथा लेखिका हैं। अपने लंबे लेखन काल में सामने आने वाले सामाजिक–राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने व्यक्त किया है। विवाह एवं परिवार जैसी जिन सामाजिक संस्थाओं की सुरक्षा की चिंता अपने आरंभिक दौर की रचनाओं में वे करती हैं, उन्हें ही अपने अंतिम दौर की रचनाओं में वे नकार देती हैं। रूमानी भावुकता से ठोस बौद्धिकता की तरफ का सफर उनके लेखन की परिपक्वता को दर्शाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. बी कुप्पुस्वामी, सोशल चेंज एंड इंडिया, विकास पब्लिकेशन, दिल्ली 1972 पृष्ठ 172–178

2. एल एल बाशम, अदभुत भारत, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा 1992 पृष्ठ–129
3. डॉ मैनेजर पांडेय, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ– 41
4. एरिक फ्राम, प्रेम का वास्तविक अर्थ और सिद्धांत, अनुवाद युगांक धीर, संवाद प्रकाशन 2002 पृष्ठ 28
5. कृष्णा सोबती, मित्रों मरजानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली 2004 पृष्ठ 18
6. कृष्णा सोबती, बादलों के घेरे, राजकमल प्रकाशन, 2007 पृष्ठ– 91
7. राजेंद्र यादव, औरों के बहाने, राधा कृष्ण प्रकाशन, 1980 पृष्ठ 41
8. डॉ. लक्ष्मी सागर वाष्णेय, द्वितीय महायुद्धोत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–65
9. कृष्णा सोबती, दिलो दानिश, राजकमल प्रकाशन 2006, दिल्ली पृष्ठ 14
10. वही, पृष्ठ–204
11. कन्हैयालाल नंदन, सारिका, जनवरी 1979, पृष्ठ 13
12. रमेश उपाध्याय एवं संध्या उपाध्याय, आज के समय में प्रेम, शब्द संधान प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ 37
13. कृष्णा सोबती, ऐ लड़की, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991 पृष्ठ 6
14. वही पृष्ठ–65
15. वही पृष्ठ–56
16. कृष्णा सोबती, दिलोदानिश, राम कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006 पृष्ठ 44
17. प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता–द– सेकंड सेक्स का हिंदी रूपांतरण, हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली 2004 पृष्ठ–65

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 193-196

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय उपन्यासों में युग चेतना और सामाजिक परिवर्तन

रजनी प्रभा, शोधार्थी
डॉ. राकेश रंजन, शोध निर्देशक एवं सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण के इस दौर में तीव्र गतिशील हो रहे सामाजिक, शैक्षणिक, साहित्यिक और धार्मिक अंतर्संबंधों के विकास के क्रम में दक्षिण एशियाई देशों के सामाजिक परिवर्तन की ओर ध्यान आकृष्ट करना और उसके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों की पड़ताल नितांत आवश्यक है ताकि उसमें निहित सकारात्मक प्रवृत्तियों से लाभ उठाने के साथ–साथ उसके दूषित/विकृत पक्ष के उपचार के मार्ग को प्रशस्त किया जा सके। ऐसे में जनमानस में नवीन युग चेतना भरने हेतु साहित्य का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है।

औपनिवेशिक काल से लेकर समकालीन वैश्वीकरण तक राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और परिवारिक प्रभावों के फलस्वरुप दक्षिणी एशियाई देशों में आशातीत परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं।

एक आदर्श समाज की परिकल्पना को साकार करने में साहित्य की महती भूमिका रही है। साहित्य मनुष्य को प्रगतिशील बनता है। सत्य–असत्य, यथार्थ काल्पनिक का बोध कराता है और साहित्य मानवीय भावनाओं को नई दिशा देकर मनुष्य को समाजोपयोगी महामानव बनाता है। साहित्य को समाज का दर्पण भी कहा जाता है। 'राइट' के अनुसार" मनुष्य के समूह को समाज नहीं कहा जा सकता अपितु समूह के अंतर्गत व्यक्तियों के संबंधों की व्याख्या का नाम समाज है।"[1]

समाज में घटित हो रहे हैं प्रत्येक बिंदु पर ध्यान आकर्षित करने में साहित्य पूर्णतरू सक्षम होता है। साहित्य का अर्थ ही है 'सहित', यानी सभी के हितों को जो ध्यान में रखकर आगे बढ़ता और बढाता है। साहित्य का मूल उद्देश्य ही लोगमंगल की कामना है।

हिंदी साहित्य लेखन का मूल उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक अध्ययन रहा है। प्राचीन काल से ही संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश से विकसित होती हुई हिंदी साहित्य की विकास यात्रा आज समस्त भारत वर्ष में खड़ी बोली के रूप में अपना प्रभुत्व जमा चुकी है और दक्षिण एशियाई देशों में लगभग सभी स्थानों पर इसे बोला और समझा जाता है। साहित्य के पास सभी सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं का हल है। हिंदी साहित्य में भिन्न–भिन्न विषयों पर लेखन के लिए अनेक रोचक व प्रभावशाली विधाएं हैं, यथा काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, डायरी, रिपोर्ताज, नाटक, प्रहसन आदि। सामाजिक परिवर्तन को

दर्शाने में उपन्यासों की महती भूमिका रही है। ऐसे में आधुनिक काल में हिंदी साहित्य द्वारा जनमानस में चेतना भरने हेतु साधारणतः हिंदी की सभी विधाओं का प्रारंभ भारतेंदु युग से ही माना जाता है। सर विलियम हेमिल्टन ने 'चेतना' को अपरिभाषित करते हुए बताया है "चेतना की परिभाषा नहीं की जा सकती। हम केवल यह अनुभव कर सकते हैं कि चेतना क्या है। लेकिन हम चेतना को जो समझते हैं,जैसा अनुभव करते हैं बिना किसी उलझन के किसी को बता नहीं सकते।"[2] ऐसे में अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिय उपन्यासों में लेखक को पूरा अवसर मिलता है। जिसके माध्यम से बड़ी सहजता से सामाजिक परिवर्तन को भिन्न–भिन्न उपन्यासकारों ने अपने स्वर प्रदान किया है। हम ऋणी हैं भारतेंदु के, जिन्होंने अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ, गुलामी के खिलाफ शोषित–पीड़ित जनमानस में स्वाधीनता की चेतना भरने का भरसक प्रयास किया। भारतीय गौरव को पुनः स्थापित करने और भारत की दुर्दशा को वर्णित करने की पुरजोर कोशिश की। भारतेंदु युग में भी हिंदी उपन्यासों का प्रारंभ बांग्ला उपन्यास 'पूर्ण प्रकाश प्रभा' और 'चंद्रप्रभा' के अनुवाद के रूप में हुआ, परंतु प्रेमचंद के पूर्व के उपन्यासों में विषय वस्तु, तत्व और भाषा सभी अनेक दृष्टियों से बिखरा हुआ भी प्रतीत होता है। तब तक अय्यारी, जासूसी, सामाजिक, सांप्रदायिक कौतूहल आदि के रूपों में हीं उपन्यासों की रचना की जाती रही। प्रथमतः प्रेमचंद ने ही दबे–कुचले वंचित वर्ग की यथावत स्थिति को लेखनीबद्ध करने का प्रयास किया। प्रेमचंद के विषय में डॉक्टर कमल किशोर गोयनका लिखते हैं "प्रेमचंद हिंदी उपन्यास साहित्य में युग सृष्टा के रूप में विख्यात है। हिंदी उपन्यास को तिलिस्म और जासूसी कथा–कहानी के कुहासे से बाहर निकालकर यथार्थ की भूमि पर अवस्थित करने का श्रेय उन्हीं को है। प्रेमचंद ने भारतीय जनजीवन को जिस रूप में देखा–परखा था, उसका यथावत सही चित्रण करने का बीड़ा उठाया और उसमें सफलता के चरण बिंदु का स्पर्श भी किया।"[3]

प्रेमचंद जी का पहला उपन्यास 'सेवासदन', 1918 में प्रकाशित हुआ। इसी के साथ एक हिंदी उपन्यास के नवीन युग का, 'विकास युग' का सूत्रपात हुआ।

तत्कालीन समय में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ, धार्मिक आडंबरो, कुरीतियों, पाखंडो के खिलाफ नवीन चेतना और गौरव की भावना का सूर्य उदित हो रहा था। यह काल पूर्णतः समाज सुधार और स्वतंत्रता संग्राम का काल था। तब पहली बार मानवतावादी धरातल के आधार पर वैश्या का चित्रण किया गया और उसे सफलता भी मिली। प्रेमचंद ने समाज में नई चेतना जागृति लाने की कोशिश की। उन्होंने लिखा है कि घृणा की पात्र सुमन नहीं हमारा समाज ही है, जिसने उसे एक वैश्या बनने को बाध्य किया। समाज में व्याप्त दहेज–दानव का भय भी इस उपन्यास में स्पष्ट परिलक्षित होता है। सुमन से बिना दहेज कोई भी ब्याह करने को राजी न था। एक महाशय सहानुभूति के साथ कहते हैं– "महाशय, मैं स्वयं इस कुप्रथा का जानी दुश्मन हूं। लेकिन करूं क्या? अभी पिछले साल ही बेटी का विवाह किया, दो हजार रुपए केवल दहेज में देने पड़े, दो हजार खाने–पीने में खर्च पड़े, आप ही कहिए, यह कमी कैसे पूरी हो?"[4] फिर सुमन के पिता को रिश्वत लेने पड़ी और भेद खुलने पर जेल भी जाना पड़ा।

साहित्य युग चेतना और युगबोध से परिपूर्ण होता है। हिंदी उपन्यास द्वारा युग चेतना लाने और सामाजिक परिवतन को मुखरित करने में 'चेतना' शब्द बुद्धि, ज्ञान, मनोवृति, स्मृति, संज्ञा, होश आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। 'चेतना' यानी जागृत अवस्था। किसी विषय वस्तु के संदर्भ में ज्ञान, विचार, जानकारी घोषित करता है। सामाजिक परिवर्तन और युग चेतना को बल देने वाले उपन्यासकारों में फणीश्वरनाथ रेणु का नाम भी अग्रणी है।

पूर्णियां में जन्में रेणु की शिक्षा नेपाल में भी हुई। नेपाल की क्रांति में भी उन्होंने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया था। इनकी लेखनी ने वर्तमान ग्रामीण अंचल में पिछड़ी जातियों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता और सजगता दिखलाने की कोशिश की। अंचल विशेष को अपने कथा का नायक बनाने वाले रेनू के उपन्यासों में नवीन चेतना से परिपूर्ण अब शोषित जनता विद्रोह करने लगी। सामाजिक परिवर्तन स्वतः दृष्टिगोचर होने लगे। विश्वनाथ बाबू से तहसीलदार हरगौरी सिंह कहते हैं– "कल से ही रामकिरपाल काका के गूगल में गाय मरी पड़ी है। चमार लोगों ने उठाने से इंकार कर दिया है।.....राजपूत टोले के लोगों को देखिए, दाढ़ी कितनी बड़ी–बड़ी हो गई है। नाईयों ने काम करना बंद कर दिया है।"

सरकारी सुविधाओं का लाभ पा कुछ युवा शहरों में भी पढ़ने जाने लगे हैं और आवागमन की कमोबेश सुविधा से राजनीतिक पार्टियों का भी गांवों में आना–जाना भी बढ़ गया है। ऐसे में आधुनिकता के प्रभाव से ग्रामीण लोग भी अंग्रेजी के शब्दों का व्यवहार करने लगे हैं– "राजनीतिक सरगर्मी के कारण परानपुर के लोग अब नामेनेशन, मेजरौटी, पौलटीस, पौलिसी, दिमाकृषि (डेमोक्रेसी) शब्दों को समझने और उनका धड़ल्ले से प्रयोग भी करने लगे हैं।"[6]

युग चेतना और सामाजिक परिवर्तन को आत्मसात करता हुआ एक अत्यंत प्रभावशाली औपन्यासिक कृति है 'भूदानी सोनिया'। इस कृति के माध्यम से उपन्यासकार उदयराज सिंह ने तत्कालीन भारतीय–स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर 'संत विनोबा भावे' के 'भूदान आरोहण यज्ञ' के प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय समाज में हो रहे परिवर्तन को बड़ी बारिकी से चित्रित करने की पुरजोर कोशिश की है। जिसमें युगचेतना के संवाहक के रूप में 'भुदानी सोनिया' के चरित्र को उद्घाटित किया जा सकता है।

भूदान यज्ञ के प्रणेता गोकुलदास जी के प्रभाव में आकर साहित्यकार शेखर भी गरीबों से सहानुभूति रखने लगा। गुरु जी ने उसका हृदय परिवर्तन कर दिया। "आज संध्या सभा में उपस्थित भूमिहीनों की सूरत पर मैंने एक नई आभा, एक नई विभा देखी है। मुझे उपन्यास के लिए एक नया प्लॉट मिल रहा है यहां। आज जिंदगी ने नई करवट ली है और आप सत्य मानें,मैं भी उन तरंग को साकार कर दूं तो अपने को धन्य धन्य मानूं। इस विश्व–कल्याण योजना में जो सहयोग न देगा, जो योगदान न देगा वह मानव कहलाने के हक से अपने को वंचित कर लेगा। आपकी आनंद यात्रा का मैं भी आज से एक पथिक बनूंगा। योगीराज आप धन्य है धन्य है।"[7] और, आज के आए शेखर जी फिर वापस न हुए।

देश में जो स्वाधीनता की लहर दौड़ रही थी उसने समाज के हर वर्ग को प्रभावित किया। ऐसे में एक मध्यम वर्गीय लड़की 'सोनिया' ने भी शोषण और शोषित जनता की सेवा में स्वयं को सौंप दिया। परंतु जब उसने देखा की यशतृष्णा ने सेवा भावना को ढंक दिया है। लोग योगी से भोगी बन रहे हैं तो उसने स्वयं को 'भूदान आरोहण यज्ञ' में पूर्णतः समर्पित कर दिया। उसके पिता जब उसे आश्रम से लेने आते हैं तो वो कहती है– "बाबा, मेरा रास्ता अब बदल चुका है। मैं अब सेवा व्रत ले चुकी हूं। मेरे लिए अब आंगन और प्रांगण भवन और भुवन में कोई फर्क नहीं। मेरी जिंदगी अब एक नए सांचे में ढल चुकी है। फिर तुम्हारे नए मकान में जाने की मुझ में हिम्मत नहीं। शहादत की पुरानी झोपड़ी तो अब जलकर खाक हो गई है। आज जो इमारत तुमने बनाई है वह तो महेश 'पाप' का घर है। वहां ठहराकर मेरा धर्म न बिगाड़ो। स्वामी जी के आश्रम की कुटिया है अब मुझे ज्यादा प्रिय है।"[8]

परिवर्तन सृष्टि का शारस्वत नियम है। समाज के आधारभूत परिवर्तनों के संदर्भ में अनेकानेक उपन्यासों की रचना की जाती रही है परंतु सभी की पृष्ठभूमि लगभग समान ही होती है। यानी की समाज के दबे–कुचले और बहिष्कृत जनता को समाज की मुख्य धारा से जोड़ना। ताकि वो अपने अधिकारों और कर्तव्यों को भली–भांति समझ कर उनका निर्वाह कर सके। साथ ही उनसे लाभान्वित होने के वो समाज को भी अपनी क्षमतानुसार कुछ दे सकें। ऐसे में उपन्यास साहित्य जनमानस में चेतना भरने और सामाजिक परिवर्तन हेतु एक नया वर्ग तैयार करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता आया है। आने वाले भविष्य में भी यह मानवीय अंतःक्रियाओं और रिश्तों के साथ–साथ सांस्कृतिक और सामाजिक मुद्दों को भी उद्घाटिक करता रहेगा। जिसके प्रभाव से समाज को एक नई दशा और दिशा मिलती रहेगी।

संदर्भ :–

1. डॉ. उर्मिला गंभीर–प्रतापनारायण श्रीवास्तव के उपन्यास, 15–16 का समाज शास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ संख्या 38
2. डॉ. रत्नाकर पांडे, हिंदी साहित्य सामाजिक चेतना, पृष्ठ संख्या 160
3. गोयनका, डॉ. कमलकिशोर, प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान, इलाहाबाद, सरस्वती प्रेस, पृष्ठ संख्या 5
4. प्रेमचंद, सेवासदन, प्रकाशन संस्थान ,नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ संख्या 6
5. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आंचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–1954, पृष्ठ संख्या–223
6. फणीश्वर नाथ रेणु, परती परिकथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1963, पृष्ठ संख्या–21
7. उदयराज सिंह, भूदानी सोनिया, उपन्यास, द्वितीय संस्करण, वर्ष–1967, पृष्ठ संख्या 51
8. वहीं, पृष्ठ संख्या 156

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 197-203

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ECO-ANXIETY AND LITERARY LANDSCAPES: TRACING ENVIRONMENTAL CONSCIOUSNESS IN 21ST CENTURY BRITISH FICTION

Dr. Priya Sudhakar Manapure
Department of English,
Sri Sathya Sai University of Technology And Medical College, Sehore (M.P.)

Abstract :

This paper examines the representation of eco-anxiety in 21st-century British fiction as a literary response to the escalating global climate crisis. Eco-anxiety, defined as the chronic fear of environmental doom, is increasingly recognized as a widespread psychological condition shaped by the Anthropocene's uncertainties. Through close readings of selected novels—Ian McEwan's *Solar*, Jeanette Winterson's *The Stone Gods*, and Ali Smith's *Seasonal Quartet*—the study explores how contemporary British authors deploy narrative strategies to evoke environmental consciousness and emotional engagement. The analysis focuses on three key dimensions: the thematic portrayal of climate collapse and ecological loss, the use of metaphor, voice, and setting to translate environmental dread into personal experience, and the broader critique of consumerism, capitalism, and political inaction. Each text offers a distinct narrative mode—satire, dystopia, and lyrical realism—that captures the multifaceted nature of ecological anxiety. These works not only reflect the emotional and ethical tensions of living in a time of environmental crisis but also function as affective interventions that challenge dominant socio-political structures and cultivate eco-empathy.

Keywords : Eco-anxiety, Ecocriticism, Climate fiction (*cli-fi*), Environmental consciousness, 21st-century British literature, Anthropocene

1. Introduction :

The term **eco-anxiety** has gained traction in psychological, environmental, and literary discourse over the past two decades, describing a persistent fear or distress caused by environmental degradation

and the perceived inaction surrounding climate change (Clayton et al., 2017). The American Psychological Association defines it as "a chronic fear of environmental doom" that affects individuals emotionally, mentally, and physically (APA, 2017). As the reality of ecological collapse becomes more immediate—with rising sea levels, extreme weather events, and biodiversity loss—such anxiety has become not only a personal but also a generational and global phenomenon.

In parallel, **21st-century British fiction** has increasingly turned toward environmental concerns, producing narratives that reflect society's collective unease and uncertainty about ecological futures. British authors like **Ian McEwan**, **Jeanette Winterson**, **Sarah Hall**, and **Ali Smith** have explored environmental collapse, climate change, and human-nature alienation through diverse narrative forms, including satire, dystopia, magical realism, and eco-speculation. These literary works go beyond representing the environment as mere backdrop; they engage with it as an active, often sentient, force that shapes human emotion, identity, and action. Literature, in this sense, becomes a powerful lens through which the psychological experience of living in an era of ecological crisis—what some call the *Anthropocene*—can be examined (Garrard, 2012).

2. Eco-Anxiety in British Fiction: Key Themes :

The thematic exploration of **eco-anxiety** in 21st-century British fiction reveals a complex interplay between personal emotion, social responsibility, and planetary crisis. Novels in this period frequently depict characters grappling with feelings of helplessness, guilt, and dread in the face of ecological collapse—offering a literary reflection of the psychological turmoil associated with global environmental change.

Representation of Climate Crisis and Ecological Collapse :

British fiction increasingly foregrounds the **climate crisis** not just as a backdrop but as an active force within the narrative structure. For instance, Ian McEwan's *Solar* (2010) satirizes the scientific and political stagnation surrounding climate change, revealing the moral ambivalence and denial often tied to environmental inaction. The protagonist's personal failings parallel the larger societal failure to address ecological destruction, creating a layered critique of human ego and environmental irresponsibility (Trexler, 2015).

In contrast, Jeanette Winterson's *The Stone Gods* (2007) presents a dystopian cycle of planetary destruction, underscoring humanity's repetitive ecological failures. Through speculative world-building, the novel addresses both the inevitability and preventability of environmental collapse—evoking a sense of intergenerational anxiety and loss (Ghosh, 2016).

Human-Nature Relationships in Urban vs. Rural Settings :

Another important theme in British eco-fiction is the **tension between urban disconnection**

and rural entanglement with nature. Works like Sarah Hall's *The Carhullan Army* (2007) highlight the alienation caused by industrial urban environments while portraying rural spaces as sites of resistance and ecological intimacy. However, these rural spaces are not idealized; they are fragile and contested, reflecting the precariousness of both natural ecosystems and human survival within them. Urban settings often serve as metaphors for ecological numbness, where artificiality and hyper-consumerism mask the unfolding crisis. In Ali Smith's *Seasonal Quartet* (2016–2020), fragmented urban lives are subtly interwoven with natural cycles and seasonal change, suggesting the possibility of renewal despite disconnection.

Climate Futures and Speculative Narratives :

Speculative fiction has become a vital mode for articulating eco-anxiety in British literature. Through dystopian or post-apocalyptic scenarios, authors project *climate futures* that function as both warnings and emotional provocations. These imagined worlds amplify present anxieties, making the intangible future feel viscerally immediate (Johns-Putra, 2019). For example, in *The Stone Gods*, Winterson constructs a planetary collapse that mirrors our current ecological trajectory, blending climate fiction (*cli-fi*) with philosophical reflection on time, history, and loss.

Such narratives enable readers to confront the environmental consequences of present-day actions while also exploring possible paths of resilience, adaptation, or despair. They challenge readers not only to imagine catastrophe but also to emotionally engage with its meaning.

3. Narrative Strategies and Affective Engagement :

The affective force of eco-anxiety in contemporary British fiction emerges not only through plot and theme but also through **narrative strategies**—particularly the use of metaphor, setting, and voice. These formal techniques serve to translate environmental crises into emotional experiences, allowing readers to **feel** the weight of ecological loss and urgency. In this sense, literature functions as both a mirror and a medium for fostering ecological consciousness.

Use of Metaphor, Symbolism, and Setting :

Metaphor and symbolism are central to articulating the otherwise abstract and overwhelming realities of climate change. In *Solar*, Ian McEwan uses the metaphor of entropy—not only as a physical principle but as a symbol of the protagonist's moral and emotional decay. The personal failures of Michael Beard reflect the thermodynamic unraveling of the planet, creating an ironic parallel between individual and planetary dysfunction.

Jeanette Winterson's *The Stone Gods* is rich in environmental symbolism. The recurring image of ruined landscapes, scorched earth, and genetically altered flora serve as symbols of lost ecological harmony and the violence of technological hubris. The planet Orbus, a fictional mirror of Earth,

becomes a setting that externalizes the consequences of unsustainable growth and denial.

Ali Smith's *Seasonal Quartet* employs seasonal changes—autumn's decay, winter's dormancy, spring's rebirth, and summer's vitality—as both **structural and symbolic devices**. Nature becomes a rhythm that contrasts with the fragmentation of human society, subtly reminding readers of cycles that extend beyond the human scale and offering metaphors of potential renewal amid political and ecological precarity.

Narrative Voice and Emotional Resonance :

Narrative voice plays a crucial role in conveying the psychological dimensions of eco-anxiety. In *Solar*, the third-person limited narration amplifies Beard's self-deception, exposing the dissonance between intellectual recognition of climate change and ethical engagement. The use of irony and detachment in the narration enhances the satirical critique but also distances the reader emotionally, reflecting societal disengagement from ecological urgency.

In contrast, *The Stone Gods* adopts a more intimate and fluid narrative voice that traverses time and identity, creating a sense of continuity between past, present, and future selves. This narrative strategy evokes **environmental memory and trauma**, enabling emotional resonance with lost ecosystems and vanished worlds. The fragmented yet poetic narration builds a cumulative emotional weight that mirrors the deep-time scope of ecological collapse.

Smith's use of **free indirect discourse and stream-of-consciousness** in the *Seasonal Quartet* creates a porous boundary between narrator and character, allowing emotional states—grief, confusion, wonder—to be shared directly with the reader. Her lyrical voice draws readers into the experience of time passing and nature changing, fostering a quiet but persistent ecological sensibility.

Reader Engagement and Environmental Consciousness :

These narrative techniques are not merely aesthetic choices—they are deeply political. By immersing readers in the emotional realities of environmental breakdown, these texts promote **affective engagement** rather than didacticism. As Buell (2005) and Heise (2008) argue, environmental literature must overcome the challenge of "environmental apathy" by invoking empathy, intimacy, and a sense of ethical responsibility.

Metaphor and voice become tools for building **eco-empathy**—a mode of identification with nonhuman life and planetary futures. Through affective storytelling, readers are invited to feel loss, imagine collapse, and consider alternative forms of coexistence. In doing so, these narratives expand the boundaries of environmental consciousness from scientific abstraction to emotional and moral imperatives.

4. Eco-Anxiety as Political and Cultural Critique :

While eco-anxiety is often explored as a psychological and affective response to environmental degradation, it also serves as a **powerful lens for political and cultural critique** in contemporary British fiction. Through narrative form and thematic content, authors expose the structural roots of ecological crisis—namely, **consumer capitalism, systemic inequality, and political inaction**—and reposition literature as a space for ecological resistance and imaginative intervention.

Fiction as a Medium for Ecological Awareness :

In the face of abstract scientific discourse and often inaccessible climate data, fiction emerges as a **narrative bridge between emotion and understanding**. Literature can give shape and voice to the intangible affects of the Anthropocene—fear, guilt, denial, and mourning—and render them comprehensible at a human scale (Ghosh, 2016). British novels such as *Solar*, *The Stone Gods*, and the *Seasonal Quartet* play a critical role in **making ecological crisis visible and emotionally palpable**, contributing to the growing public awareness of planetary vulnerability.

Fiction not only reflects eco-anxiety but **amplifies it as a socially productive force**, compelling readers to recognize their embeddedness within ecological systems. By personalizing climate change and dramatizing its consequences, these texts counteract the emotional detachment and fatigue often associated with environmental discourse.

Critique of Consumerism, Capitalism, and Governmental Inaction :

A recurring target in eco-anxious fiction is the **ideology of consumerism and late capitalism**, which is often portrayed as incompatible with environmental sustainability. In *Solar*, Ian McEwan skewers the hypocrisy of green capitalism, where climate solutions are commodified and moral urgency is overshadowed by profit motives. Michael Beard's opportunism becomes a satirical embodiment of how capitalist logic reduces the climate crisis to an economic opportunity rather than an ethical emergency (Trexler, 2015).

Winterson's *The Stone Gods* takes this critique further by presenting a dystopian society in which corporate power, genetic engineering, and environmental exploitation go unchecked. The novel suggests that **technological optimism and market-driven "solutions" are merely continuations of extractive logic**, leading to recursive planetary collapse. Similarly, Ali Smith's Quartet—while less overt—subtly critiques the **aestheticization of crisis** and the apathy of political institutions through its interweaving of seasonal change with social fragmentation.

These texts reflect **Raymond Williams' notion of "structures of feeling"**—that literature can capture emergent social emotions, including climate dread, before they are fully articulated in political terms. Through eco-anxiety, they challenge dominant paradigms of growth, consumption, and state inaction.

Role of Literature in Mobilizing Ecological Action :

Although fiction may not propose direct solutions, it can catalyze a **re-imagining of values, priorities, and responsibilities**. Literature encourages **imaginative identification** with both nonhuman life and future generations—expanding the moral imagination required for long-term ecological thinking (Buell, 2005). By creating spaces of empathy and reflection, eco-anxious narratives promote **slow activism**—a form of awareness and attentiveness that precedes and supports concrete political action.

Moreover, by unsettling readers—emotionally and ethically—these novels break through the complacency that often surrounds climate discourse. As Heise (2008) argues, literature's ability to connect local affect with global ecological issues helps foster a more nuanced and interconnected environmental consciousness.

In sum, British eco-anxious fiction acts as a **literary ecology of resistance**: diagnosing the failures of current systems while cultivating new ethical possibilities and political sensitivities.

5. Conclusion :

This study has explored how **eco-anxiety**, as both an affective state and a cultural condition, is expressed and mediated through 21st-century British fiction. Through the examination of key texts—*Solar* by Ian McEwan, *The Stone Gods* by Jeanette Winterson, and Ali Smith's *Seasonal Quartet*—it has become evident that British novelists engage deeply with environmental concerns, using narrative to trace the psychological, ethical, and political dimensions of the climate crisis.

The analysis reveals that these authors employ diverse **narrative strategies**, including metaphor, symbolism, temporal structures, and affective voice, to convey the lived experience of ecological uncertainty. Each text offers a unique lens: McEwan's satirical critique of climate ethics, Winterson's speculative dystopia grounded in environmental memory, and Smith's lyrical engagement with seasonal change and renewal. Collectively, these works illustrate how fiction can act as a conduit for environmental awareness, emotional engagement, and cultural critique.

In terms of its **contribution to eco-critical and literary discourse**, this paper highlights the evolving role of literature in the Anthropocene—not merely as a reflection of crisis but as a **form of ecological consciousness itself**. It aligns with the broader field of ecocriticism by demonstrating how fiction fosters eco-empathy, interrogates systemic failures, and reimagines human-nature relationships in emotionally resonant ways. Furthermore, it advances the discourse by positioning eco-anxiety not only as a symptom of environmental collapse but also as a narrative force with transformative potential.

Future research could expand this inquiry by exploring :

- How eco-anxiety is represented in **other national or postcolonial literatures**, especially from the Global South.
- Comparative studies between **literary and non-literary media** (e.g., film, visual art, digital storytelling) in portraying environmental distress.
- The role of **gender, race, and class** in shaping experiences of eco-anxiety within fictional narratives.
- How **young adult and children's literature** are preparing future generations to emotionally and ethically respond to the climate crisis.

6. Bibliography :

1. American Psychological Association. (2017). *Mental Health and Our Changing Climate: Impacts, Implications, and Guidance*. APA and ecoAmerica.
2. Clayton, S., Manning, C., Krygsman, K., & Speiser, M. (2017). *Mental Health and Our Changing Climate: Impacts, Implications, and Guidance*. ecoAmerica.
3. Garrard, G. (2012). *Ecocriticism*. Routledge.
4. Ghosh, A. (2016). *The Great Derangement: Climate Change and the Unthinkable*. Penguin.
5. Johns-Putra, A. (2019). *Climate Change and the Contemporary Novel*. Cambridge University Press.
6. Trexler, A. (2015). *Anthropocene Fictions: The Novel in a Time of Climate Change*. University of Virginia Press.
7. Winterson, J. (2007). *The Stone Gods*. Penguin.
8. McEwan, I. (2010). *Solar*. Jonathan Cape.
9. Hall, S. (2007). *The Carhullan Army*. Faber & Faber.
10. Smith, A. (2016–2020). *Seasonal Quartet*. Hamish Hamilton.
11. Buell, L. (2005). *The Future of Environmental Criticism: Environmental Crisis and Literary Imagination*. Blackwell.
12. Heise, U. K. (2008). *Sense of Place and Sense of Planet: The Environmental Imagination of the Global*. Oxford University Press.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
May 2025 Page No. : 204-210

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

खेल नीति और भारतीय युवाओं का भविष्य

Chandra Shekhar Bharti

Assistant Professor, Faculty of Education,

IASE (Deemed to be University), Gandhi Vidya Mandir, Sardarshahar (Rajasthan)

सारांश –

भारत जैसे विशाल और विविध सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य वाले राष्ट्र में खेलों की भूमिका केवल मनोरंजन या शारीरिक व्यायाम तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक सशक्त सामाजिक संस्थान के रूप में कार्य करते हैं। खेल न केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य और मानसिक संतुलन के साधन हैं, बल्कि वे सामाजिक एकता को प्रोत्साहित करते हुए राष्ट्रीय पहचान और गौरव की भावना को भी सुदृढ़ करते हैं। युवाओं के जीवन में खेल अनुशासन, आत्म–नियंत्रण, नेतृत्त्व क्षमता, प्रतिस्पर्धा की भावना और सहयोग जैसे मानवीय मूल्यों का विकास करते हैं, जो उन्हें समाज में सक्रिय और जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए तैयार करते हैं। सरकार ने समय–समय पर खेलों की महत्ता को समझते हुए कई नीतियों और कार्यक्रमों को लागू किया है। National Sports Policy 1984 ने खेलों के प्रसार की आधारशिला रखी, वहीं 2001 की नीति ने इसे और व्यापक आयाम दिए। इसके अतिरिक्त हाल की Khelo India और Fit India Movement जैसी योजनाओं ने खेलों को केवल खेलकूद तक सीमित न रखकर शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और सामाजिक विकास से सीधे जोड़ने का प्रयास किया है। इन पहलों ने खेलों को प्रतिभा पहचान, संरचना विकास, वित्तीय सहयोग और जनसामान्य की भागीदारी जैसे पहलुओं से भी सशक्त किया है।

इस शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य खेल नीति और भारतीय युवाओं के भविष्य के बीच गहरे संबंधों को समझना और उनका विश्लेषण करना है। इसमें यह देखा जाएगा कि किस प्रकार खेल युवाओं के लिए नए अवसर पैदा करते हैं, उनके व्यक्तित्व का बहुआयामी विकास करते हैं, और उन्हें वैश्विक प्रतिस्पर्धा के लिए सक्षम बनाते हैं। साथ ही, यह भी आवश्यक है कि वर्तमान चुनौतियों–जैसे खेल संरचना की कमी, ग्रामीण क्षेत्रों में अवसरों का अभाव, लैंगिक असमानता और खेलों में पेशेवर मार्गदर्शन की सीमाएँ–की पहचान की जाए और उनके व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किए जाएँ। इस प्रकार यह शोध पत्र न केवल भारतीय खेल नीति की उपयोगिता पर प्रकाश डालेगा, बल्कि यह भी बताएगा कि कैसे खेलों के माध्यम से भारत का युवा वर्ग राष्ट्र के भविष्य को मजबूत और गौरवशाली बना सकता है।

मुख्य शब्दावली – राष्ट्रीय खेल नीति 1984, राष्ट्रीय खेल नीति 2001, खेल नीति, भारतीय युवा, युवाओं का भविष्य।

भूमिका –

खेल मानव सभ्यता का वह पहलू हैं, जो न केवल शरीर को सक्रिय रखते हैं बल्कि मन और आत्मा को भी संतुलित बनाते हैं। प्राचीन भारत की परंपराओं में कुश्ती, कबड्डी, तीरंदाजी, दौड़, चक्र और भाला फेंक जैसे खेल केवल मनोरंजन के साधन नहीं थे, बल्कि जीवन कौशल और सामूहिकता के प्रतीक माने जाते थे। खेलों ने भारतीय संस्कृति में अनुशासन, धैर्य और आत्मबल के साथ–साथ टीम भावना को भी गहराई से स्थापित किया है। आधुनिक युग में विज्ञान और तकनीक के विकास ने खेलों को नए आयाम दिए हैं, जिसके परिणामस्वरूप खेल अब केवल अवकाश की गतिविधि नहीं रहे, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से भी गहराई से जुड़े हैं। भारत आज विश्व की सबसे बड़ी युवा आबादी वाले देशों में शामिल है, जहाँ लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या 35 वर्ष से कम आयु वर्ग में आती है। इतनी विशाल जनशक्ति को यदि खेलों के माध्यम से सही अवसर और दिशा प्रदान की जाए तो यह राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक उत्थान में क्रांतिकारी योगदान दे सकती है।

यही कारण है कि किसी भी राष्ट्र के लिए खेल नीति का निर्माण और उसका प्रभावी क्रियान्वयन अत्यंत आवश्यक हो जाता है। खेल नीति केवल खिलाड़ियों को प्रशिक्षण और संसाधन उपलब्ध कराने का साधन नहीं है, बल्कि यह युवाओं के लिए अनुशासन, नेतृत्त्व क्षमता, आत्मविश्वास और प्रतिस्पर्धात्मक दृष्टिकोण विकसित करने का आधार भी बनती है। सरकार द्वारा समय–समय पर लागू की गई राष्ट्रीय खेल नीति 1984 और 2001, साथ ही Khelo India और Fit India Movement जैसी योजनाएँ इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम रही हैं। इन योजनाओं ने खेलों को शिक्षा, रोजगार और समाज के विकास से जोड़ने का प्रयास किया है। यदि इन नीतियों का क्रियान्वयन दूरदर्शिता और पारदर्शिता के साथ किया जाए, तो यह न केवल युवाओं को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा के योग्य बनाएगी, बल्कि भारत को वैश्विक खेल महाशक्ति के रूप में स्थापित करने में भी सहायक होगी। इस प्रकार खेल नीति भारतीय युवाओं के उज्ज्वल भविष्य की आधारशिला है, जो व्यक्तिगत प्रगति के साथ–साथ राष्ट्रीय गौरव और अंतर्राष्ट्रीय पहचान को भी सुदृढ़ करती है।

शोध उद्देश्य –

इस अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं –

1. भारत में खेल नीति के ऐतिहासिक विकास का गहन अध्ययन करना और उसकी प्रमुख विशेषताओं को स्पष्ट करना।
2. युवाओं के भविष्य निर्माण में खेल नीति की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भूमिका का विश्लेषण करना।
3. वर्तमान समय में खेल नीति लागू करने में आने वाली बाधाओं और चुनौतियों की पहचान करना।
4. ऐसी नीतिगत और व्यावहारिक सिफारिशें प्रस्तुत करना जिनसे खेलों को युवाओं के जीवन और कैरियर का सशक्त आधार बनाया जा सके।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि –

1. सामाजिक पूँजी सिद्धांत –

सामाजिक पूँजी सिद्धांत के अनुसार खेल केवल व्यक्तिगत आनंद या शारीरिक स्वास्थ्य तक सीमित नहीं रहते, बल्कि वे व्यापक स्तर पर समाज में सामाजिक बंधन, विश्वास और सहयोग की भावना को भी प्रोत्साहित

करते हैं। जब युवा किसी खेल टीम का हिस्सा बनते हैं, तो वे आपसी सहयोग, साझा लक्ष्य और सामूहिक उपलब्धि के महत्त्व को समझते हैं। खेलों के माध्यम से बनने वाले ये रिश्ते युवाओं को मजबूत नेटवर्क और सामाजिक सहयोग की शक्ति प्रदान करते हैं, जो उनके व्यक्तिगत जीवन से लेकर पेशेवर जीवन तक मददगार सिद्ध होते हैं। इस प्रकार, खेल सामाजिक पूँजी का निर्माण करते हुए सामाजिक एकजुटता, भाईचारे और लोकतांत्रिक सहभागिता को भी बढ़ावा देते हैं।

2. मानव पूँजी सिद्धांत –

मानव पूँजी सिद्धांत के संदर्भ में खेल युवाओं के संपूर्ण विकास का माध्यम माने जाते हैं। खेलों के माध्यम से युवाओं में स्वास्थ्य, सहनशक्ति, आत्म–अनुशासन, समय–प्रबंधन और नेतृत्त्व जैसे जीवनोपयोगी कौशल विकसित होते हैं। ये कौशल भविष्य में रोजगार के अवसरों और सामाजिक जीवन में सफलता की नींव रखते हैं। एक स्वस्थ और प्रशिक्षित युवा न केवल स्वयं के लिए लाभकारी होता है, बल्कि वह देश की आर्थिक और सामाजिक प्रगति में भी सक्रिय भूमिका निभाता है। खेलों में निपुणता युवाओं को आत्मविश्वासी, दृढ़निश्चयी और लचीला बनाती है, जो आज के प्रतिस्पर्धी और गतिशील परिवेश में किसी भी राष्ट्र के लिए अत्यंत मूल्यवान संसाधन है।

3. राष्ट्रीय विकास सिद्धांत –

राष्ट्रीय विकास सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि खेल केवल व्यक्तिगत उपलब्धियों तक सीमित नहीं होते, बल्कि वे राष्ट्र के गौरव और पहचान से भी जुड़े होते हैं। जब भारतीय खिलाड़ी ओलंपिक, एशियाई खेलों या अन्य विश्व स्तरीय प्रतियोगिताओं में उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हैं, तो यह घटना केवल एक खिलाड़ी की जीत नहीं होती, बल्कि समूचे राष्ट्र के लिए गौरव और प्रेरणा का क्षण बन जाती है। ऐसे अवसर नागरिकों में देशभक्ति की भावना और सामूहिक पहचान को मजबूत करते हैं। इसके अतिरिक्त, खेल राष्ट्र की सॉफ्ट पावर (Soft Power) को भी बढ़ाते हैं और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की छवि को सुदृढ़ करते हैं। इस प्रकार खेल राष्ट्रीय एकता, सांस्कृतिक पहचान और वैश्विक प्रतिस्पर्धा में भारत की स्थिति को सशक्त बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भारत में खेल नीति का विकास –

भारत में खेल नीति का विकास एक क्रमिक प्रक्रिया रही है, जिसमें समय–समय पर सरकार ने बदलते सामाजिक, आर्थिक और वैश्विक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों को लागू किया। प्रारंभिक दौर में खेलों को केवल मनोरंजन और शारीरिक व्यायाम का साधन माना जाता था, लेकिन धीरे–धीरे यह शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और राष्ट्रीय गौरव से जुड़ते गए। नीचे प्रमुख नीतियों और कार्यक्रमों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत है –

1. **National Sports Policy, 1984 –**

1984 की राष्ट्रीय खेल नीति भारत में खेलों को संगठित और संरचित दिशा देने का पहला प्रयास थी। इसका प्रमुख उद्देश्य खेलों को शिक्षा प्रणाली से जोड़ना था ताकि विद्यालय और महाविद्यालय स्तर पर छात्रों को खेलों में सक्रिय भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। इसके माध्यम से युवाओं को शारीरिक तंदुरुस्ती, मानसिक दृढ़ता और सकारात्मक जीवन शैली अपनाने के लिए प्रेरित किया गया। हालांकि, इस नीति के सामने कई व्यावहारिक चुनौतियाँ आईं, जैसे ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में खेल संसाधनों की कमी, प्रशिक्षित कोचों का

अभाव, अपर्याप्त खेल अवसंरचना और वित्तीय सहयोग की सीमाएँ। इन कारणों से यह नीति अपने निर्धारित लक्ष्यों को पूरी तरह प्राप्त नहीं कर सकी, लेकिन इसने भारत में खेल नीति के लिए एक आधारभूत ढाँचा अवश्य तैयार किया।

2. **National Sports Policy, 2001 –**

2001 की राष्ट्रीय खेल नीति ने 1984 की कमियों को दूर करने का प्रयास किया और खेलों के विकास को अधिक व्यवस्थित और पेशेवर दृष्टिकोण से देखने की दिशा में कदम बढ़ाया। इस नीति का मुख्य फोकस प्रतिभाशाली खिलाड़ियों की पहचान, उनके पोषण और उन्हें आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराने पर था। स्कूल और विश्वविद्यालय स्तर पर खेल गतिविधियों को बढ़ावा देने के साथ–साथ विभिन्न खेल अकादमियों और प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना की गई। शारीरिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा बनाने पर बल दिया गया ताकि खेल केवल अतिरिक्त गतिविधि न रहकर शिक्षा का अभिन्न अंग बन सकें। इस नीति ने खेलों को व्यावसायिक अवसरों से भी जोड़ने का कार्य किया, जिससे खिलाड़ियों को रोजगार और करियर की नई संभावनाएँ प्राप्त हुईं।

3. **Khelo India Programme (2018) –**

Khelo India Programme आधुनिक भारत की खेल नीति में एक ऐतिहासिक पहल के रूप में सामने आया। इसे 2018 में शुरू किया गया और इसका उद्देश्य जमीनी स्तर से खेल प्रतिभाओं की पहचान करना और उन्हें व्यवस्थित प्रशिक्षण, वित्तीय सहयोग तथा संसाधन प्रदान करना था। Khelo India Games के आयोजन ने न केवल स्कूल और कॉलेज स्तर के खिलाड़ियों को राष्ट्रीय मंच उपलब्ध कराया, बल्कि प्रतिभाओं को अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं तक पहुँचने का अवसर भी प्रदान किया। Fit India Movement ने पूरे समाज में स्वास्थ्य और फिटनेस की संस्कृति विकसित करने का प्रयास किया। इसके अतिरिक्त, खिलाड़ियों को छात्रवृत्तियाँ, डिजिटल प्लेटफॉर्म और आधुनिक तकनीकी साधनों के माध्यम से प्रशिक्षण और मार्गदर्शन उपलब्ध कराया गया। यह कार्यक्रम विशेष रूप से ग्रामीण और दूरस्थ क्षेत्रों के युवाओं को खेलों की मुख्यधारा में जोड़ने और उन्हें समान अवसर प्रदान करने में अत्यंत कारगर साबित हुआ।

वर्तमान परिदृश्य –

आज का भारत खेलों के क्षेत्र में एक नए परिवर्तनशील दौर से गुजर रहा है, जहाँ खेलों को केवल अतिरिक्त या सहायक गतिविधि मानने की परंपरागत सोच बदल चुकी है। अब खेल युवाओं के लिए न केवल मनोरंजन या स्वास्थ्य बनाए रखने का साधन हैं, बल्कि इन्हें कैरियर विकल्प, व्यक्तित्व विकास और जीवन शैली के अभिन्न हिस्से के रूप में अपनाया जा रहा है। इस परिवर्तन का सबसे बड़ा प्रमाण है कि अब खेलों में निवेश, संरचना निर्माण और व्यावसायिक अवसर तेजी से बढ़ रहे हैं। क्रिकेट के अलावा बैडमिंटन, कुश्ती, मुक्केबाजी, शूटिंग, एथलेटिक्स, टेबल टेनिस और हॉकी जैसे कई खेलों में भारतीय खिलाड़ियों ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है। पी.वी. सिंधु, नीरज चोपड़ा, साक्षी मलिक, मैरी कॉम और अभिनव बिंद्रा जैसे खिलाड़ियों ने वैश्विक मंच पर भारत का गौरव बढ़ाते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि भारतीय युवा किसी भी खेल में उत्कृष्ट प्रदर्शन कर सकते हैं। इन सफलताओं ने समाज में खेलों के प्रति गंभीरता और सम्मान की भावना को और प्रबल किया है। साथ ही, Indian Premier League (IPL), Pro Kabaddi League (PKL), Hockey

India League (HIL), Indian Super League (ISL) और Ultimate Table Tennis (UTT) जैसे व्यावसायिक टूर्नामेंटों ने खेलों को नया आयाम दिया है। इन प्रतियोगिताओं ने न केवल खिलाड़ियों को आर्थिक लाभ और पहचान दिलाई है, बल्कि युवाओं के बीच खेलों के प्रति आकर्षण और उत्साह को भी बढ़ाया है। इन लीग्स ने खेलों को मनोरंजन उद्योग और कॉर्पोरेट निवेश से जोड़कर रोजगार और करियर की नई संभावनाएँ उत्पन्न की हैं। हालाँकि, इस प्रगति के बावजूद चुनौतियाँ अब भी मौजूद हैं। विशेष रूप से ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में खेल अवसंरचना की कमी, प्रशिक्षण संसाधनों का अभाव, योग्य कोचों की सीमित उपलब्धता और आर्थिक असमानता जैसी समस्याएँ खेल प्रतिभाओं को आगे बढ़ने से रोकती हैं। महिला खिलाड़ियों और विकलांग खिलाड़ियों के लिए पर्याप्त अवसर और सुरक्षा भी अभी तक संतोषजनक स्तर पर उपलब्ध नहीं हैं। यदि इन चुनौतियों का समाधान नीतिगत सुधारों, संसाधनों के समान वितरण और जमीनी स्तर पर प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना के माध्यम से किया जाए, तो भारत खेलों के क्षेत्र में एक वैश्विक महाशक्ति बनने की क्षमता रखता है।

चुनौतियाँ –

भारत में खेलों के विकास और युवाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के प्रयासों के बावजूद कई चुनौतियाँ सामने आती हैं, जो खेल नीति और उसके प्रभावी क्रियान्वयन में बाधा बनती हैं। इन प्रमुख चुनौतियों को संक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है –

1. **अवसंरचना की कमी –**

देश के बड़े शहरों में जहाँ आधुनिक खेल परिसरों और स्टेडियमों की सुविधा उपलब्ध है, वहीं छोटे शहरों और गाँवों में बुनियादी खेल मैदान, उपयुक्त उपकरण और प्रशिक्षित कोचों का अभाव बना हुआ है। इस कारण ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों के युवा अपनी प्रतिभा को सही दिशा और अवसर नहीं दे पाते।

2. **प्रतिभा की पहचान में असमानता –**

भारत में प्रतिभा की कोई कमी नहीं है, लेकिन ग्रामीण और गरीब तबके से आने वाले खिलाड़ी अक्सर संसाधनों, मार्गदर्शन और मंच की कमी के कारण पीछे रह जाते हैं। शहरी और सम्पन्न वर्ग के युवाओं की तुलना में उन्हें राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचने में अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

3. **शिक्षा-खेल असंतुलन –**

भारतीय शिक्षा प्रणाली में खेलों को अभी भी सहायक गतिविधि के रूप में देखा जाता है, न कि मुख्यधारा की आवश्यकता के रूप में। अभिभावक और शिक्षक अकादमिक उपलब्धियों को प्राथमिकता देते हैं, जिसके कारण छात्रों को खेलों में समय और ऊर्जा निवेश करने में कठिनाई होती है। इससे कई प्रतिभाशाली खिलाड़ी शिक्षा और खेल के बीच संतुलन बनाने में असफल हो जाते हैं।

4. **आर्थिक एवं सामाजिक दबाव –**

समाज और परिवार के स्तर पर यह धारणा अभी भी प्रचलित है कि खेलों में करियर सुरक्षित नहीं होता। आर्थिक असुरक्षा और सामाजिक अपेक्षाओं के कारण कई युवा खेलों को गंभीरता से आगे नहीं बढ़ा पाते। कई बार खिलाड़ी परिवार की आजीविका या स्थिर नौकरी की खोज में खेल छोड़ने को मजबूर हो जाते हैं।

5. **प्रशासनिक पारदर्शिता की कमी –**

भारत की खेल संस्थाओं में राजनीति, पक्षपात और भ्रष्टाचार जैसे आरोप अक्सर सुनने को मिलते हैं।

चयन प्रक्रिया में पारदर्शिता की कमी, संसाधनों का दुरुपयोग और खिलाड़ियों को समय पर उचित सुविधाएँ न मिलना खेलों के विकास में गंभीर बाधा है। ऐसे माहौल में कई प्रतिभाशाली खिलाड़ी निराश होकर अपनी क्षमता का पूरा उपयोग नहीं कर पाते।

सुझाव –

1. **शिक्षा और खेल का एकीकरण** – विद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर पर खेलों को पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा बनाया जाए।
2. **समान अवसंरचना विकास** – ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में खेल सुविधाओं का संतुलित विस्तार किया जाए।
3. **उच्चस्तरीय कोचिंग** – अंतर्राष्ट्रीय स्तर के प्रशिक्षकों और वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाया जाए।
4. **वित्तीय प्रोत्साहन और सुरक्षा** – खिलाड़ियों के लिए छात्रवृत्ति, बीमा योजनाएँ और नौकरी की गारंटी सुनिश्चित की जाए।
5. **खेल संस्कृति का प्रसार** – मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से खेलों को केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि जीवन शैली के रूप में प्रस्तुत किया जाए।
6. **जन–आंदोलन** – Fit India Movement और Khelo India जैसे अभियानों को गाँव–गाँव तक पहुँचाया जाए।

निष्कर्ष –

भारत की खेल नीति केवल खेल प्रतियोगिताओं या पदक जीतने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह युवाओं के सर्वांगीण विकास का एक प्रभावी साधन है। खेल युवाओं को शारीरिक रूप से स्वस्थ और मानसिक रूप से सशक्त बनाने के साथ–साथ अनुशासन, आत्मविश्वास, नेतृत्त्व क्षमता और टीम भावना जैसे गुणों का विकास करते हैं। खेलों के माध्यम से युवा न केवल व्यक्तिगत जीवन में सफल हो सकते हैं, बल्कि वे समाज और राष्ट्र के विकास में भी सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं। यदि सरकार की नीतियों और योजनाओं को जमीनी स्तर पर पारदर्शिता और दक्षता के साथ लागू किया जाए, तो खेल भारतीय युवाओं के लिए शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य और अंतर्राष्ट्रीय पहचान का सशक्त माध्यम बन सकते हैं। इस प्रकार, खेल नीति केवल वर्तमान की आवश्यकता नहीं है, बल्कि यह भारतीय युवाओं के उज्ज्वल और सशक्त भविष्य की आधारशिला है, जो राष्ट्र को वैश्विक मंच पर और अधिक सुदृढ़ और सम्मानित स्थान दिला सकती है।

संदर्भ सूची –

1. जैन, सुरेश, खेल और भारतीय संस्कृति, भोपाल– मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2003, 95–101
2. शर्मा, वीरेन्द्र, भारतीय खेलों का इतिहास और विकास, नई दिल्ली– प्रभात प्रकाशन, 2005, 112–118
3. अग्रवाल, मनोज, भारत में खेल आंदोलन, दिल्ली– अटलांटिक पब्लिशर्स, 2007, 51–58
4. गुप्ता, नरेश, भारतीय खेल और युवा शक्ति, नई दिल्ली– नेशनल बुक ट्रस्ट, 2008, 72–80
5. सिंह, राकेश कुमार, भारत में खेल और राजनीति, गोरखपुर– छात्र साहित्य, 2009, 117–124
6. तिवारी, रामनारायण, भारतीय युवाओं और खेल संस्कृति, इलाहाबाद– छात्र साहित्य भवन, 2010, 87–94

7. त्रिपाठी, शैलेश, राष्ट्रीय खेल नीति का सामाजिक प्रभाव, इलाहाबाद– प्रयाग पब्लिकेशन्स, 2011, 122–129
8. वर्मा, अनिल कुमार, भारतीय खेल और शिक्षा का समन्वय, पटना– विद्यार्थी प्रकाशन, 2012, 133–139
9. जोशी, रमेश, भारतीय खेलों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, भोपाल– हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2012, 152–160
10. पांडेय, राजेश, भारतीय खेल परिदृश्य, कानपुर– नवीन प्रकाशन, 2013, 88–95
11. वशिष्ठ, हरीश, भारतीय युवा और खेल विकास, लखनऊ– भारतीय साहित्य सदन, 2014, 66–74
12. मिश्रा, अजय, भारत में खेल नीति– एक अध्ययन, जयपुर– राजस्थानी ग्रंथ अकादमी, 2015, 56–63
13. वर्मा, मोहन, खेल, युवा और आधुनिक भारत, लखनऊ– साहित्य भवन, 2015, 103–110
14. शुक्ला, दिनेश चन्द्र, भारतीय खेल और समाजशास्त्र, वाराणसी– गंगा पब्लिशिंग हाउस, 2016, 201–208
15. मिश्रा, संतोष, खेल विज्ञान और युवा विकास, वाराणसी– काशी हिंदी ग्रंथ माला, 2016, 63–70
16. चौधरी, प्रकाश, भारत में खेल नीतियाँ और योजनाएँ, दिल्ली– अनमोल प्रकाशन, 2017, 144–150
17. शुक्ला, प्रमोद, भारतीय युवाओं की खेल उपलब्धियाँ, नई दिल्ली– राजकमल प्रकाशन, 2018, 173–180
18. सक्सेना, नरेन्द्र, भारत की खेल नीतियाँ– 1984 से 2018 तक, दिल्ली– एन,बी,टी,, 2019, 92–99
19. यादव, हरिओम, भारतीय खेल और अंतर्राष्ट्रीय मंच, जयपुर– एशियन पब्लिशर्स, 2020, 141–149
20. शर्मा, अरुण, भारतीय खेल– चुनौतियाँ और संभावनाएँ, नई दिल्ली– प्रभात प्रकाशन, 2021, 187–194

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

परिचय

नाम :-

डॉ. मीरा चौरसिया

पद :-

सहायक आचार्या (हिन्दी विभाग)
चमन लाल महाविद्यालय, लंढौरा (हरिद्वार) में 1.9.2013 से कार्यरत है।

शिक्षा :-

पी.एच डी. (हिंदी) व एम.ए. (संस्कृत)
आपने अपनी उपाधि कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल से प्राप्त की है। जिसमें आपने ''शैलेश मटियानी के उपन्यासों की भाषा'' विषय पर शोध किया है।

सम्मान :-

गीना देवी शोधश्री सम्मान, श्रीमती विजयलक्ष्मी चौहान स्मृति सम्मान, देवनागरी लिपि सम्मान।

प्रतिभागिता :-

38 राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार व वेबिनार ,12 वर्कशाप, 1 फैक्ल्टी डैवल्पमेन्ट प्रोग्राम , 1 NEP प्रोग्राम, 4 रिफ्रेशर कोर्स।

सम्पादन/प्रकाशन :-

14 रिसर्च पेपर व विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी 10 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। भविष्य में दो किताबें शीघ्र प्रकाशित होने वाली है।

अन्य उपलब्धियां :-

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय की काउन्सलर (हिंदी विभाग) की है। आप अंतर्राष्ट्रीय शब्द साहित्य मंच, रूड़की उत्तराखंड छ्रपंजी तत्र की सह-संस्थापिका भी है।

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुमनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीबा प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।
ISSN 2395:7115